गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, राजस्थान से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
दादरी सेमिनार विशेषांक
Vol. 10, Issue 2

Impact Factor : 2.636

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

हिन्दी साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. सुलक्षणा अहलावत

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग
एडवोकेट

संपादक :
डॉ. रेखा सोनी

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

A Peer Reviewed & Referred International Research Journal

वर्ष : 10 | अंक : 2 | फरवरी : 2022 | आईएसएसएन : 2321–8037

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष डॉ. विश्वकीर्ति

संरक्षक :
हरविन्द्र कमल, पटियाला

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

इन्जीनियर सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्रेष्ठ चौधरी
सीनियर मैनेजर, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, साहिबजादा अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीनादेवी शोध संस्थान, भिवानी (हरियाणा)

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर – 335001 (राज.)

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता,

परीक्षण समिति
(Peer Reviewed Committee)

डॉ. अरूणा अंचल
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. वनिता कुमारी
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
भिवानी (हरियाणा)

डॉ. अंजू
दिल्ली।

डॉ. कविता चौधरी
हिसार (हरियाणा)

डॉ. पूजा धमीजा
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. अल्पना शर्मा
सरदारशहर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
तोशाम (हरियाणा)

डॉ. विजय महादेव गाडे
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. राजेश शर्मा
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. लता एस. पाटिल
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. मोहिनी दहिया
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मोहनलाल जाट
चंडीगढ।

डॉ. पवन ठाकुर
बरेली (उत्तर प्रदेश)

कानूनी सलाहकार : डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा।
सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग**, एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज**, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

A Peer Reviewed & Referred Journal

An International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी–127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

गीना देवी शोध संस्थान

द्वारा प्रकाशित विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

ISSN : 2321-8037

संगम शोध पत्रिका

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक

विशेष :-

आलेख भेजने की अन्तिम तिथि :- प्रत्येक माह की 13 तारीख

सहयोग राशि भेजने की अंतिम तिथि :- प्रत्येक माह की 20 तारीख

निर्धारित तिथि के बाद प्राप्त पेपर पर विचार नहीं किया जाएगा।

आपको अगले अंक के लिए पुनः सारी प्रक्रिया करनी होगी।

शोध आलेख भेजने के लिए मेल आईडी : grngobwn@gmail.com

नियम एवं शर्तें :

1. शोध आलेख की सीमा 1500-2000 शब्दों की है। पेपर के टाइटल के नीचे अपना नाम, पता, मोबाईल, मेल आईडी अवश्य लिखें इसके अभाव में आपका पेपर स्वीकार नहीं किया जाएगा।
2. साहित्य, कला, संस्कृति, मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित किसी भी विषय पर शोध आलेख भेज सकते हैं। शोध आलेख कृतिदेव 10, मंगल फॉन्ट में एमएस वर्ड फाइल में टाईप करवाकर ही भेजें। पीडीएफ या हाथ से लिखा पेपर स्वीकार नहीं किया जाएगा।
3. शोध आलेख केवल अपनी ईमेल से ही भेजें क्योंकि हम तमाम प्रकार की जानकारी जिस मेल से हमे पेपर प्राप्त होता है उसी पर देते हैं व्यक्तिगत फोन करके नहीं।
4. एक से अधिक बार भेजे गए शोध आलेख/अशुद्ध आलेख स्वीकृत नहीं होंगे। सम्पादक मंडल का निर्णय सर्वमान्य एवं अन्तिम होगा।
5. अशुद्धियों, प्लेगरिज़्म एवं मौलिकता के लिए आप स्वयं जिम्मेदार होंगे। आलेख प्रूफ रीडिंग के बाद भेजें, बाद में किसी भी प्रकार का सुधार संभव नहीं होगा।
6. पत्रिका की हार्ड/प्रिंट कॉपी के लिए प्रकाशन/सहयोग राशि 1300/- देनी होगी। प्रत्येक लेखक को संस्थान द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक सप्रेम भेंट की जाएगी।

सेमिनार/संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध आलेखों को विशेषांक रूप में प्रकाशित करवाने के इच्छुक व्यक्ति/संस्थान सम्पर्क करें-8708822674

संपादक एवं निर्देशक :
डॉ. रेखा सोनी

प्रबंध संपादक एवं सचिव :
डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. सुलक्षणा अहलावत	7–7
2.	आल्ह खंड : सिनेमा एवं मीडिया बनाम अल्हैत परंपरा	अभिनव	08–11
3.	उषाकिरण खान की कहानी में भारतीय जीवन मूल्य और लोक साहित्य	अल्का कुमारी	12–13
4.	नई शिक्षा नीति – 2020 भारत की नई शिक्षा नीति 2020 के मुख्य बिंदु	अमरजीत	14–19
5.	भक्ति आंदोलन और कबीर	डॉ. अंजली जोशी	20–24
6.	ग्रामीण भारत की सामाजिक और राजनैतिक जटिलता 'औघड़' उपन्यास के संदर्भ में	अशोक दैय्या	25–29
7.	संत साहित्य में प्रकृति प्रेम एवं पर्यावरण चेतना	डॉ. बंशीलाल	30–33
8	भीष्म साहनी : साहित्य यात्रा में शिक्षा, अशिक्षा, मनोवैज्ञानिकता और संस्कार	डॉ. बसवराज के बारकेर	34–39
9.	वाणी के डिक्टेटर कबीर	चोवाराम यदु, डॉ. आर.के. पाण्डेय	40–43
10.	शिक्षा एवं संस्कृति में नारी साहित्य विमर्श	डा० दीप चंद	44–46
11.	चन्द्रकान्ता के उपन्यासों में कश्मीर	डॉ. कमलेश यादव	47–52
12.	भक्ति और सूफी काव्य में पर्यावरण चेतना	डॉ. रहिम गुर्जर	53–57
13.	कुमारसम्भवः शिवाराधना का वटवृक्ष	तहसीन फातिमा	58–61
14.	रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में स्त्री विमर्श (आखेट कहानी के विशेष सन्दर्भ में)	बर्णाली गोगोई	62–62
15.	सिनेमा और पत्रकारिता का साहित्यिक योगदान	डॉ चंद्रशेखर जे नायर	63–65
16.	वर्तमान परिदृश्य में महामारी के दौरान शिक्षक और शिक्षकीय व्यवसाय	कल्पना पाण्डेय	66–68
17.	आदिवासी लोकगीतों में सांस्कृतिक परिदृश्य	डॉ. कमलबाई मीना	69–74
18.	RELAVANCY OF GURUKUL EDUCATION SYSTEM IN THE PRESENT ERA OF SCIENCE AND TECHNOLOGY	Dr. Kuldeep Singh Mr. Anil Kumar	75-78
19.	सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं में बाल मनोविज्ञान	मधुरा केरकेट्टा	79–83
20.	गोविन्द मिश्र की कहानी – साहित्य में वृद्ध जीवन	मंजू शर्मा	84–88
21.	मूल्योन्मुख – उच्च शिक्षा की दिशाएँ	डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप	89–97

22.	हिंदी साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति	डॉ. माया पारस	98–101
23.	बाल साहित्य और शिक्षा पद्धति	मीनाक्षी आहुजा	102–104
24.	तुलनात्मक साहित्य का अर्थ परिभाषा एवं स्वरूप	मेहराजबेगम सैय्यद	105–109
25.	समकालीन हिंदी ग़ज़ल में व्यक्त सामाजिक यथार्थ	मो० आसिफ अली	114–118
26.	वैदिक कालीन गुरूकुल शिक्षा पद्धति के उद्देश्य व वर्तमान में उपादेयता	शास्त्री मुकेश कुमार, डॉ विक्रम सिंह	119–122
27.	कृष्णदत्त पालीवाल की साहित्य के विशिष्ट वादों सम्बन्धी आलोचना-दृष्टि	नवनीत	123–129
28.	हिन्दी और उर्दू ग़ज़ल में समाजिक और राजनैतिक परिदृश्य (फैज़ अहमद फैज़ और दुष्यंतकुमार की गज़ल के विशेष संदर्भ में)	मेराज अहमद खाँ	130–133
29.	भारत में गुरूकुल की शिक्षा पद्धति के लाभ	Pardeep	134-136
30.	नई शिक्षा नीति 2020 पर एक नजर	Parvender Singh	137-140
31.	Role of Nature In Hardy's Novels	Premlata Sharma, Dr. Kavita Agnihotri	141-144
32.	Indian Culture and Guru Nanak Dev	Dr Rajesh Kumar Mangla	145-149
33.	भीष्म साहनी का नाट्य साहित्य : दृष्टि और शिल्प	रविदेव	150–153
34.	राजस्थानी लोकसाहित्य : लोक गाथाओं के विशेष संदर्भ में	डॉ. रितु पूनिया	154–158
35.	हिन्दी है हम वतन भारतीय संस्कृति : समाज राजनीति	डॉ. रोहताश जमदग्नि	159–165
36.	भारतीय साहित्य का संस्कृति और समाज उत्थान में योगदान	सरला कुमारी	166–168
37.	समावेशी शिक्षा	शिवराज सिंह शक्तावत	169–172
38.	बलदेव वंशी के काव्य में नारी विमर्श	स्नेहलता	173–177
39.	धर्मपाल साहिल के उपन्यासों में निहित जीवन मूल्य	सोनिया	178–183
40.	नई शिक्षा नीति की चुनौतियाँ	डॉ. सूर्यकांत शिंदे	184–187
41.	A STUDY ON THE CULTURAL APPROCH OF THE SATRA INSTITUTION	Susmita Bhuyan	189-191
42.	प्रवासी साहित्यकार तेजेन्द्र शर्मा जी की कहानी 'देह की कीमत' में रिश्तो का खोखलापन	उधम सिंह	192–196
43.	नई शिक्षा नीति	डॉ0 विभा पांडेय	197–200
44.	लोकगीत हमारी संस्कृति के पहरेदार	डॉ विनोद शर्मा	201–203
45.	सोशल मीडिया का भविष्य	SARANYA S.S.	203-204
46.	समाज व हिंदी उपन्यासों में वृद्धों की स्थिति	हेमलता सैनी	205–208

सम्पादकीय

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित 'संगम' अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का यह अंक विलक्षणा : एक सार्थक पहल समिति, सरस्वती साहित्य संस्थान एवं गीना देवी शोध संस्थान द्वारा संयुक्त रूप से 9 जनवरी 2022 को हिन्दी साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति विषय पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध आलेखों को दादरी सेमिनार विशेषांक फरवरी 2022 के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रकाशित शोध आलेख देश-विदेश के शोद्यार्थियों, प्राध यापकों तक आसानी से पहुंच सके इसके लिए यह अंक पत्रिका की वेबसाईट पर भी अपलोड किया जाएगा ताकि आसानी से कोई भी इन शोध आलेखों को पढ़कर लाभान्वित हो सके।

मैं सेमिनार में आए सभी विद्वतजन, शोधार्थियों का हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करती हूं जिन्होंने संगोष्ठी में पधारकर हमारा उत्साह वर्द्धन किया। आशा है भविष्य में भी आप सभी का इसी प्रकार से सहयोग मिलता रहेगा। संगम शोध पत्रिका, प्रबंध समिति एवं सम्पादक मण्डल का भी मैं धन्यवाद ज्ञापित करती हूं जिन्होंने पत्रिका के सम्पादन का अवसर प्रदान किया।

डॉ. सुलक्षणा अहलावत

अंग्रेजी प्रवक्ता, हरियाणा सरकार

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 08-11

आल्ह खंड : सिनेमा एवं मीडिया बनाम अल्हैत परंपरा

–अभिनव

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, कांगड़ा, हि.प्र.–176215

आल्ह खंड भारतीय संस्कृति एवं परंपरा का परिचायक है। आल्हखंड में मानव जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। अपने वचन एवं कर्तव्य के लिए प्राणों की आहूति आल्ह खंड का ध्येय है। पिता की हत्या का प्रतिशोध लेना, राज्य की रक्षा, गुरु–शिष्य की गरिमा तथा क्षमादान की परंपरा आदि सकारात्मक मूल्यों को आल्ह खंड में देखा जा सकता है। अद्यतन काल में भी आल्ह खंड अपने गेय रूप के माध्यम से साहित्य एवं मानव जीवन में अहम भूमिका निभा रहा है। आल्ह खंड का यह गेय रूप आल्हा लोक काव्य के रूप में मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में गाया जाता है और आल्हा गाने वालों को अल्हैत कहा जाता है।

अल्हैत परंपरा का प्रारंभ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से माना जाता है। इन अल्हैतों में गया प्रसाद पाण्डेय, ओम प्रकाश पाण्डेय, बच्चा सिंह आदि प्रमुख हैं। अल्हैत मुख्य रूप से आल्हा की वाचिक परंपरा के कारण विकसित हुई। चार्ल्स इलियट (1865 ई.) से पूर्व आल्हा काव्य केवल मौखिक रूप में उपस्थित था। आल्ह खंड पर चार्ल्स इलियट का ध्यान इन्हीं अल्हैतों के आल्हा गायन के कारण गया और चार्ल्स इलियट ने विभिन्न अल्हैतों के गायन को अंग्रेजी में लिपिबद्ध करा कर लंदन से आल्ह खंड का प्रकाशन करवाया।कालांतर में मुंशी रामस्वरूप जी ने चार्ल्स इलियट से आज्ञा प्राप्त कर उसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया।" मिस्टर सी.ई. इलियट साहब बहादुर फर्रूखाबाद में बंदोबस्त कलक्टर थे, उन्होंने आल्हा गाने वालों से आल्ह खंड लिखवाकर अंग्रेजी में तर्जुमा कर लंदन को भेज दिया। उसको नागरी में छापने के लिए मुंशी राम स्वरूप जी ने साहब बहादुर से आज्ञा लेकर अपने प्रेस में छापकर संवत् 1921 में पहली बार प्रकाशित किया इसी से उसको असली आल्ह खंड कहते हैं।"[1] इसके पश्चात अनेक विद्वानों ने समय–समय पर आल्ह खंड का संकलन कर प्रकाशन करवाया। जिनमें विलियम वाटरफील्ड, जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, विन्सेंट स्मिथ, पंडित श्याम सुंदर दास (परमाल रासो), पंडित ललिता प्रसाद मिश्र, आदि प्रमुख हैं।

आल्ह खंड के संबंध में यह प्रथम चरण था जब छापेखाने का प्रयोग किया गया था। इससे पूर्व आल्हा गाने की परंपरा ही मिलती है। लिखित रूप में कोई भी प्रामाणिक कृति अनुपलब्ध नहीं थी। पंडित श्यामसुंदर दास ने अपने सर्वेक्षण कार्य के मध्य 'महोबा खंड' नामक जिस पांडुलिपि को प्राप्त किया उसी को कालांतर में परमाल रासो के नाम से अभिहित किया गया। "कुछ आलोचक इसे पृथ्वीराज रासो के एक खंड 'महोबा खंड' के रूप में मानते थे। बाद में इसकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गई। इस ग्रंथ के संपादक डॉ. श्यामसुंदर दास हैं। उन्होंने संवत् 1976 में पृथ्वीराज रासो से अलग स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में इस नाम से नागरी प्रचारिणी सभा

काशी से इसे प्रकाशित कराया है। इसे अलग नाम देने के संबंध में उन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा है– यद्यपि इस ग्रंथ का नाम मूल प्रतियों में पृथ्वीराज रासो दिया हुआ है, पर इस नाम से इसे प्रकाशित करना लोगों को भ्रम में डालना होता, अतएव मैंने इसे परमाल रासो यह नाम देने का साहस किया है। बाबू श्यामसुंदर दास लिखते हैं–किन्तु वास्तव में यह पृथ्वीराज रासो का महोबा खंड नहीं है, वरन् उसमें वर्णित घटनाओं को लेकर लिखा हुआ एक स्वतंत्र खंड है। परमाल रासो नाम बाबू श्यामसुंदर दास का ही दिया हुआ है।"[2] यद्यपि परमाल रासो नामक मूल कृतिअनुपलब्ध है किन्तु इसके रचयिता जगनिक माने जाते हैं। जोकि महोबा के राजा परमार्दिदेव के दरबारी भाट कवि थे। वर्तमान में आम जनमानस के मध्य इन्हीं के परमाल रासो के आंशिक पद्यों का गेय रूप में प्रचलन मिलता है। जिन्हें आल्हा काव्य के नाम से भी जाना जाता है। जिनमें आल्हा व ऊदल नामक वीर यौद्धाओं का वर्णन मिलता है। इसी 'आल्हा काव्य' को संकलन बद्ध कर कालांतर में अनेक अल्हैतों ने आल्ह खंड नाम से भिन्न–भिन्न बोलियों में प्रकाशन करवाया। जिनमें अल्हैत गायकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सिनेमा अस्तित्व में आया। कालांतर में जाकर आल्हा–ऊदल की लोक में व्याप्त किंवदंतियों व किस्से–कहानियों पर फिल्म व धारावाहिक व गाने इत्यादि भी बनाए गए। जिनका मूल आल्ह खंड के 23 मैदानों के 52 गढ़ विजय की कथा थी। 1953 ई. में बाल चंद्र शुक्ला व हरसुख भट्ट के निर्देशन में 'नौलखा हार' फिल्म आई। जिसमें अरविंद, ईश्वरलाल, जीवन, निरुपमा रॉय आदि प्रमुख कलाकार थे। इसके पश्चात 1962 ई. में जशवंत झावेरी के निर्देशन में 'आल्हा–ऊदल' फिल्म आई। जिनमें कलाकार जयराज, निरुपमा रॉय तथा जीवन आदि थे। 1993 में टेलीविजन धारावाहिक 'बड़े लड़ैया महोबा वाले' तथा 2012 में 'सबसे बड़े लड़ैया' का प्रसारण राष्ट्रीय चौनल दूरदर्शन पर हुआ। रेडियो प्रसारण में भी आल्हा–ऊदल के शौर्य गाथा को 92.2 बिग उि पर नीलेश मिश्रा तथा फिल्म अभिनेता आशुतोष राणा की ओजस्वी वाणी में प्रसारित किया गया। ग्रामीण जनता के साथ अब नगर की जनता भी आल्हा का रसास्वादन करने लगी। धारावाहिकों, फिल्मों, रेडियो प्रसारण की पहल पर आल्हा का प्रचार–प्रसार बढ़ा। जिसके माध्यम से आम जनमानस इतिहास में घटी घटनाओं से रूबरू हो पाया। इसके साथ ही आल्हा की यह लोक परंपरा जनसंचार के प्रिन्ट व इलेक्ट्रॉनिक माध्यम द्वारा श्रोताओं दृपाठकों से भली–भाँति जुड़ पाया। "भारत में संवाद और संचार की परंपरा मानव सभ्यता के विकास के साथ चलती रही है। धार्मिक ग्रंथ, प्राचीन साहित्य से लेकर देश के कोने–कोने की लोक–कलाएँ संवाद का सशक्त माध्यम रही है।

ऐसा ही एक लोक काव्य है, उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र का आल्ह खंड, जिसे जनसामान्य में आल्हा के नाम से जाना जाता है और इसके गवैये अल्हैत कहलाते हैं। जनसंचार के माध्यम भले ही आज रेडियो, टीवी, अख़बार, इंटरनेट और तमाम तकनीकें हों, लेकिन जब ये न थीं, जब गूगल बाबा न थे तो निश्चित तौर पर ऐसी लोक परम्पराएं ही आम जन के लिए ज्ञान का स्रोत थी।"[3] इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की नवीन तकनीकियों इंटरनेट, यूट्यूब,डीवीडी, सीडी, तथा ट्रांजिस्टर कैसेटों आदि की जनमानस में आकर्षक पैठ ने अल्हैतों, रंगमंच के नाट्य कलाकारों को चुनौती प्रस्तुत की। अद्यतन मीडियावादी सिनेमाई संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अनेक यूट्यूब पर आल्हा गायक उभर कर सामने आए जिनमें,'लल्लू वाजपेयी','अलगू यादव' तथा 'पासी आल्हा' आदि द्वारा आल्हा काव्य की गायन प्रस्तुति इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से प्रस्तुत की गई।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ प्रिन्ट मीडिया में भी आल्ह खंड के मूल पात्रों आल्हा–ऊदल की प्रासंगिक

कथा को स्थान मिला। अमर उजाला, जनसत्ता, दैनिक भास्कर आदि समाचार पत्रों में आल्हा–ऊदलसे जुड़ी ऐतिहासिक कथा को प्रकाशित किया गया। "हिन्दी के प्रसिद्ध ब्रिटिश मूल के इतिहास लेखक ग्रियर्सन ने आल्हा की लोकप्रियता को देखते हुए इसके कई खंडों का अंग्रेजी में अनुवाद कराया था। इनमें 'मारू फ्यूड' यानी 'माड़ो की लड़ाई' और नाइन लैख चेन' यानी 'नौलखा हार की लड़ाई' जैसे खंड विशेष तौर पर उल्लेखनीय हैं।"[4] 1923 ई. में 'द लय ऑफ आल्हा' नामक कृति का ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशन हुआ। जिसके अंग्रेजी अनुवादक विलियम वाटरफील्ड थे। इस कृति का परिचय भाग जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने लिखा था।

"The very name of its author is unknown except for a tradition of little value that it was composed by Jagnik, sister's son of Parmal. Nevertheless, it is, without doubt, the property, not of educated men, but of illiterate minstrels who are found scattered over northern india from Delhi to bihar. These 'Aalha Ganevalas', as they are called] make it their profession to recite the Alh&khand or 'Lay of Alha' handed down to them from generation to generation by their predecessors."[5] अर्थात् डॉ. ग्रियर्सन ने लिखा कि इस कृति के लेखक अज्ञात हैं। किन्तु लोक परंपरानुसार परमाल की बहन का बेटा जगनिक इसका लेखक माना जाता है। इसमें कोई शक नहीं कि यह किसी विद्वान की कृति है। लेकिन लोक दृष्टि से उत्तर भारत में दिल्ली से बिहार तक के क्षेत्र में यह फैला हुआ है। इसको गाने वाले आल्हा गायक इसे 'आल्ह खंड'या 'आल्हा का लय' कहते हैं। जो कि इनके द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं। अतः प्रिन्ट मीडिया के प्रारब्ध के साथ ही लोक निधि की इस कृति पर पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ। फलतः आल्ह खंड का प्रकाशन उत्तरोत्तर द्रुतगामी हुआ। जिसमें अंग्रेज विद्वानों ने भी प्रिन्ट व अनुवाद क्षेत्र में अपनी अहम भूमिका निभाई।

अंग्रेज छावनियों में आल्हा का संचार न केवल इसकी लोक महत्ता के निमित्त हुआ। अपितु इसका प्रयोग विश्व युद्धों के दौरान सैनिकों में उत्साह व शौर्य भाव को भरने के लिए भी किया गया। "हिन्दी क्षेत्र के लोकमानस में आल्हा कितने गहरे उतरा है और इसका संचार पक्ष कितना सशक्त है, इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 1914–18 और 1939–45 के पहले और दूसरे विश्वयुद्ध में अंग्रेजों ने सैनिकों में उत्साह भरने के लिए छावनियों में इसके कार्यक्रम आयोजित कराए। यही नहीं लंबे समय तक पुलिस की पासिंग आउट परेड में भी जवानों में वीरता और कर्तव्य–परायणता के लिए आल्हा सुनाया जाता रहा।"[6] आज भी आल्हा काव्य का प्रयोग समय–समय पर समर्पण भाव, देशभक्ति तथा कर्तव्यबोध की जागृति हेतु विविध मंचों पर होता है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य पक्ष है कि आल्हा काव्य केवल साहित्य या मनोरंजन का साधन न होकर व्यापक दृष्टि देने वाली महत्वपूर्ण रचना है। जिसमें परिवार, समाज, राजनीति तथा शासन आदि के सूक्ष्म बिन्दु विद्यमान हैं। साथ ही यह विश्व कल्याण, शांति व मैत्री का संदेश देने वाली दिव्य रचना रूप में भी दृष्टव्य है। जिसका इतिहास 12वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से युक्त है।

आल्ह खंड की प्राचीनता व ऐतिहासिकता प्रस्तुत कृति व अल्हैतों की ओजवाणी द्वारा भी प्रकट होता है। विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों आदि का वर्णन आल्हा के संबंध में जोड़कर किया गया है। जो कि इसके प्रमाण व विस्तार में महत्वपूर्ण रूप से दृष्टिगोचर है। जिनमें बनारस, उरई, महोबा, माड़ौ आदि उदाहरण स्वरूप देखे जा सकते हैं। जिनका उल्लेख आल्हखंड में दर्शनीय है।

"मीरा ताल्हन बनरसवाले बेटा नाती संग लिवाय।
कोइ कारजहित गये बनारस पाई खबरि माहिल परिहार।।
माहिल चलिभे तब उरईते लिल्ली घोड़ी पर असवार।
आठ रोजको धावा करिकै गढ़ माड़ौ में पहुँचे जाय।।
जहाँ कचहरी थी जंबैकी माहिल उतरि परे अरगाय।
करी बन्दगी तब जंबै को घोड़ी थामि लई थनवार।।
आवो आवो उरई वाले अपनो हाल देउ बतलाय।
माहिल बोले तब राजाते तुम सुनि लेउ बघेले राय।।
मीरा ताल्हन बनरस पहुँचे खाली पड़ा महोबा गाँव।
फेट बंधैया तहँ कोइ नाहीं चलिके लूटि लेउ करवाय।।"[7]

अस्तु यह माना जा सकता है कि आल्ह खंड का इतिहास 12वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से जुड़ा है। जिसमें जगनिक नामक भाट कवि द्वारा रचित अनुपलब्ध कृति परमाल रासो का वर्णन मिलता है। इसी परमाल रासो के आंशिक भाग माने गए आल्हा पाठ को कालांतर में अल्हैत गायकों द्वारा महत्ता मिली। शनैः शनैः लोक आस्था एवं रूचि के कारण भाषा विदों एवं अंग्रेज अधिकारियों की भी उन्मुखता इसकी ओर देखी गई। जिसके परिणाम स्वरूप आल्ह खंड का न केवल भारतीय भाषा–बोलियों में प्रकाशन हुआ अपितु अंग्रेजी में भी इसका अनुवाद कराया गया। वर्तमान समय में भी आल्ह खंड लिखित–मौखिक तथा प्रिन्ट–इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों द्वारा निरंतर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है। यद्यपि सिनेमा एवं इलेक्ट्रॉनिक–प्रिन्ट मीडिया के आगमन पश्चात अल्हैत परंपरा इतिहास बनने की कगार पर अवश्य जा पहुँची थी परंतु किशोर मंच, झांसी व जगनिक शोध संस्थान, महोबा आदि आल्हा प्रशिक्षण केंद्र तथा ग्रामीण समाज की अल्हैत नाट्य मंडलियाँ आल्हा लोक काव्य की इस परंपरा को बचाने में संघर्षरत्त है। आल्ह खंड आधृत पात्रों आल्हा–ऊदल को सिनेमा एवं मीडिया के माध्यम से लोकप्रियता एवं विकास भी मिला है, अतः इसे भी भुलाया नहीं जा सकता। फलतः अल्हैतों का सिनेमा एवं मीडिया में योगदान, पारस्परिक संबंध सहयोग व समरसता आल्ह खंड का लोक में भविष्य अधिक स्वर्णिम बना सकता है।

संदर्भ :-

1. पंडित नारायण प्रसाद सीताराम, आल्ह खंड–बड़ा, पृष्ठ–33, खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन, मुंबई, संस्करण–2013.
2. डॉ. कृष्ना पटेल, यशोधरा मेहता, रासो काव्य परंपरा और परमाल रासो, पृष्ठ–3 (भूमिका से), रावत प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2018.
3. आशुतोष भटनागर (संपादक), संवाद सेतु, पृष्ठ–12,अंक–24, अक्टूबर 2019, नई दिल्ली।
4. वही, पृष्ठ–13
5. William Waterfield, The Lay of ALHA, Page-9, Oxford university press HUMPHREY MILFORD, Ed.1923.
6. आशुतोष भटनागर (संपादक), संवाद सेतु, पृष्ठ–12, अंक–24, अक्टूबर 2019, नई दिल्ली।
7. पंडित नारायण प्रसाद सीताराम, आल्ह खंड–बड़ा, पृष्ठ–76, खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन, मुंबई, संस्करण–2013.

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 12-13

उषाकिरण खान की कहानी में भारतीय जीवन मूल्य और लोक साहित्य

–अल्का कुमारी
शोधार्थी, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

वैदिक काल से भारत सांस्कृतिक रूप से समृद्ध रहा है तथा आरंभ से ही समस्त संसार को ज्ञान का प्रकाश प्रदान करता रहा है। भारतीय संस्कृति मानव जीवन की ऊर्जा के मूल स्त्रोत है। भारतीय संस्कृति तथा भारतीय जीवन का आधारभूत तत्व 'सत्य' है,यही भारतीय जीवन मूल्य का निर्माता है।

"लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें कृतित्व हो किन्तु वह लोक–मानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो तथा उसके किसी व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें।" लोक साहित्य सम्पुर्ण लोक संस्कृति तथा लोक जीवन का सार तत्व है लोक साहित्य मौखिक रूप से उपस्थित रहता है। भारतीय जीवन मुल्य को संजोने में लोक साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लोक साहित्य आदिम युग भारतीय जीवन मुल्य को अपने भीतर समाहित किए हुए है,यह आज भी लोक समाज में अपनें वास्तविक रूप मिलती है।

उषाकिरण खान हिन्दी साहित्य जगत में लोक लोखिका के रूप पहचानी जाती है। लेखिका का जन्म बिहार के दरभंगा जिला पकड़ीया गांव में हुआ तथा इनके पिता का नाम जगदीश चौधरी माता का शकुंतला चौधरी है। पिता जगदीश चौधरी एक प्रसिद्ध समाजसेवी और एक सच्चे स्वतंत्रता सेनानी थे। काका नागार्जुन के मार्गदर्शन में साहित्य में कदम रखा इन्होंने अपने रचनाओं का विषय साधारण लोक को चुना। इनकी मुख्य रचनाओं में 'मौसम का दर्द','फागुन के बाद', 'गई झुलनी टूट', 'भामती', 'हसीना मंजील', 'दूबधान', 'सिरजनहार', 'खेलत गेंद गिरे यमुना' में आदि है। लेखिका उषाकिरण खान को उपन्यास भामती के लिए साहित्य आकादमी पुरस्कार से नवाजा गया तथा विद्यानिवास सम्मान, भारत–भारती पुरस्कार तथा शिक्षा तथा साहित्य क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान के लिए पद्मश्री से सम्मानित किया गया।

उषाकिरण खान के रचनाओं का मुख्य विषय 'लोक' तथा लोक साहित्य है। इनकी कहानियों में भारतीय जीवन मूल्य के दर्शन होते है। कहानी 'काहे होत अधीर' भारतीय जीवन मूल्य पृष्ठभूमि पर रची गई रचना है। कहानी मुख्य पात्र चंदन,दुलहिन और दिनेश हैं। 'काहे होत अधीर' भारतीय जीवन मुल्य के दर्शन कराती है तथा गांव में पाश्चात्य संस्कृति के संक्रमण से उपजे समस्या तथा उसका निदान भी निकालती है।

शोभन की पहली पत्नी से चंदन तथा दूसरी पत्नी से दिनेश दो पुत्र है। दिनेश पाश्चात्य जीवन से

आकर्षित हो शहर कमाने चला जाता है। चंदन भारतीय मूल्य को आत्मसात कर गले में कंठी रूद्राक्ष की माला पहनता है और गावं में माँ–पिता के साथ खेती–बारी करता है तथा सादा जीवन उच्य विचार पर विश्वास करता है। दुल्हिन चंदन की पत्नी है इसे सजना–सँवरना पसंद है। दिनेश गांव आता है वह अपनी भाभी के रूप पर मोहित हो जाता है। दुल्हिन को भी शहरी दिनेश अच्छा लगता है। दिनेश दुल्हिन को लालच देता है और चकाचौध भरी जिंदगी के सपने दिखाता है। दिनेश अपनी भाभी से कहता है– " तुम मेरे साथ भाग चलो। हमलोग जलंधर के गाँव में रहेंगे। वहाँ खूब सुख से रखेंगे तुमको। तुम भी पंजाबी औरतों की तरह सूट पहनना लिपिस्टक लगाना।" दिनेश के बातों में आकर दुल्हिन मर्यादा की सारी सीमा लांघ कर दिनेश के साथ भाग जाती है परन्तु बाहर के संसार के वास्तविकता देख पछताती हुई चंदन के पास वापस आ जाती है, चंदन पत्नी की भूल मानकर दुल्हिन को माफ कर देता है तथा पतिधर्म का कर्तव्य समझकर दुल्हिन के अपना लेता है। कहानी 'काहे होत अधीर' भारतीय जीवन मुल्य के दर्शन कराती है। भारतीय जीवन मूल्य में क्षमा से बढ़कर और कोई दान नहीं है।

उषाकिरण खान के कथा साहित्य में लोक तथा लोक साहित्य का संगम दिखाई पड़ता है। इनकी रचनाओं में मानवीय मूल्यों का संरक्षण, जीवनी शक्ति के परिप्रेषण एवं सामाजिक नवनिर्माण दिखाई पड़ता है।

संदर्भ :–

1. डॉ सत्येंद्र, लोक साहित्य विज्ञान, राजस्थान ग्रंथागार, जोधपुर, तृतीय संस्करण–2017, पृ 16 .
2. उषा किरण खान, खेलत गेंद गिरे यमुना में (कहानी संग्रह), प्रलेक प्रकाशन, वर्ष– 2020, पृ 60

अल्का कुमारी
ग्राम – चिरंनजीविपुर
पोस्ट – फतेहा
थाना – बछवाड़ा
जिला – बेगूसराय
पिन – 851111
बिहार

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 14-19

नई शिक्षा नीति – 2020
भारत की नई शिक्षा नीति 2020 के मुख्य बिंदु

–अमरजीत
रिसर्च स्कोलर सोसोलोजी डिपार्टमेंट, एम.डी.यू., रोहतक

जीवन में आगे बढ़ने के लिए शिक्षा की जरूरत होती है। शिक्षा के बिना कुछ भी मुकाम हासिल नहीं किया जा सकता। शिक्षा के माध्यम से हम सभी सपने साकार कर सकते है। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिससे व्यक्ति समाज और देश का विकास होता है। इसी को ध्यान में रखकर नई शिक्षा नीति अपनाई गई।

भारत में नई शिक्षा नीति :–

भारत देश की शिक्षा प्रणाली में 34 साल के बाद नई शिक्षा नीति 29 जुलाई 2020 को लागु की गई केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी। यह स्वतंत्र भारत की तीसरी शिक्षा नीति है इससे पहले 1968 तथा 1986 में शिक्षा नीतियाँ लागु की गई थी।

नई शिक्षा नीति 2020 के लागु करने के साथ ही मानव संसाधन प्रबंधन मंत्रालय का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है। अर्थात इस नई शिक्षा नीति के अनुसार अब मानव संसाधन प्रबंधन मंत्रालय को शिक्षा मंत्रालय कहा जायेगा। नई शिक्षा नीति के तहत सकल घरेलु उत्पादन (GDP) का 6 प्रतिशत का खर्च इसमें किया जायेगा जो पहले 4.43 फीसदी ही था।

जैसे की कोई चीज एक जगह पर पड़ी रहती है तो उस पर धुल जम जाती है। पहले की शिक्षा नीति का भी यही हाल था। पुराने शिक्षा नीति से शिक्षा और उन्नति की प्रगति कही न कही एक सी गई थी। इसलिए शिक्षा नीति में भी परिवर्तन लाया गया। इसका महत्व और भी ज्यादा बढ़ गया जब नई शिक्षा नीति 2020 को पूरी तरह से भारत केन्द्रित शिक्षा बनाया गया।

इसमें मातृभाषा, स्थानीय भाषा पर जोर दिया जायेगा और विषयों का चयन दिनचर्या पर छोड़ दिया जाएगा और पांचवी कक्षा तक की शिक्षा मातृभाषा में होगी।

इस नीति का आधार सिद्धांत :–

शैक्षणिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इंसानों का विकास करना है जो तर्क संगत विचार और कार्य करने में सक्षम हो, जिसमें करुणा और सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिन्तन और रचनात्मक कल्पनाशक्ति, नैतिक मूल्य और आधार हो इसका उद्देश्य ऐसे उत्पादक लोगों को तैयार करना है। जो कि अपने संविधान द्वारा परिकल्पित–समावेशी और बहुलतावादी समान के निर्माण में बेहतर तरीके से योगदान करें एक अच्छी शैक्षणिक संस्था वह है जिसमें प्रत्येक छात्र का स्वागत किया जाता है जहाँ उसकी देखभाल की जाती

है, जहाँ एक सुरक्षित और प्रेरणादायक शिक्षण वातावरण मौजूद होता है, जहाँ सभी छात्रों को सिखने के लिए विविध प्रकार के अनुभव उपलब्ध कराए जाते है।

मुलभुत सिद्धांत जो बड़े स्तर पर शिक्षा प्रणाली और साथ ही व्यक्तिगत संस्थाओं दोनों का मार्गदर्शन करें गये है :–

1. हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास करना। शिक्षकों और अभिभावकों को इन क्षमताओं के प्रति संवेदनशील बनाना जिससे वे बच्चे की अकादमिक और अन्य क्षमताओं में उसके सर्वांगीण विकास पर भी पूरा ध्यान दें।
2. बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना :– जिससे सभी बच्चे कक्षा ३ तक साक्षरता और संख्या ज्ञान जैसे सिखने के मुलभुत कौशलों को हासिल कर सकें।
3. लचीलापन ताकि शिक्षार्थियों में उनके सिखने के तौर–तरीके और कार्यक्रम को चुनने की क्षमता हो और इस तरह वे आपकी प्रतिभा और रुचियों के अनुसार जीवन में अपना रास्ता चुन सकें।
4. कला और विज्ञानं के बीच, व्यवसायिक और शैक्षणिक धाराओं आदि के बीच कोई स्पष्ट अलगाव न हो, जिससे ज्ञान क्षेत्रों के बीच हानिकारक उंच नीच और परस्पर दुरी व अस्मब्यता को दूर किया जा सके।
5. सभी ज्ञान की एकता और अखंडता को सुनिश्चित करने के लिए एक बहु–विषयक दुनिया के लिए विज्ञानं, सामाजिक विज्ञानं कला मानविकी और खेल के बीच एक बहु–विषयक और समस्त शिक्षा का विकास।
6. अवधारणात्मक समझ पर जोर, न कि रटंत पद्धति और केवल परीक्षा के लिए पढाई।
7. रचनात्मक और तार्किक सोच, तार्किक निर्णय लेने और नवाचार को प्रोत्साहित करने के लिए;

नैतिकता मानवीय और संवैधानिक मूल्य जैसे, सहानुभूति, दूसरों के लिए समान, स्वच्छता शिष्टाचार, लोकतांत्रिक, भावना, सेवा कि भावना, सार्वजनिक संपति के लिए समान वैज्ञानिक चिन्तन, स्वतंत्रता, जिम्मेदारी, बहुलतावादी, समानता और न्याय :–

1. बहु–भाषिकता और अधयन के कार्य में भाषा कि शक्ति को प्रोत्साहन।
2. जीवन कौशल जैसे, आपसी संवाद, सहयोग सामूहिक कार्य, और लचीलापन;
3. सिखने के लिए सतत् मुल्यांकन पर जोर, इसके बजाय कि साल के अंत में होने वाली परीक्षा को केंद्र में रखकर शिक्षण हो जिससे कि आज की कोंचिग संस्कृति' को ही बढ़ावा मिलता है।;

तकनिकी के यथासंभव उपयोग पर जोर :–

अध्ययन–अध्यापन कार्य में भाषा संबंधी बाधाओं को दूर करने में, दिव्यांग बच्चो के लिए शिक्षा को सुलभ बनाने में और शैक्षणिक नियोजन और प्रबंधन में;

1. सभी पद्यर्क्म शिक्षण–शास्त्र और नीति में स्थानीय सन्दर्भ कि विविधता और स्थानीय परिवेश के लिए एक सम्मान, हमेशा ध्यान में रखते हुए कि शिक्षा एक समवर्ती विषय है ;
2. स्कूली शिक्षा से उच्च शिक्षा तक सभी स्तरों के शिक्षा पाठ्यक्रम में तालमेल, प्रारम्भिक बाल्यव्यस्था देख–भाल तथा शिक्षा से;

शिक्षकों और संकाय को सिखने की प्रक्रिया का केंद्र मानना :-

उनकी भर्ती और तैयारी की उत्कृष्ट व्यवस्था निरंतर व्यावसायिक विकास और सकारात्मक कार्य वातावरण और सेवा की स्थिति ;

1. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और विकास के लिए उत्कृष्ट स्तर का शोध;
2. शैक्षणिक विशेषज्ञों दुवारा निरंतर अनुसन्धान और नियमित मुल्यांकन के आधार पर प्रगति की सतत समीक्षा;
3. भारतीय जड़ों और गौरव से बंधे रहना; और जहाँ प्रासंगिक लगे वहां भारत की समर्द्ध और विविध प्राचीन और आधुनिक संस्कृति और ज्ञान प्रणालियों और परम्पराओं को शामिल करना और उससे प्रेरणा पाना;
4. शिक्षा एक सार्वजनिक सेवा है; गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुच को प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार माना जाना चाहिए।
5. एक मजबूत जीवंत सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में पर्याप्त निवेश :– साथ ही सच्चे परोपकारी निजी और सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहन और सुविधा।
6. इस नीति का विजन :– इस राष्ट्रीय शिक्षा का विजन भारतीय शिक्षा प्रणाली है जो सभी को उच्चतर शिक्षा गुणवता उपलब्ध करवाए ताकि भारत एक वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनकर भारत को एक जीवन और न्यायसंगत ज्ञान समाज में बदलने के लिए प्रत्यक्ष रूप से योगदान करेगी नीति का विजन छाती में भारतीय होने का गर्व न होकर विचार में बलिक व्यवहार बुद्धि और कार्यो में भी और साथ में भी होना चाहिए जो मानवाधिकारों स्थाई विकास और जीवनयापन तथा वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हो ताकि वो सही मायने में व वैश्विक नागरिक बन सके।

स्कूल शिक्षा :-

यह नीति वर्तमान की 10+2 वाली स्कूली व्यवस्था सी 3 से 18 बर्ष के सभी बच्चों के लिए पाठ्यचार्य और शिक्षा शास्त्रीय आधार पर 5+3+3+4 की एक नई व्यवस्था में पुनर्गठित करने की बात करती है वर्तमान में 3 से 6 वर्ष की उम्र के बच्चो 10+2 वाले इस में शामिल नहीं है क्योकि 6 वर्ष के बच्चों को कक्षा 1 में प्रवेश दिया जायेगा नए 5+3+3+4 ढांचे 3 वर्ष के बच्चो को शामिल कर प्रारम्भिक बाल्यवस्था देखभाल और शिक्षा की एक मजबूत बुनियाद को शामिल किया गया ताकि बच्चे आगे बढकर अच्छे से अपने विकास कर सके।

– प्रारम्भिक बाल्यवस्था देखभाल और शिक्षा रू सिखाने की नीव बच्चों के मस्तिक का 85 प्रतिशत विकास 6 वर्ष की अवस्था में ही हो जाता है। बच्चों के मस्तिष्क के उचित विकास और शारीरिक वृद्धि को सुनिश्चित करने के लिए उसके आरम्भिक 6 वर्षों को माना जाता है। अगर हम शुरू के 6 वर्ष बच्चों को उच्चतर गुणवता वाला ज्ञान देंगे तो वहां अपने अच्छे से विकास कर सकता है। यह शिक्षा जल्द से जल्द प्रदान करनी चाहिए ताकि बच्चों का सही तरह से विकास हो सके।

– ECCE में मुख्य रूप से लचीली बहुआयामी बहुस्तरीय खेल आधारित गतिविधि – आधारित और खोज आधारित शिक्षा में शामिल करनी चाहिए जैसे इनडोर व आउट डोर खेल पहेलियाँ और तार्किक सोच समस्या सुलझाने की कला चित्रकला पेंटिंग एनी दृश्य कला शिल्प नाटक कटपुतली संगीत तथा अन्य गतिविधियों को शामिल करते हुए जैसे की सामाजिक कार्य, संवेदना अच्छा व्यवहार शिष्टाचार नैतिकता व्यक्तिगत और

सार्वजनिक स्वच्छता समूह में कार्य करना आपसी संयोग को शामिल करना।

बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान : सिखने के लिए एक तात्कालिक आवश्यकता और पूर्वशर्त :–

सभी विद्यालयों के छात्रों द्वारा पढने और लिखने और संख्या के द्वारा बुनियादी सुविधाएँ करने की क्षमता आगे की स्कूल शिक्षा में और जीवन भर सिखने की बुनियाद रखती है। भविष्य में सिखने की एक पूर्व शर्त है अभी सिखने की एक गंभीर समस्या से जुझ रहे हैं। वर्तमान में प्रार्थमिक विद्यालय में बड़ी संख्या भी शिक्षार्थियों ने जिनकी अनुमानित संख्या 5 करोड़ से भी अधिक है। ऐसे बच्चों को सामान्य लेख के पढने समझने और अंकों के साथ बुनियादी जोड़ और घटाव करने की क्षमता भी नहीं है।

– द डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर फार नालेज शेयरिंग पर बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान पर उच्चतर गुणवता वाले संसाधनों का राष्ट्रिय भंडार है। तकनिकी दखल को शिक्षकों के लिए एक मद्य के रूप में पहले प्रयोगात्मक किया जाएगा फिर लागू किया जाएगा। इसमें शिक्षक व विधार्थियो के बीच भाषायी बाधाओं को भी दूर करने के उपाय शामिल है।

ड्रापआउट बच्चों की संख्या कम करना और सभी स्तरों पर शिक्षा की सार्वभौमिक प्रध्य सुनिश्चित करना :–

इसमें हम यहाँ सुनिश्चित करते है की बच्चों का स्कूल में नामांकन हो और नियमित रूप से विद्यालय भेजा जाए सर्व शिक्षा अभियान और शिक्षा का अधिकार जैसी पहल के माध्यम से भारत ने हल है ही में प्राथमिक बर्षों के सभी बच्चों का नामांकन प्राप्त करने में उल्लेखनीय प्रगति की है फिर भी बहुत से बच्चों ड्रापआउट हो जाते है। इसको दूर करने के दो उपाय है पहला प्रभावी और पर्याप्त बुनियादी ढांचा प्रदान करना ताकि सभी छात्रों को इसके माद्यम से प्री प्राईमरी स्कूल से कक्षा 12 तक सभी स्तरों पर सुरक्षित तथा आकर्षक स्कूली शिक्षा प्राप्त हो सके प्रत्येक स्तर पर नियमित प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध कराने के आलावा विशेष देखभाल की जाए।

किसी स्कूल में अपस्थापन्न की कमी न हो दूसरा स्कूल में सभी बच्चों की सहभागिता सुनिश्चित हो इसके लिए बहुत ध्यान से बच्चों की ट्रैकिग करनी होगी साथ ही सिखने के स्तर पर नजर रखनी होगी ताकि वो स्कूल में दाखिला ले रहे है उपस्थित हो रहे है। ड्रापआउट बच्चों के लोटने तथा वापिस शिक्षा के स्तर पर लाना फाउंडेशन स्टेज से लेकर कक्षा 12 तक की स्कूली शिक्षा की जरिये 18 वर्ष तक सभी बच्चों की गुणवता वाली शिक्षा प्रदान करना यह भी सुनिश्चित करना की सभी विद्यार्थी स्कूल में आ रहे है। शिक्षा ग्रहण कर रहे है।

दिव्यांग व्यक्तियों से सशक्तिकरण से जुड़े सिविल सोसाईटी संगठन/सामाजिक न्याय और अधिकारिक विभागों के प्रशिक्षित और योग्य सामाजिक कार्यकर्त्ता राज्य/केंद्र शसित प्रदेश सरकारी द्वारा अपनाए गए विभिन्न नवीन तंत्रों के माध्यम से इस आवश्यक कार्य को करने में स्कूल से जुड़े हो सकते है।

स्कूलों में पद्यक्र्म और शिक्षण –शास्त्र अधिगम समग्र, एकीकृत, आनंददायी और रुचिकर होना चाहिए।

5+3+3+4 के नए डिजाईन में स्कूल पद्यक्र्म और शिक्षण-शास्त्र को पुनर्गठित करना :–

स्कूली शिक्षा के पद्यक्र्म और शैक्षणिक ढांचे को पुनर्गठित किया जाएगा ताकि 3–8 , 8–11, 11–14 और 14–18 की उम्र के विभिन्न पड़ावों पर विधार्थियो के विकास की अलग अगल अवस्थाओं के मुताबिक उनकी रुचियों और विकास की जरूरतों पर समुचित ध्यान दिया जा सके। इसलिए स्कूली शिक्षा के लिए पद्यक्र्म और शैक्षणिक ढांचे और पाठ्यक्रम रुपरेखा एक 5+3+3+4 डिज़ाइन से मार्गदर्शित होगी जिसके तहत क्रमश : फाउंडेशन स्टेज, प्रीपरेटरी स्टेज, मिडिल स्कूल स्टेज और सेकेंडरी स्टेज शामिल होगी।

फाउंडेशन स्टेज में पांच वर्षीय लचीले, बहु–स्तरीय खेल गतिविधि अध्ययन और ईसीसीई के पाठ्यक्रम और शिक्षण शास्त्र शामिल होंगे कि पैरा में उल्लेखित है।

प्रीपरेटरी स्टेज तीन वर्ष की होगी जो फाउंडेशन स्टेज की खेल खोज और गतिविधि आधारित शिक्षण शास्त्रीय शैली से आगे बढेगी और कुछ हलके फुल्के पाठ्य पुस्तक आधारित शिक्षण को भी शामिल किया जाएगा और इस प्रकार ज्यादा ओपचारिक लेकिन संवादात्म्क कक्षा शैली के जरिये अध्ययन–अध्यापन की और बढ़ेगी, जिससे पढने लिखने, बोलने, शारीरिक शिक्षा, कला, भाषा, विज्ञानं और गणित भी शामिल होंगे मिडिल स्टेज में भी तिन वर्ष की शिक्षा होगी और इसमें विषय विशेषज्ञ शिक्षकों द्वारा विषय भी अमूर्त अवधारणाओं पर नाम शरू होगा जिसके लिए विधार्थीयो की पर्याप्त तैयारी हो चुकी होगी। यह कार्य विज्ञानं गणित कला खेल, सामाजिक विज्ञानं गणित और व्यवसायिकी विषयों में होगे। हर विषय में अनुभव आधारित शिक्षण और विषय विशेषज्ञों के आ जाने के बावजूद विषयों को बीच परस्पर संबंध देखने को प्रोत्साहित किया जाएगा।

विधार्थियों का समस्त विकास :–

सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम और शिक्षा विधि का समस्त केंद्र बिंदु शिक्षा प्रणाली को रटने की पुरानी प्रथा से अलग व वास्तविक समझ और ज्ञान की और ले जाना है। शिक्षा का उद्देश्य केवल संज्ञानात्मक समझ न होकर चरित्र निर्माण इक्कीसवीं शताब्दी के मुक्य कौशल से सुसज्जित करना है। वास्तव में ज्ञान एक छुपा हुआ खजाना है और शिक्षा व्यक्ति की प्रतिभा के साथ इसे प्राप्त करने में मदद करती है। पाठ्यचर्या और शिक्षा विधि कू इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पुनःतैयार किया जाएगा पूर्व विद्यालय से उच्चतर शिक्षा तक प्रत्येक स्तर में एकीकर्ण के लिए विभिन क्षेत्रों में विशिष्ट कौशल मूल्यों की पहचान की पहचान की जाएगी। शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया में इन कौशलों और मूल्यों को आत्मसात किया जा रहा है। यह सुनिश्चित करने के लिए पाठ्य चर्या ढांचा और सम्पर्क तंत्र विकसित किया जाएगा।

अनिवार्य अधिगम और आलोचनात्मक चिन्तन को बढ़ाने के लिए पाठ्यक्रम की विषय वस्तु को कम करना :– पाठ्यक्रम की विषय–वस्तु को प्रत्येक विषय में कम करके इसे बेहद बुनियादी चीजों पर केन्द्रित किया जाएगा ताकि आलोचनात्मक चिन्तन और समग्र खोज आधारित, चर्चा–आधारित और विश्लेष्ण आधारित अधिगम पर जरुरी ध्यान दिया जा सके यह विषय वस्तु अब मुख्य अवधारणाओं, विचारों, अनुप्रयोगों, और समस्या–समाधान पर केन्द्रित होगी; शिक्षण और सीखना अधिक संवादात्मक तरीके से संचालित होगा।

उपसंहार :–

यदि हर इन्सान शिक्षा के वास्तविक अर्थ को समझ ले तो मानव गतिविधि के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढाया जा सकता है। परिवार, समुदाय और देश को बड़े स्तर पर ले जानें के लिए मानव समाज के हर स्तर पर शिक्षा की अहम भूमिका होती है। शिक्षा के माध्यम से हम सब मिलकर अपने देश को भ्रष्टाचार से मुक्त करा सकते है। अतः हम अन्य सुधारों के साथ साथ उचित प्रशासन चौक व बैलंस की नीति अपनानी होगी।

भारत द्वारा 2015 में अपनाए गए सतत विकास एजेंडा 2030 के लक्ष्य सभी के लिए समावेशी और समान गुणवता युक्त शिक्षा और जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा को पूर्ण करने में नई शिक्षा नीति मददगार साबित होगी।

Sources consulted :

1. Ministry of HRD, national policy on education 2016, Report of the committee for the Evolution of the New Education Policy 2016
2. Lok Sabha starred question No. 9, Dt. 25-04-2016
3. Lok Sabha starred Question No. 2, Dt. 18-07-2016
4. Rajya Sabha Unstarred question No. 471, Dt. 21-07-2016
5. NCERT, Department of education survey & Data Processing, Manual on Statistics and Indicators of school Education, March 2006
6. The right of children to free and compulsory education act. 2009

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 20-24

भक्ति आंदोलन और कबीर

–डॉ. अंजली जोशी
नई दिल्ली।

किसी भी भाषा का साहित्य अपने समाज की अनुभूति, विचारधारा तथा परम्पराओं के उत्थान तथा पतन का इतिहास हुआ करता है। किसी भी देश का जीवन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक कारणों से गतिशील होता है जिनसे उनमें प्रतिपल परिवर्तन तथा विकास की सम्भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। यह परिवर्तन अथवा विकास ही विभिन्न कलाओं तथा साहित्य में अभिव्यक्त होता है। इसी प्रकार किसी देश अथवा किसी कालखंड में परिवर्तन के साथ–साथ वहाँ के साहित्य में भी परिवर्तन होने लगता है। अब साहित्य नये युग को वाणी देने लगता है। पुनः परिवर्तन के क्रम से भारतीय पुरातन से सर्वथा असम्पृक्त तो नहीं हो पाता परन्तु नवीन युग में उसके वर्चस्व का विलय अवश्य हो जाता है। अतः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जनरूचि में परिवर्तन के साथ साहित्य में भी परिवर्तन होता रहता है। साहित्य के इस सतत प्रवाह को अध्ययन की दृष्टि से विभिन्न कालखंडों में विभिन्न नामों से विभाजित किया जाता है। अतः माना जा सकता है कि साहित्य का काल विभाजन विभिन्न समय में किसी देश विदेश विशेष में उद्‌भुत साहित्यिक प्रवृतियों का जीवन्त आलेख होता है जो साहित्य के क्रमिक विकास को समझने में सहायता करता है।

इस दृष्टि से जब हम हिन्दी साहित्य के स्वर्ण युग संज्ञा प्राप्त करने वाले भक्तिकाल को देखते हैं तो पाते हैं कि यह काल अनेक दृष्टियों से भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन, साधना तथा काव्य–सृजन का समावेश रहा है। इस युग के साहित्य में प्राचीन परम्पराओं के अवशेष तो मिलते ही हैं, नवीन परम्पराओं और दिशाओं के संकेत सूत्र भी मिल जाते हैं। भक्तिकाल के सम्पूर्ण साहित्य को भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण श्रृंखल के रूप में स्मरण किया जा सकता है।

भक्तिकाल के उद्‌भव के सम्बन्ध में विद्वानो की मुख्यतः दो राय अथवा विचार माने जाते हैं। प्रथम पं. रामचंद्र शुक्ल और दूसरे डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी। पं. रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ''देश में मुसलमानों की राजनीतिक सत्ता को प्रतिष्ठित हो जाने के कारण भारतीय अपनी वीरता की गाथा गाने में असमर्थ हो गये। उनके सामने ही उनके आदर्शों का अपमान हो रहा था। ऐसी स्थिति में अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?..... उस वक्त देश में वज्रयानी सिद्धो और नाथपंथियों का बोलबाला था, जिनकी साधना हृदय शून्य थी और जो गुह्य, रहस्य और सिद्धि को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते थे। वस्तुतः गोरखनाथ ने योग को जगाकर लोगों को भक्ति से अलग कर दिया था। कालदर्शी कवियों ने समय देखकर दबी हुई भक्ति को जगाना शुरू कर दिया। दक्षिण से आनेवाली भक्ति की

स्रोतस्विनी ने राजनीतिक पराभव एवं सिद्धनाथों के कारण शून्य पड़ते हृदय को रस–सिक्त कर दिया।''

डॉ. रामकुमार वर्मा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस विचार का समर्थन करते हैं परन्तु डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के विचार पंडित शुक्ल के विचार से सर्वथा भिन्न है। उनका कहना है कि कुछ विद्वानों ने इस भक्ति आन्दोलन को हारी हुई हिन्दू जाति के असहाय चिन्ह की प्रतिक्रिया के रूप में बताया है। यह बात ठीक नहीं है।... यदि इस्लाम नहीं भी आया होता तो भी इस साहित्य का बाहर आना वैसा ही होता जैसा आज है। यदि अगली शताब्दियों में भारतीय इतिहास की अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना–अर्थात् इस्लाम का प्रभुत्व विस्तार न भी घटी होती तो भी वह उसी रास्ते जाता। उसके भीतर की शक्ति उसे इसी स्वाभाविक विकास की ओर ठेले जा रही थी। उनका वक्तव्य कथनीय विदेशी नहीं था। इसलिए मैं प्रस्ताव करता हूँ कि हमारे आने के सहस्राब्द की साहित्यिक चेतना को जाति की स्वाभाविक चेतना के रूप में देखे, अस्वाभाविक अधेगति के रूप के नहीं।''

उपरोक्त दोनों मतों के अतिरिक्त एक अन्य–मत डॉ. ग्रियर्सन का है। भक्ति–आंदोलन पर ईसाइयत के प्रभाव की संभावना को बड़े व्यस्थित तरीके से ग्रिसर्सन ने प्रस्तुत किया। डॉ. ग्रियर्सन को, भक्ति पर, सन्त थेरेपा आदि का प्रभाव लक्षित होता है। प. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका भी प्रतिकार किया है। उनके मतानुसार अचानक से कुछ भी घटित नहीं हुआ। इसका कारण ये शास्त्र सिद्ध आचार्य और पौराणिक कल्पनाओं से इनका योग होना। ये शास्त्र सिद्ध आचार्य दक्षिण के वैष्णव थे– ''रामानुज, निर्म्व, विष्णुस्वामी और मध्याचार्य ने प्रकाशन की नवीन व्याख्या की। दक्षिण में भक्ति जनसाधारण की जीत थी। शास्त्र का सहारा पाकर वह सारे भारत में फैल गई। हिन्दी साहित्य में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से इन्हीं विभिन्न मतों से प्रभावित होकर भक्तिधारा प्रभावित हुई। इन चारों ने शंकराचार्य पद्धति का प्रतिपादन अपने–अपने ढंग से किया। जाति–बंधन को शिथिल किया, गुरु को परब्रह्म का प्रतिनिधि माना, बैकुंठ प्राप्ति को चरम उद्देश्य बताया और महर्षि शांडिल्यकृत भक्तिसूत्रों का अनुसररण किया। इन्हीं से प्रेरणा ग्रहण कर रामानंद, चैतन्य, वल्लभ आदि ने वैष्णव मत का प्रचार कर भक्ति आंदोलन को जन्म दिया।''

मध्यकाल में कई दार्शनिक सम्प्रदाय तत्कालीन समाज तथा आत्मिक चेतना को स्पर्श कर रहे थे। इनके दर्शन से प्रभावित हो मु,ख्यतः दो काव्यधाराएँ अस्तित्व में आई।

1. सगुण सन्तकाव्यधारा 2. निर्गुण काव्य धारा।

सगुण काव्यधारा के अन्तर्गत राम काव्यधारा, कृष्ण काव्यधारा, निर्गुण काव्यधारा, निर्गुण सूफी काव्यधारा के अन्तर्गत ज्ञानमार्गी तथा प्रेममार्गी धाराओं का आविर्भाव हुआ। भक्ति आन्दोलन का इतिहास बताता है कि इसकी उत्पत्ति दक्षिण में हुई और उत्तर भारत में इसे लाने का श्रेय रामानंद को जाता है–

''भक्ति दक्षिणी उपजी लाए रामानंद।
परगर किया कबीर ने सप्तद्वीप नवखण्ड।।''

पन्द्रहवीं शताब्दी ने भक्तिआन्दोलन उत्तरी भारत में फैला। ऐतिहासिक दृष्टि से भक्ति आन्देालन उस समय की सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकता थी। भारतीय संस्कृति के प्राचीन मूल्यों को इस आन्दोलन ने फिर से जाग्रत किया। 'आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा नामक पुस्तक में लिखा है कि ''उत्तरी भारत में इन सन्तों ने जिस मत का प्रचार किया उसे उन्होंने मानव कल्याण और विश्व कल्याण हेतु आवश्यक समझा। यह कोई नया सन्देश नहीं था और न ही भारतवासियों के लिए यह कोई

अनजानी शिक्षा थी, इसका प्रत्येक अंग मूल रूप में हमारे प्राचीन साहित्य में किसी न किसी रूप में विद्यमान था।''

संत काव्य धारा भक्ति आन्दोलन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सन्त काव्य भक्ति भाव तक केन्द्रित हो अपनी पुरातन परम्पराओं को स्थापित करता है। प्राचीन काल में भक्ति बहुत सैद्धांतिक तथा दार्शनिक थी। सन्त काव्यधारा में यह व्यवहारिक तथा सरल रूप में आ गई थी। जिसका श्रेय सन्त कवियों को जाता है। इन सन्त कवियों ने भक्ति को मानव प्रेम के साथ जोड़ा। साहित्यकारों ने सन्त काव्य के भी दो प्रमुख लक्षण बताए हैं। प्रेममार्गी तथा ज्ञानमार्गी। इस आधार पर सूफी नीव प्रेम मार्गी कवि माने जाते हैं। कबीर इस दृष्टि से प्रमुख ज्ञानमार्गी कवि हैं। निर्गुण काव्यधारा से जुड़ी सन्तकाव्यधारा धर्म और दर्शन पर आचार्य केन्द्रित है। इन मध्यकालीन सन्त साहित्य की पृष्ठभूमि निगुर्ण भक्ति के आध्यात्मिक और सामाजिक सम्बन्धों को अधिक सशक्त अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करता है।

कबीर भक्ति आन्दोलन के प्रमुख कवि माने जाते हैं। डॉ. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'उत्तर भारत की सन्त परम्परा' में लिखते हैं कि ''कबीर की वाणी का रहन–सहन और कबीर की विचारधारा उन्हें एक खुले दिलवाला भक्त सिद्ध करती है।'' कबीर काल उथल–पुथल का काल था। उसमें संस्कृति, धर्म और विचार की धाराएँ परस्पर टकराती चल रही थी। ''एक ओर हिन्दू समाज में भेदभाव पर आधारित जाति–व्यवस्था, जो कि धर्म पर आधारित थी, उस जातिगत संरचना और धर्म के विरोध में आगे आए, बौद्ध, जैन, शाक्त, नाथ आदि धर्म तथा मत थे वहीं दूसरी ओर उग्र इस्लाम था कट्टरता थी और धार्मिक स्तर पर समानता के बावजूद सामाजिक विषमता थी.... हिन्दू जनता जिस तरह जाति–व्यवस्था के भेदभाव और धार्मिक कर्मकाण्ड की चक्की में पिस रही थी, उसी तरह मुस्लिम जनता इस्लाम की कट्टरता और कर्मकाण्ड की चक्की में।'' ऐसे कठिन समय में एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो इस समय के भारतीय समाज की समझ रखता हो। जो हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मों की वास्तविकता को पहचानता है। और वे व्यक्ति थे कबीर। इस समय में कबीर ने धर्म–निरपेक्षता से काम लिया। उनमें हिन्दू और इस्लाम की रूढ़ियों, संकीर्णताओं और कट्टरताओं के विरूद्ध खड़े होने की जैसी दृढ़ शक्ति थी, वैसी ही सच को कहने की निडरता भी। उन्होंने कहा–

''साँच ही कहत और साँच ही गहत है
काँच कू त्यागकर साँच लागा।
कहै कबीर यूँ भक्त निभर्य हुआ।
जन्म और मरन का मर्म भागा।''

मानवतावादी कबीर, समाज में व्याप्त संकीर्ण भावनाओं के विरूद्ध तो थे ही, उस पर करारी चोट करने में भी वे पीछे नहीं रहे। ऊँच–नीच की अवधारणा के मूल को शिथिल करते हुए वे कहते हैं कि जब सभी मनुष्यों की उत्पत्ति एक ही ईश्वर से हुई है, तब सभी को एक ही प्रकार का परिवेश क्यों प्राप्त नहीं होता? वर्ण और वंश के आधार पर उच्चता और नीचता का यह भेद–भाव क्यों? ईश्वर ने सभी को समान उत्पन्न किया है, यह जातिगत भेद–भाव, ब्राह्मण अथवा शूद्र ये जन्म के बाद किए गए भेद हैं–

''एकै पवन एक ही पाणी। करी रसोई न्यारी जांनी।।
माही सूं माही लै पोती। लागी कहौ कहाँ छू छोती।।

– – – – – – –

जो तूं वांभन बांभनी जाया। तौ आन वाट है काहे न आया।।
जो तूं तुरक तुकनीं जाया।। तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया।।''

पर साथ ही वे यह भी मानते थे कि क्या हिन्दू, क्या मुस्लिम, क्या ब्राह्मण तथा क्या अन्य जातियाँ, सभी पथ भ्रष्ट हो गए हैं। कबीर को किसी जाति–विशेष अथवा व्यक्ति–विशेष से बैर नहीं था। वे तो पाखंड का, अंधविश्वास का विरोध करते थे फिर चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो? कबीर के अनुसार तत्कालीन समाज में एक दो नहीं अपितु पूरा का पूरा समाज ही भ्रांति में पड़ा हुआ है। कबीर साहित्य अर्थात् साधना का साहित्य है तथापि इस विधान में पूजा–पाठ, आडम्बर और पाखण्ड का कोई स्थान नहीं है। क्योंकि यह निर्गुण ब्रह्म की भक्ति है। इन दुराग्रहों ने किस प्रकार जनता को विवेकहीन किया है और स्थायी पंडितों तथा मुल्लाओं ने किन–किन रूपों में लोक को ठगा है इस सच्चाई को कबीर ने बड़ी दृढ़ता से उजागर किया है। वे कहते हैं–

''तीरथ व्रत विश्व बेलड़ी, सब जग मेल्हा छाई।
कबीर मूल निकंदिया, कौन हला हल खाई।।
– – – – – –
क्या अजू जप मंजन किए क्या मसीति सिरू नाएं।
दिल नहि कपट निवाज गुजारै, क्या हजकावै जाएं।।''

कबीर का मानना था कि मनुष्य की स्वतंत्रता के लिए खतरा केवल शास्त्रीय धर्म अथवा धार्मिक आडम्बर ही नहीं होते अपितु लोक–धर्म का भ्रम भी होता है। लोक में फैले अविश्वास का भ्रमजाल भी लोगों के लिए खतरा उत्पन्न करता है। कबीर लोकजीवन में फैले ऐसे अंधविश्वासों का भी खण्डन करते हैं जो मनुष्य के आत्मविश्वास को खत्म करते हैं। यह सत्य है कि हमारी जीवन–परम्पराएँ लोक को ध्यान में रखकर स्थापित हुई थी, लेकिन जब उनमें गूढ़ता तथा अज्ञानता के माध्यम से पाखंड तथा अंधविश्वास व्याप्त हो जाए तो वह सामान्य जनता के लिए पोषक न बनकर शोषक बन जाती है। कबीर इन्हीं परम्पराओं बाह्याडम्बरों का विरोध करते थे। कबीर कालीन समय में यह अन्ध विश्वास प्रचलित था कि जो 'काशी' में मरता है व मोक्ष पाता है लेकिन जो 'मगहर' में मरता है वह 'गधे' की योनि प्राप्त करता है। कबीर स्पष्ट शब्दों में इस अंधविश्वास का खण्डन करते हैं–

''लोकामति का भोरा रे।
जो कासी तन तजै सरीरा, तो रामहिं कोन निहोरा रे।
कहै कबीर सुनहु रे संतो, भ्रम परै जिनि कोई
जस कासी तस मगहर ऊसर, हिरदै राम सति होई।''

कबीर ने केवल कविता में ही इस अंधविश्वास का खण्डन नहीं किया, उन्होंने अपने जीवन–व्यवहार में भी इसको नकारा। वे जीवनभर काशी में रहे, लेकिन अन्तिम समय में 'मगहर' चले गए और वही प्राण त्यागे। कथनी और करनी की इसी दुर्लभ एकता के कारण कबीर अपने युग के मार्गदर्शक बने और आज भी वे तथा उनके कथन प्रासंगिक हैं।

भक्ति आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य ही मध्यकालीन समाज को धार्मिक आडम्बरों से मुक्त करना था। गुरुमत भक्ति में भी गुरु ग्रंथ साहित्य में संकलित कबीर वाणी से सम्बन्धित ऐसे निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। सन्त

काव्य की प्रकृति का भी मूल लक्षण यही है। डॉ. दीवान सिंह अपने एक लेख 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में कबीर जी की वाणी के विषय में लिखते हैं–

''कबीर जी की वाणी का मूल उद्देश्य वही है जो गुरुमत का है। सारे भक्तों का यह उपदेश है जिसे वह भिन्न–भिन्न ढंगों से व्यक्त करते हैं ब्रह्म और भ्रमों को त्यागकर एक ही परमात्मा का नाम स्मरण करना हर समय उसको याद रखना, उसको हृदय से प्रेम करना, उसको हृदय में बसाना, द्वेत भावना को मिटाकर एवं मनुष्यों को एक ही परमात्मा का अंश मानना ऊँच–नीच भले–करे का भेद मिटाना, विषय विकार त्यागकर स्वयं को गुरु कृपा से जोड़े रखना यह सत्य मार्ग सब भक्तों का मार्ग है, कबीर जी का मनुष्य मात्र को उपदेश है।

उपरोक्त मुख्य कारणों से ही कबीर भक्ति आन्दोलन के प्रमुख कवि माने गए।

भक्ति आन्दोलन के साहित्य में हमें नये मूल्यों और संस्कृति के नये पक्षों का दर्शन होता है। भक्ति आन्दोलन ने अपने प्रकाश से जीवन के समस्त क्षेत्रों को उज्जवल किया। इन परिवर्तनों से नए जीवन मूल्य अस्तित्व में आये। ज्ञान विकास, वैचारिक संस्कारों में परिवर्तन, जीवन व्यापी तत्व भक्ति आन्दोलन के कारण ही तत्कालीन समाज में उजागर हुए। भक्ति आन्दोलन का प्रभाव केवल मध्यकाल तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि आधुनिक काल के प्रारम्भिक सांस्कृतिक कारणों में भी इसका महत्व देखने को मिलता है। कबीर केवल अपने युग की चिन्ता के ही कवि नहीं है वे भारत के अतीत की ज्ञानधारा के साथ भविष्य की संभावनाओं के भी कवि हैं। यही कारण है कि आधुनिक भारतीय साहित्य और संस्कृति की अग्रगामी परम्परा में कबीर तत्व अनेक रूपों में विद्यमान है। यह सही है कि आज की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों को देखकर भले ही हमें यह लगता है कि हम उत्तर आधुनिक युग में जी रहे हैं परन्तु अगर हम कबीर की कविता तथा उनके सामाजिक कथनों को भली–भांति देखें तो स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि कबीर हमारे समय में कितने प्रासंगिक हैं।

संदर्भ :–

1. संत–वचनावली – सं. डॉ. रामेश्वर प्रसाद सिंह 'आखर पांडे–2, अनुमप प्रकशन, संस्करण–1986
2. वही, पृ. 2
3. भक्तिकाव्य का उत्तरार्द्ध (अठारहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति) – देवीशंकर अवस्थी स्वराज प्रकाशन।
4. कबीर चिन्तन, नया सन्दर्भ डॉ. गुरनाम कौर बेदी, निर्मल प्रकाशन, पृ. 40
5. उद्धृत, वही, पृ. 53
6. कबीर – विविध परिप्रेक्ष्य – सं. कुमार कृष्ण, सचिव, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान–2004 (लेख – कबीर और उनका समय–मैनेजर पाण्डेय, पृ. 52)
7. कबीर विविध परिप्रेक्ष्य – सं. कुमार कृष्ण, सचिव, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान–2004 (लेख – कबीर और उनका समय – मैनेजर पाण्डेय, पृ. 52)
8. सन्त कबीर – वाणी और विचार – डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र – 'सन्त साहित्य संस्थान, पृ.. 101
9. कबीर मीमांसा – डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ. 130 उद्धृत – कबीर साहब निर्देशक – गंगाशरण शास्त्री, डॉ. शुकदेव सिंह सं. विवेकदास, कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र–1978, पृ. 230
10. कबीर – विविध परिप्रेक्ष्य सं. कुमार कृष्ण, सचिव, भारतीय उच्च अध्ययन, संस्थान–2004
11. भक्ति कवि सं. लाल सिंह, पृ. 248

मो. : 9910853163

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 25-29

ग्रामीण भारत की सामाजिक और राजनैतिक जटिलता 'औघड़' उपन्यास के संदर्भ में

–अशोक दैय्या
शोधार्थी, एम.फ़िल हिंदी साहित्य, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

संकेत शब्द – औघड़, नीलोत्पल मृणाल, सामाजिक जटिलता, राजनैतिक जटिलता, ग्रामीण भारत, नारी विमर्श

साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार से सम्मानित नीलोत्पल मृणाल 21वीं सदी की नई पीढ़ी के सर्वाधिक लोकप्रिय लेखकों में से एक है, जिनमें कलम के साथ–साथ राजनैतिक और सामाजिक मुद्दों पर जमीनी रूप से लड़ने का तेवर भी है। इसलिए इनके लेखन में सामाजिक विषमताएँ, विडम्बनाएँ और आपसी संघर्ष बहुत स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

'औघड़' उपन्यास में ग्रामीण भारत की राजनैतिक–सामाजिक जटिलता को उदघाटित किया गया है। यह उपन्यास आदर्शवादी ना होकर विशुद्ध यथार्थवादी उपन्यास है इस उपन्यास के केंद्र में ग्रामीण परिवेश को लिया गया है। उपन्यासकार ने ग्रामीण परिवेश में पाये जाने वाली विसंगतियों का सूक्ष्म वर्णन किया है। उपन्यास का केंद्र मलखानपुर और सिकन्दरपुर गाँव है।

यहाँ की सामाजिक स्तिथि, राजनैतिक परिवेश, जातिगत–भेदभाव, छुआछूत, ऊँच–नीच, धार्मिक पाखण्ड, भ्रष्टाचार, महिलाओं की स्तिथि, प्रशासन तथा सड़ी–गली सामाजिक व्यवस्था पर तंज कसा गया है।

उपन्यास का मुख्य पात्र बिरंची है जो कि एक शिक्षित जागरूक इंसान हैं। वह दलित, शोषित और पिछड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह सदियों से चली आ रही पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ खड़ा होता है और आवाज उठाता है। वह धार्मिक पाखण्डों का विरोध करता है। और महिलाओं पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ लड़ता है। वह समाज के उस वर्ग का विरोध करता है। जिन्होनें हमेशा से ही दलित, शोषितों को दबाये रखा है। प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को वह बहाल करता है। वह न्याय की बात करता हैं। और समाज को नयी दिशा देता है।

इस उपन्यास में जहाँ एक और सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार किया है दूसरी और लेखक सामाजिक समरसता की ओर संकेत करते हुये कहते है–"सच्ची सामाजिक समरसता तो हिंदुस्तान के गाँव में ही दिखती थी। जहाँ एक ही चिलम से पूरा गाँव गाँजा पी लेता था। यहाँ धुँआ उड़ाते दीवानों के बीच कभी न जाति की दीवार होती थी, नहीं विषाणु का जंजाल। एक लंबी टान और फूँक से सब खतरा धुँआ–धुँआ हो जाता था। जात–पाँत, छुआछूत, बीमारियाँ तो होश की बातें थी। बेसुध मतवाला गाँव स्वर्ग होता था। गाँजा पीते वक्त लखन

की झोपड़ी गाँव की सामाजिक समरसता के लिए एक समतामूलक तीर्थस्थली जैसी थी, जहाँ राह से गुजरते पंडित बैरागी पांडेय भी सायकिल से उतरकर भोलेनाथ का जयकारा लगा अपने सामाजिक समरसता के कर्तव्य की एक–दो चिलमटान आहुति देते थे।"

यह परम्परा आज भी ग्रामीण भारत में विद्यमान है। जहाँ लोग एक–दूसरे से मिलनुसार रहते है मगर जब बात समाज के निम्नवर्ग के मुद्दे की हो तो यहीं समाज हमारे विरुद्ध खड़ा हो जाता है और उसे उपेक्षित घोषित करते हैं।

इस उपन्यास का एक पात्र गणेश महतो है जो भारतीय कृषक का प्रतिनिधित्व करता है। आज के समय कोई किसान नहीं चाहता है कि उसका बेटा खेत मे हल जोते, और वह दिन–रात उनकी तरह परिश्रम करें हर किसान चाहता है कि उसका बेटा अच्छे से नौकरी करें और सुखी जीवन जिये। गणेश महतो का एक पुत्र रोहित हैं जो नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। वह बाइक खरीदना चाहता है। मगर उसके पिता गणेश के पास इतना पैसा नहीं है कि वह उसे खरीदकर ला दे। भारत का हर किसान मानसून पर निर्भर रहता है। "असल में गाँवों के देश भारत में मानसून भारतीय कृषि के साथ जुआ है यह बात ऐसे ही नहीं कही जाती। यहाँ कब किस वर्ष का मानसून किसान को मोटरसाइकिल खरीदवा दे और किस बार खरीदा हुआ बिकवा दें, कोई नहीं जानता। शायद इस बात की एक स्वाभाविक समझदारी गाँव के किसानों, मजदूरों या छोटे–मोटे कामगारों के दिमाग में स्वतः घुसी हुई थी"।

सदियों से चली आ रही जाति–व्यवस्था ने इस देश को पूरी तरह से खोखला कर रखा है जहाँ हर इंसान की पहचान एक जाति से होती है। आज भी हमारे समाज में जाति–व्यवस्था, ऊँच–नीच, छुआछूत व्याप्त है। नीलोत्पल मृणाल ने अपने उपन्यास 'औघड़' में जाति–व्यवस्था पर जमकर प्रहार किया है। "ओहो। आप बुझे नहीं मेरा बात। जात–पात तो हम भी नहीं मानते हैं। सब ऊँच–नीच सबकों मिलके रहना चाहिए। कोय जात छोटा नहीं। जादव क्या राजपूत से कम हैं क्या? इसलिए जात–पात तो एकदम गलत बात है। हम तो बस आपको हर जात का एक जातीय गुण बताए। बाकी आपको अपना उसी हिसाब से सोच–विचार कर काम करना होता है। बनिया का गुण है कि काम कम करेगा और नफा ज्यादा खोजेगा। हम लोग जादव लोग इज्जत के लिए जान दे सकते हैं। हरिजन लोग कितना भी आगे बढ़ जाए लेकिन पंडित, ठाकुर, जादवया बंगाली से दबके ही रहेगा। उसका नेचर है सर। इसमें जात और छुआछूत का बात नहीं। हम खुद इसका बहुत बड़ा विरोधी हैं"। आज भी गाँवो में छुआछूत जारी है। उच्च वर्ग निम्नवर्ग का हमेशा से ही शोषण करता आया है। आज भी समाज के निचले तबकों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। उन्हें अछूत माना जाता है। इस उपन्यास में धर्म की आड़ में छुआछूत को बढ़ावा दिया जा रहा है। धर्म के नाम पर आज भी हमारे समाज में छुआछूत विद्यमान है। इसका एक उदाहरण इस उपन्यास में देखने को मिलता है– "अरे लीजिए। अरे बैरागी पंडित के लड़कवा था, चंदनवा। साला बताइए कैसे तकिया ले म्लेच्छ के जैसा उल्टा हुआ था। कौन कहेगा कि बामन का लड़का हैं। जात धर्म सब खत्म कर लिया है साला ई छौड़ा।"

भारत में छुआछूत की बीमारी की सबसे बड़ी विशेषता यही रही थी कि यह बीमारी बस किसी खास एक जाति या वर्ग द्वारा पोषित नहीं, किसी एक जात की बपोंती नहीं थी। यहाँ हर जाति के नीचे एक जाति थी। भारत में सबसे ऊपर की जाति तो खोजी जा सकती थी पर सबसे निचली जाति खोजना अभी तक बाकी था।

यहाँ हर जाति के लिए कोई न कोई जाति अछूत थी।

धर्म के नाम पर आज पाखंड दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है। आज के समय लोगों के लिए धर्म एक धंधा हो गया है। इस उपन्यास में भी धर्म को धंधे से जोड़ा गया है। "तुम पैसा देकर हमारे ब्राह्मणत्व को नहीं खरीद सकते। हम पैसे के लालच में धर्म नहीं नष्ट कर देंगे"।

इस पर बिरंची ने खट से पूछ लिया था, "कभी बिना पैसे लिए भी कहीं पूजा करवाए हैं क्या पंडित जी? सेठ–साहूकारों के यहाँ तो जो सबसे ज्यादा पैसा देता है, दशहरा–दीवाली का मेन पूजा उसी का कराते हैं। ई कैसा धर्म है जो पैसा लेकर सेठ के लिए शंख फूँक सकता है लेकिन हरिजन के लिए नहीं"। इस तरह उपन्यासकार ने समाज में व्याप्त कुरीतियाँ, धार्मिक पाखंडों का कट्टर विरोध किया।

'औघड़' उपन्यास में नारी विमर्श जैसे मुद्दे भी उठाये गये है। हमारे देश में नारियों को देवी और माता के रूप में इनकी पूजा की जाती है। मगर देवी के नाम पर हमारा समाज स्त्रियों पर हमेशा से ही शोषण करता आया है। पुरुषसत्तात्मक समाज ने नारियों के हर तरह के अधिकारों का हनन किया है। उसे हमेशा पक्षी की भाँति पिंजरे में कैद रखा। पुरुष के लिए सिर्फ सिर्फ स्त्री एक भोग कीवस्तु है इससे ज्यादा कुछ नहीं उपन्यास में स्त्रियों की स्वतंत्रता को लेकर बात कही गयीहै– "क्या आदत है ये मम्मी? इसी आदत को तो बदलना है। ये जो सदियों से महिलाओं को रसोई और आँगन में कैद रखा है कभी–कभी कि इतना पढ़–लिख के भी हमारे फैमिली में भी नारी के प्रति इस सोच से पीड़ित हैं हम ये क्या जो महिला खाना बना रही है वही बाद में खाएगी। ये पुरुषवादी मानसिकता बदलनी होगी हमें। दिस मस टू मच, सॉरी"। यह बात बहुत हद तक सही है कि हमने हमेशा स्त्रियों को घर के ड्योढ़ी से बाहर पैर रखने नहीं दिया उसे घर में ही कैद रखा उसे घर की चारदीवारी में उसका शोषण किया। उसे घर के काम तक ही सीमित रखा।

इस उपन्यास की एक पात्र मधु है। जिनके साथ गाँव की आँगनवाड़ी में सरकारी अफसर बीडीओ उसके साथ ज्यादती करता है। मगर जब वह थाने में केस दर्ज कराने जाती है तो उसका केस दर्ज नहीं किया जाता है। और उसे ही चरित्रहीन घोषित किया जाता है। उसके साथ कोई नहीं खड़ा होता है सिवाय बिरंची को छोड़। हमारे समाज की मानसिकता घिसी–पिटी हुई है। वह हमेशा से ही नारी का शोषण करता आया है और समाज में हो रहे शोषण के प्रति भी मौन है। "समाज का कालिख मुँह में लगाने से अच्छा है माँग में झूठ का सिंदूर लगाना"।

एक औरत घर की चौखट तो लाँघ लेती है लेकिन समाज की सड़ी मानसिकता के कुंठित नाले कहाँ टाप पाती है? यह जो कदम–कदम पर समाज उसकी राह में नियम, नजर और कायदों के खंजर गाड़े बैठा है उससे कहाँ पार पाती है स्त्री। आधुनिक युग में यह सच था कि स्त्रियों ने कमाने का अवसर तो पा लिया लेकिन बदले में उन्हें चरित्र गँवाने की शर्त को भी स्वीकारना पड़ा। यहाँ घर की देहरी टपते औरत आजाद नहीं, बेहया हो जाती थी। मधु जैसी न जाने कितनी ऐसी स्त्रियाँ हैं जो बाहर जा पसीना बहाती थीं, खून जलाती थीं, कमाकर घर चलाती थीं और बदले में समाज से चालू औरत का प्रमाण पातीं थीं। हजारों वर्षों की संस्कृति, ज्ञान, विज्ञान की अपनी कई प्रकाश मील वाली गौरवशाली यात्रा पर लहालोट हो इतराने वाला यह देश–समाज अपनी मानसिक यात्रा में बस चंद कदम ही चल पाया था।

एक स्त्री अपने अंदर पर्वत, पहाड़ सब कुछ दबाकर रख लेती है। कितनी गहरी होती है स्त्री। पुरुषों

के अहं के ऊपरी परत पर भी हल्की खरोंच लग जाए तो तिलमिला उठता है पौरुष पर स्त्री दुख, संताप क्षोभ, अनादर सब अंदर दफ़न कर खड़ी रहती है। स्त्री और धरती दोनों एक–सी हैं। दोनों गर्भधारण्या हैं, तभी तो माता हैं। अंदर पीतल, सोना, बारूद, पानी सब रखे हैं। दोनों दुनिया का भार ढोने को अभिशप्त।

कितनी विडंबना है कि जिस स्त्री के कोख से सभ्यताओं का जन्म होता है, सभ्यताओं ने उसी को हमेशा मर्यादा और संस्कृति के बोतल में बन्द करके रखा है। जब मन हुआ शराब की तरह पिया, जब मन हुआ गुलदस्ते की तरह सजाया। और जब भी क्रोधित हुआ तो बोतल पटकर तोड़ दिया। फूटे बोतल से निकली स्त्रियों ने जमीन पर बिन पानी मछली की तरह तड़प–तड़प दम तोड़ा और सभ्यताएँ अट्टहास करती रही। यह दुनिया जिस दिन से अस्तित्व में आई ठीक उसी दिन पुरुषों ने अपने लिए 'हमारे अधिकार ये हैं' की घोषणा कर दी और नारियों के लिए 'तुम्हारे कायदे ये हैं' का निर्णय सुना दिया।

नीलोत्पल मृणाल अपने उपन्यास 'औघड़' में ग्रामीण भारत की राजनीति का सूक्ष्म वर्णन करता है। फूँकन सिंह समाज के उच्च वर्ग का संरक्षक है जो पुँजीवादी व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी ओर बिरंची दलित और शोषित समाज का उद्धारक है वह इस पूँजीवादी व्यवस्था का खुला विरोध करता है और सदियों से चली आ रही इस व्यवस्था को मिटाकर समाज को मुक्त कराने का साहस रखता है। गाँवों की अपनी एक राजनीति होती है जिसमें वोट पावर, जाति और धर्म के नाम पर बटोरे जाते है। जिसके पास पैसा है सब कुछ उसी के हाथ में है।

राजनैतिक चेतना के लिहाज से देश के महानगर इन गाँव के मुकाबले कहीं नहीं ठहरते थे। राजनीति ने इस मुल्क के गॉवों को पता नहीं क्या दिया, लेकिन इन गाँवों ने राजनीति को यह बहुत ठोस भरोसा दिया कि चाहे हम हर बार भले ठगे जाएँ, पर हर नए चुनाव को हम गाँव पुनः नई उम्मीद से देखेंगे और नई मूल्य दर पर सलटेंगे। और शायद इसी भरोसे का तो फलसफा था कि भारत में लोकतंत्र आज भी निश्चित होकर रहता है। लोग अपना सबकुछ लुटाकर भी लोकतंत्र को बचाए हुए थे। लोगों ने इस लेवल की कुर्बानी दी थी इस देश के लोकतंत्र को बचाए रखने के लिए कुर्बानी का लेवल आज तक मेंटेन था।

इस उपन्यास में भ्रष्टाचार पर तीखा प्रहार किया गया है। आज भ्रष्टाचार की जड़े गहरी गड़ी हुई है सब ओर इसका बोलबाला है। फूँकनसिंह जैसे लोग अपने पैसे से सबकुछ खरीद लेते है। पैसों की वजह से ही लोग न्याय की बात नहीं करते है मधु के साथ जो अन्याय हुआ उसकी माता को पैसा देकर उसका मुँह बन्द कर दिया तथा दूसरी ओर उपन्यास में मीडिया जिस तरफ पैसा देखती है उसी तरफ़ भागती है वह सही और गलत खबरों का उन्हें कोई भान नहीं है। "हाँ तो आप मधु हैं। आपका एक फोटो खींचना होगा और आपका बयान ले रहे हैं। कहिए क्या–क्या हुआ था? ऐसा नहीं कि सिर्फ बीडीओ का बयान लेंगे। दरोगा जी का भी लेंगे। देखिए मेरा पत्रकारिता में पक्षपात नहीं होता है।" आनंद सिंह ने अपनी शुद्ध एवं असलीपत्रकारिता का बिना टीवी प्रचार करते हुए कहा। उसने ठीक ही कहा था। पत्रकारिता तो अब पक्षपात के दौर से आगे जा गर्भपात और ब्रजपात के दौर में प्रवेश कर चुकी थी। कौन–सा सच कब गिरा दिया जाए और कौनसा झूठ किसके सर गिरा दिया जाए, कोई भरोसा नहीं था इस दौर की पत्रकारिता का।

यही हाल आज हमारे देश की पत्रकारिता का है जो सच्च दिखाया जाना चाहिए वो कभी नहीं दिखाते और फालतू की खबरें पैसों के लालच में छाप देते हैं। देश कीपत्रकारिता में इतनी ताकत होती है कि वह जमीन

पर गिरे इंसान को आसमान की बुलंदियों तक छूने तक को विवश कर देती हैं। मगर वो ऐसा नहीं करती उनका हर निर्णय पूंजीवादी खेमे की और होता हैं जैसा वे चाहते हैं उसी के अनुरूप पत्रकारिता ख़बर छापती है। "फिर तब जल्दी बोलो अब। केस करोगी या समझौता कर लोगी? अच्छा रहेगा मामला भी ख़त्म और इज्जत–पानी भी बचा रहेगा। नहीं तो हमारा तो काम है भाई सच को सच लिखना। दोनों पक्ष का जो सच है लिख देंगे। बाकी तुम्हारा जो डिसीजन है जल्दी बोलो"। आनंद सिंह ने मधु के हौसले पर आखरी वार करते हुए कहा।

बिरंची इस उपन्यास का वह किरदार है जो इन सबका विरोध करने का साहस रखता है। वहीं दूसरी ओर पबित्तर जैसे दोस्त छंद पैसों के लालच में फूँकन सिंह से मिल लेता है और वह बिरंची जैसे दोस्त के साथ घात करके मार देते है। राजनीति कितनी निर्मल है, छुआछूत ऐसे ही धो देती है। राजनीति कितनी धारदार है, एक56 इंच के ठकुराई फौलादी सीने में भी इतना छेद जर देती है कि एक दलित बड़े प्रेम से उसमें घुस सके। भले टोला समाज वाले दलित वहीं खड़े हैं देहरी के नीचे चप्पल खोल के। राजनीति वाला देहरी से ऊपर दिल तक पहुँच गया।

अब भी लोकतंत्र जिंदाबाद क्यों न कहें हम! कमजोर और दलित की लड़ाई चिता पे जल रही थी, कमजोर का नेता मजबूत होकर निकला था। यही तो थी सामाजिक न्याय की लड़ाई। पहले अगुआ आगे जाएगा, समाज भारी, विशाल चीज है, धीरे–धीरे बढ़ेगा। ठीक वैसे ही, जैसे आजादी के इन सत्तर सालों में बढ़ रहा था। पबित्तर कि रफ़्तार एक नेता की रफ़्तार थी, दबे–कुचले, पिछड़े जन की उतनी भारी आकांक्षा और उम्मीद को साथ लादकर तेज़ी से कौन दौड़ सकता है भला। पबित्तर ने तत्काल ये बोझा उतार दिया। उम्मीद और संघर्ष की गठरी शव के संग भस्म हुई जा रही थी। आज भी हमारे ग्रामीण समाज का एक वर्ग अभी भी उपेक्षित है। बिरंची का यह संघर्ष पूँजीपति सवर्णों, पुलिस और प्रशासन की तिकड़ी से होता है, वह लड़ता है, गिरता है, उठता है और पूरे दलित समाज को दिशा तथा दृष्टि देने में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है।

सार रूप में हम कह सकते हैं कि अगर उपन्यास में एक ओर दलितों की सामाजिक स्थिति का वर्णन किया गया है तो दूसरी ओर बिहार और झारखण्ड के चुनावों में बाहुबलियों के प्रभुत्व को भी दर्शाया गया है। बिरंची जैसे जागरूक और शिक्षित लोग इनके खिलाफ विद्रोह का बिगुल बजाते है। मगर समाज के दलित वर्ग के तबके से आने वाले लोगों की आवाज दबा दी जाती है। बिरंची भी उस शोषित वर्ग से है जो सदियों से पीड़ित है। वह इस समाज का प्रतिनिधित्व कर इस समाज को आगे लाकर इनके खिलाफ आवाज उठाने की क्रांति करता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. नीलोत्पल मृणाल : औघड़, हिन्दयुग्म प्रकाशन, नोएडा, 2020, पृ. 27
2. वहीं, पृ. 42
3. वहीं, पृ. 70
4. वहीं, पृ. 120
5. वहीं, पृ. 121
6. वहीं, पृ. 122
7. वहीं, पृ. 133
8. वहीं, पृ. 223
9. वहीं, पृ. 224
10. वहीं, पृ 225
11. वहीं, पृ. 226
12. वहीं, पृ. 262
13. वहीं, पृ. 214
14. वहीं, पृ. 215
15. वहीं, पृ. 380

ईमेल–k47daiya@gmail.com, सम्पर्क 8764735832

पता– ग्राम पोस्ट मोगड़ाकलाँ, तहसील लूनी, जोधपुर, पिन 342802 (राजस्थान)

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 30-33

संत साहित्य में प्रकृति प्रेम एवं पर्यावरण चेतना

–डॉ. बंशीलाल
सहायक आचार्य हिंदी, राजकीय महाविद्यालय, जालोर।

विश्व के किसी भी राष्ट्र की सम्पन्नता, सुदृढ़ता का आधार वहां की सांस्कृतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि होती है। राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में धर्म,दर्शन, अध्यात्म, प्रकृति प्रेम एवं सांस्कृतिक–सामाजिक समरसता की महत्त्वपूर्ण घटक होती है। भारत राष्ट्र, यहाँ की सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक चिंतन सम्पन्नता के साथ साथ यहाँ की भक्ति, शक्ति, प्रकृति आराधना हेतु विश्वपटल पर गुरुगौरव पद से प्रतिष्ठित है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में जन्मभूमि और मिट्टी को स्वर्ग से भी बढ़कर माना गया है। प्रकृति को परमात्मा मानकर पूजा, अर्चन, आराधना करना हमारी जीवन पद्धति का आवश्यक अंग है। मनुष्य, समाज–परिवेश का अटूट हिस्सा होता है और बिना समाज, परिवेश एवं प्राकृतिक सामीप्य के मनुष्य एवं समाज की कल्पना व्यर्थ है। आदि अनादि काल से ही मनुष्य और प्रकृति परस्पर संगी सहगामी है।

वेद, उपनिषद्, पुराण, दार्शनिक चिंतन संपोषित साहित्य, भारत राष्ट्र की आध्यात्मिक चेतना, उत्कृष्ट जीवन मूल्यों का आधार है। अथर्ववेद में धरती द्वारा मानव के प्रति मातृत्व समानधर्मी सुरक्षा, संरक्षण, पोषण हेतु पृथ्वी को माता एवं मानवमात्र को पुत्र से उल्लेखित किया है। ठीक वैसे ही यजुर्वेद में प्रकृति के समस्त अंगों उपांगों को देवताओं के समान माना है। भारतीय आध्यात्मिक–सांस्कृतिक चेतना को विश्वपटल पर प्रतिष्ठित करने वाले राष्ट्र के संतो, ऋषि–मुनियों, महात्माओं की वाणी का अनुसरण करते हुए हमारी जीवनशैली में आज भी हमने पृथ्वी, आग, हवा, जल, आकाश, पाताल, पौधे, नदियाँ, समुद्र, वृक्ष, पहाड़, वनस्पति, चन्द्रमा, सूर्य इत्यादि को देवताओं के समान माना है तथा वार, त्योहार में मानवमात्र द्वारा इनकी पूजा साधना की जाती है।

"संतों ने प्रकृति के साथ अटूट आत्मीय स्नेह रखते हुए जल, जमीन, वृक्ष, जंगल, नदी–नाले, जीव–जंतुओं इत्यादि प्रकृति प्रदत्त तत्वों के प्रति अपनत्व भाव रखते हुए पर्यावरण संरक्षण पर बल दिया। भले ही संतों की वाणी में प्रकृति का मनोहर, मनोरम और सौन्दर्यमयी स्वरूप चित्रित ना हुआ हो परन्तु संत साधकों ने प्रकृति पलायन भाव नहीं रखा, उदासीन दृष्टिकोण नहीं अपनाया। संत प्रकृति, पर्यावरण और वसुधा के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित रहते हुए, प्राकृतिक परिवेश में धार्मिक यात्राएं, भ्रमण, प्रभु भजन, सत्संग करते रहे। पर्यावरण संरक्षण में इन संतों की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भूमिका को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।" [1]

भक्तिकाल की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक पृष्ठभूमि का अध्ययन अनुशीलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि भक्तिकालीन संतों ने संतीय जवाबदेही निभाते हुए धार्मिक, आध्यात्मिक चेतना, समाजसुधार का स्तुत्य कृत्य करते हुए प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण का भी कार्य किया। भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा की कृष्णभक्ति शाखा

में सूरदास के पदों में प्रकृति का जीवंत चित्रण हो या चाहे रामभक्ति काव्यधारा में तुलसीदास के धीर गंभीर पद हो, प्रक्रति अपना मनोहर रूप लेकर अवश्य ही दृष्टिगोचर होती है। कबीर, पीपा, रैदास, मलूक, मीराबाई, जाम्भोजी, वील्होजी, साहबराम इत्यादि संतों ने पर्यावरण चेतना को महत्त्व दिया। सूफी काव्यधारा में तो प्रकृति को सृजन का अभिन्न अंग माना जा सकता है। चाहे विरह वर्णन हो; चाहे बारहमासा चित्रण; तीज–त्योहार हो या मेले उत्सव, भक्तिकालीन संत कवियों ने प्रकृति का मनमोहक स्वरूप प्रकट किया है। यहाँ यह तथ्य स्पष्ट है कि सभी संतकवि महात्माओं ने प्रकृति और पर्यावरण चेतना का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत किया है।

संत साहित्य अध्येता, समीक्षक डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय भक्तिकाल, संत परम्परा एवं पर्यावरण चेतना को उल्लेखित करते हुए कहते हैं' "आज जब वैश्वीकरण की आंधी चल रही है और सम्पूर्ण विश्व एक अंधी भौतिकता में दौड़ रहा है, तब उच्चतर मानवीय मूल्यों और मनुष्यता के उन्नयन के लिए भक्तिकाव्य हमारे लिए आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराता है। भक्तिकाल लोकमंगल की विराट चेष्टा है, जिसमे मानव के साथ साथ सम्पूर्ण प्रकृति और पर्यावरण की चिंता भी समाहित है।" [2]

विद्वान डॉ. देवकुमार संतों के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं संतों की उत्पत्ति में भौगोलिक, सांस्कृतिक पर्यावरण को ही कारक मानते है। संत साहित्य के स्वरूप को विस्तार से विवेचित कर उल्लेखित करते हैं कि समाज, परिवेश के सांस्कृतिक और भौगोलिक पर्यावरण को सुधारने में संतों की महत्ती भूमिका होती है। "मनुष्य को, अन्य जीवों को और पदार्थों को, प्रत्येक कण कण को उपादेय बनाकर, समभाव रखकर, उनसे सम्यक रीति से बरतने के उपदेश संतों की वाणी में है –

जड़ चेतन जग जीव, जत सकल ब्रह्म माय जानी।
जड़ चेतन गुण दोस मय, विस्वकीन करतार।
संत 'हंस' गुण गहहि पय परिहारी वारि विकार।" [3]

रामानंदी द्वादश शिष्य संत कवि पीपाजी की लोकमंगलकारी वाणी में परमात्मा स्तुति, ध्यान साधना में सहज ही प्रकृति प्रेम के दर्शन समाहित है। पीपाजी की आध्यात्मिक तथा साधनात्मक प्रवृत्ति उपासना से अनायास ही प्रकृति चित्रांकन अभिव्यंजित हुआ है –

वैसाखो पुन्न को मईनो कहिए। कुल देव की सेव सेविए।।
जेठ तपे दन आगी बरसे। ढाढंक्या जल, छायाँ तरसे।। [4]

उत्तर आधुनिकता के इस भीषण दौर में मानवीय संवेदनाओं के साथ प्रकृति,परिवेश और पर्यावरण का तेजी से ह्रास हो रहा है। भौतिकवाद के इस भयंकर सांस्कृतिक प्रदूषण, आध्यात्मिक संकट, पर्यावरणीय असंतुलन से बचने के लिए मनुष्य को प्रकृति, जल, जंगल, संतों की लोकमंगलकारी वाणी में निहित जीवनमूल्यों की तरफ लौटना होगा। सृष्टि की अद्‌भूत, मनोरमी छंटा को सुरक्षित रखने हेतु पर्यावरण का संरक्षण अत्यंत ही आवश्यक है, यह बात संतों ने अपनी दिव्य वाणी से कई वर्षों पूर्व ही प्रमाणित कर ली है। सुन्दर, मनोहर प्रकृति की हस्तांतरित विरासत को सजाने, संवारने और संरक्षित करने की नैतिक जिम्मेदारी का निर्वहन संतों की वाणी, संत साहित्य में पूरी जिम्मेदारी के साथ उपलब्ध है।

संत जाम्भोजी ने कहा– "मोर धरती ध्यान, बनस्पति बासो अर्थात यह सम्पूर्ण पृथ्वी मेरे ध्यान में है तथा मेरा निवास वनस्पति में है। वनस्पति को काटना, वनस्पति पर प्रहार करना साक्षात गुरू जाम्भोजी पर प्रहार करना

है। विश्नोई पंथ के अनुयायियों ने वनस्पति की रक्षा के नियम का अक्षरशः पालन किया है क्योंकि वनस्पति में ही जाम्भोजी का वास है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत वृक्षों तथा इस पृथ्वी पर निर्भर है। अन्न, प्राणवायु आक्सीजन, वस्त्र निर्माण की मूल सामग्री, ओषधि, माकन निर्माण सामग्री, पशु पक्षियों के जीवन यापन, यहाँ तक लेखन आदि हेतु कागज़ आदि भी प्रकृति द्वारा ही प्रदत्त है.....गुरु जाम्भोजी ने पर्यावरण संरक्षण को धर्म से जोड़कर और अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है। उनकी पर्यावरणीय अवधारणा न केवल मध्ययुग के अनुरूप थी अपितु कालजयी और शाश्वत है।"[5]

यह अद्‌भुत, विलक्षण तथ्य है की हमारे संत, ऋषि मुनियों, महात्माओं ने प्रकृति और पर्यावरण पोषण से स्वयं को एवं समाज को जोड़ कर रखा। संतों ने ईश्वरीय आराधना, साधना प्रकृति की गोद में, पहाड़ों एवं कंदराओं की शरण में करते हुए मानव मात्र को पर्यावरण चेतना के प्रति जागरुक करते रहे। इसमें कोई दोराय नहीं कि बिना प्रकृति प्रेम और पर्यावरण चेतना के किसी संस्कृति या सभ्यता का विकास संभव नहीं है; मनुष्य की सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक प्रगति नहीं हो सकती। स्पष्ट है विश्व की तमाम सभ्यताएं नदी, पहाड़ों, टीलों के आस पास ही पल्लवित पोषित रही। भारतीय संत साहित्य में संतों ने अपनी लोकमंगल वाणी में प्रकृति सामंजस्य, पर्यावरण चिंतन, चेतना, जंगल, जीव दया, गोचर, ओरण भूमि, जल जंगल जीव संरक्षण का बारम्बार उल्लेख किया है।

संत साहित्य अध्येता डॉ. किशनाराम विश्नोई लिखते हैं– "विश्नोई धर्म संस्थापक, महान पर्यावरणविद, भगवान् विष्णु के अवतार, क्रांतिदर्शी समाजसुधारक एवं मध्यकाल की महान विभूति गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी वाणी, कार्यों, उपदेशो एवं संदेशो द्वारा स्वस्थ एवं समृद्ध परम्पराओं और मानवमूल्यों तथा पर्यावरण संरक्षण की अनेक विधियां और उपाय बतलाए। उन्होंने मानव जीवन के लोककल्याण, लोकमंगल, आत्मशुद्धि, पवित्र विचार व स्वभाव एवं गुणकर्म के आधार पर धर्म के आचार पक्ष को सुदृढ़ ही नहीं किया बल्कि विचार पक्ष को व्यवस्थित एवं नियोजित करने के लिए 29 धर्म नियमों की आचार संहिता का निर्माण किया। इस 29 धर्म नियमों में बतलाया है कि "जीव दया पालणी, रूँख लीलो नहीं घावै।" अर्थात जीवों पर दया भावना रखों और हरे भरे वृक्षों को मत काटो। प्रकृति रक्षा का उद्‌घोष किया। उन्होंने पर्यावरण को धर्म के साथ जोड़कर मानव जाति को एक अहम् उपलब्धि प्रदान की है। उन्होंने न केवल वृक्षों और जीव जंतुओं की रक्षा की बात कही प्रत्युत समस्त जैविक विविधता के संरक्षण को मानव का प्रमुख धर्म बतलाया है।"[6]

संत साहित्य अध्येता डॉ. कृष्णलाल विश्नोई 'संत वील्होजी और उनकी वाणी' आलेख में लिखते हैं– विश्व में आज लोग बिगड़ते हुए पर्यावरण को देखकर चिंतित हैं। पर्यावरण संरक्षण पर कार्य सर्वप्रथम संतकवि वील्होजी ने किया। कवि सुरजन जी ने अपनी कविता में बताया है कि वील्होजी के समय वृक्ष रक्षार्थ आठ साके (बलिदान) हुए जिनमे से तीन का वर्णन तो उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। वृक्ष रक्षार्थ सर्वप्रथम सन 1610 में विश्नोई स्त्रियाँ, करमा और गोरा ने अपने प्राणों की आहुति दी थी–निरवाहि नांव नसीव मोटो, पाव दे बेडै चड़ी।
गुर परसादे वील्ह बोले, करमणि अरगोरा षड़ी।''[7]

संत साहित्य अध्येता डॉ. अशोक कुमार सभ्रवाल संतो की पर्यावरण चेतना एवं परवर्ती साहित्य प्रभाव विषयक आलेख में लिखते हैं कि– "किसी भी विचारधारा को आन्दोलन का रूप देने के लिए उसका जनसामान्य के हृदय में प्रविष्ट होना अत्यंत आवश्यक है। भारतीय दर्शन में दया और अहिंसा, ये दोनों ही तत्त्व आरम्भ में

विद्यमान रहे हैं और इस भूमि पर समस्त प्रकृति पूजनीय रही है।....संत साहबराम जी के साहित्य का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि गुरु जाम्भोजी ने विचार की जो कलम लगाई थी वह साहित्य में ही नहीं बल्कि समाज में भी व्यावहारिक रूप से फलित हुई है। साहबराम के साहित्य पर जाम्भोजी की पर्यावरण चेतना का पूर्ण प्रभाव है। इसके साथ साथ विचार से आन्दोलन बनने की गाथा भी इनके साहित्य से स्पष्ट हो जाती ह। इन्होने परम्परा से मिलने वाले ज्ञान को अपनी वाणी में संजोकर भावी पीढ़ी को थाती के रूप में सौंप दिया।"[8]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान समय के पर्यावरण संकट की ज्वलंत घटनाओं, पर्यावरणीय असंतुलन, घटती जमीन और बढ़ते आवासों के बेमेल संतुलन की चिंता संतों के साहित्य में सैकड़ों वर्ष पूर्व दृष्टिगोचर होती है। यह अनूठी बात है कि पर्यावरण के वर्तमान संकट के निराकरण में आज के वैज्ञानिकों, विद्वानों की कही बातें न जाने कितने ही वर्षों पूर्व हमारे संत महात्मा कह चुके थे। संतों ने जल संरक्षण, पोधारोपण, जीवदया, प्रकृति–पूजा को भारतीय समाज, धर्म, दर्शन, आचार विचार, जीवन मूल्यों और जीवन शैली से जोड़े रखा। वस्तुत पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता, शैली के अंधाधुंध, अन समझे अनुकरण के परिणाम स्वरूप पर्यावरण असंतुलन का संकट उद्‌भुत हुआ है। असंतुलन को नव दिशा प्रदान कर संतुलित बनाने में संतों की वाणी में निहित् पर्यावरण चेतना और जागरूकता आज भी उपादेय और प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. रामानंदी द्वादश शिष्यों की प्रामाणिकता (संत पीपाजी विशेष) डॉ. बंशीलाल, पृष्ठ 138, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, संस्करण 2021
2. गुरु जाम्भोजी की वाणी में लोकमंगल, पृष्ठ संख्या 7, प्रकाशक जाम्भाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, संस्करण – 2017
3. राजस्थान का संत साहित्य, पृष्ठ संख्या 229, प्रकाशक– रा.प्रा.वि.प्रतिष्ठान जोधपुर, संस्करण 2014
4. संत पीपाजी एवं भक्ति आन्दोलन– डॉ. पूरन सहगल, पृष्ठ–163, आर्यावृत्त संस्कृति संस्थान, नयी दिल्ली, संस्करण–2013
5. जम्भधारा शोध पत्रिका, पृष्ठ संख्या 60, अंक 1, दिसंबर 2016
6. जम्भधारा शोध पत्रिका, पृष्ठ संख्या 7, अंक 3, जून 2019)
7. राजस्थान का संत साहित्य – पृष्ठ संख्या 85–86, प्रकाशक– रा.प्रा.वि.प्रतिष्ठान जोधपुर , संस्करण 2014
8. गुरु जाम्भोजी की वाणी में लोकमंगल, पृष्ठ संख्या 51–52, प्रकाशक जाम्भाणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, संस्करण – 2017

9587121833

Banshilaldarji@gmail.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 34-39

भीष्म साहनी : साहित्य यात्रा में शिक्षा, अशिक्षा, मनोवैज्ञानिकता और संस्कार

–डॉ. बसवराज के बारकेर
हिन्दी विभागाध्यक्ष और सह–प्राध्यापक, महाराजा कालेज, मैसूरु विश्वविद्यानिलय, मैसूरु–570006

उपन्यासकार भीष्म साहनी जी की साहित्यिक देन की चर्चा करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है, कि वे उपन्यास–साहित्य में किस परम्परा से जुड़े हुए हैं। इसकी ठीक पृष्ठभूमि तभी प्राप्त होती है, जबकि हिन्दी साहित्य में उपन्यास के उद्‌भव और विकास पर दृष्टिपात करेंगे। तब पता चलता है कि भीष्म जी किस परंपरा से जुड़े हुए हैं। समय–समय पर हिन्दी उपन्यास जगत् के इतिहास में नये बदलाव और चर्चा करने से पहले उस साहित्य की परम्परा एवं साहित्यिक युग–चेतना और मूल्यों को समझना व परखना आवश्यक और प्रासंगिक प्रतीत होता है।

भीष्म साहनी का साहित्य प्रेमचन्द और यशपाल के बीच की कड़ी है, भीष्म साहनी जैसे साहसी, समर्थ उपन्यासकार ने हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में सूर्य की तरह उभरकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा के प्रकाश को हिन्दी साहित्य में फैलाया है। साहित्य तत्कालीन युग की समस्याओं की प्रतिच्छाया होती है, भीष्म जी अपने मार्क्सवादी विचारों में समाज में क्रांति लाकर एक नवीनतम रूप देना चाहते हैं।

भीष्म साहनी ने प्रगतिशील धारा के एक सशक्त एवं समर्थ लेखक के रूप में अपना स्थान बना लिया है। भीष्म जी मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक हैं, वही विचार उनकी रचनाओं में रचे–बसे हैं, जिस प्रकार दूध में मधु घुल–मिल गया है, उसी प्रकार उनकी रचनाओं में मार्कशवादी विचारधारा घुल–मिल गयी है। भीष्म साहनी का जीवन–दर्शन यशपाल और प्रेमचन्द के बीच का एक संतुलित जीवन–दर्शन अपनाता है। भीष्म जी में यह खूबी देखने लायक है कि वे अपने विचारों को अभिव्यक्त करने में कहीं चूकते नहीं हैं, और कतई हिचकिचाते नहीं।

व्यक्तियों के समूह को समाज कहा जाता है, अनेक समाज मिलकर एक गांव बनता है। हर एक समाज के अपने–अपने आचार–विचार, रीति–रिवाज, नियम एवं संस्कार होते हैं। उन संस्कारों को तोड़ने का प्रयत्न अगर कोई भी करता है, तो वहां सामाजिक समस्याएं उद्‌भूत होती हैं– चाहे वे उसी समाज का व्यक्ति हो या दूसरे समाज का। सामाजिक समस्याओं का विरोध करने से छुट–पुट घटनाएं भी दृष्टिगोचर होती है। ऐसे ही अनेक घटनाएं भीष्म साहनी जी के उपन्यासों में दिखाई देती हैं।

एक सु–संपन्न, मध्यवर्गीय, आर्य समाज के हिन्दू परिवार में भीष्म जी के उच्च–स्तरीय शैक्षिक व्यवस्था को दर्शाया है। उस परिवार के मुखिया लाला जी अपने परिवार के सदस्यों को काफी अच्छी शिक्षा प्रदान करते

हैं। लाला जी कट्टर आर्यसमाजी हैं। वे अपने बच्चों की पढ़ाई के विषय में बड़े सजग दिखाई देते हैं। इसी कारण लाला जी अपने बच्चों की पढ़ाई गुरुकुल में करवाते हैं और घर पर भी पंडित जी द्वारा बच्चों को पढ़ना–लिखना सिखाया जाता है, लाला जी जितना बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान दिया करते थे, उतना ही उनके संस्कारों पर भी विशेष रूप से ध्यान दिया करते थे। बच्चों पर संस्कार की अमिट छाप दृष्टिगत है, प्रस्तुत संदर्भ में संस्कार संबंधी उदाहरण नितांत उल्लेखनीय हैं– पंडित जी भाई को संबोधित करतेहुए कहते हैं कि –

'तुम आगे–आगे चला करो
तुम्हारा छोटा भाई पीछे–पीछे चला करे
राम–लक्ष्मण ऐसे ही चला करते थे।'
'सादापन जीवन, सजावट मृत्यु।'

'क्या मतलब? मतलब हैं सिर पर बाल नहीं रखने चाहिए।' इस विचारों से पंडित जी उन बच्चों में राम–लक्ष्मण जैसे भाइयों और सदाचार की बातें बताते हुए उनमें संस्कार का ज्ञान जाग्रत कर रहे हैं। इस संदर्भ में जोगेंद्र वर्मा जी के यह विचार नितांत उल्लेखनीय हैं –'बहुत कुछ है, जो अपने बचपन से हम संस्कारवश ग्रहण करते हैं, ज्यों–ज्यों बालक अपने परिवार पर आँखे खोलता है, जो कुछ वह देखता–सुनाता है, वही संस्कार बनता जाता है। आकाश की नीलिमा, ठंडी हवा के झोंके, गली में घूमते भिखारियों की आवाजें जहाँ कहीं कोई छोटी–सी घटना दिल को अथवा चेतना को छू जाती है, वही अपनी छाप छोड़ जाती हैं।'

इस परिवार के संपर्क में आने से उस घर का नौकर 'तुलसी' अनपढ़ होते हुए भी पढ़ना–लिखना सीख लेता है। परिवार में शैक्षिक व्यवस्था इतनी प्रभावकारी थी, कि एक अनपढ़ नौकर भी उसके प्रभाववश पढ़ना–लिखना सीखता है और उस घर के संस्कारों से प्रभावित होकर अपनी प्रखर एवं तीक्ष्ण बुद्धि के बल पर श्लोक मंत्रोच्चरण, संध्यावंदन के संपर्क में प्रभावकारी शिक्षा अर्जित करता है, तो उस परिवार की शैक्षिक व्यवस्था कैसे होगी और उन परिवार के सदस्यों का शैक्षिक स्तर किस प्रकार होगा। परिवार शैक्षिक स्तर से संपन्न था।

हिन्दू परिवार के उन दोनों लड़कों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा प्रदान की जाती है। उदाहरण प्रस्तुत है –

'सदाचार जीवन, दुराचार मृत्यु है।'
'क्या मतलब?'
''इसका मतलब है स्त्रियों के पैरों की तरफ देखना चाहिए, चेहरे की तरफ नहीं देखना चाहिए।'
'दुराचार है पेशबवाली जगह को हाथ लगाना, गाली देना भी दुराचार है।'

और उन लड़कों को स्त्रियों के प्रति गैर–मनोवैज्ञानिक दृष्टि दी जाती है और उन्हें परिवर्तनशील सामाजिक रिश्तों से अलग रखा जाता है। इससे उनमें आत्मविश्वास की कमी होती है, वे ग्लानि एवं हीनता को महसूस करते हैं। वे दिशाहीन से हो जाते हैं और समाज में सार्थक भूमिका निभाने में असफल रह जाते हैं। यह एक मध्यवर्गीय हिन्दू–परिवार का माहौल या परिवेश है।

यहाँ पर प्रसिद्द आलोचक राजेश्वर सक्सेना के विचार नितांत उल्लेखनीय हैं– 'वीर्यपात और स्वप्नदोष से आतंकित होकर तरुण अपने यथार्थ विकास से विमुख हो जाते हैं। किताबों में से औरत के चित्र फाड़ डालते हैं। यह जीवन निषेध (Life negation) है। इस तरह ग्लानि, हीनता और दमन के मूल में है जीवन निषेध की वह अवधारणा जो धर्म–दर्शन और नीति के नाम से घुट्टी में पिलाई गयी है। भय और पीड़ा से निर्मित संस्कार

अमानवीय होता है, वह चरित्र–हत्या करने वाला होता है, छल–कपट और पाखण्ड को बढ़ाने वाला होता है।'

इस सन्दर्भ में यह विचार नितांत उल्लेखनीय है –'झरोखे' में एक मध्यवर्गीय परिवार के सदस्य सन्ध्या–उपासना करते हैं, वे आर्य समाजी संस्कार के हैं –प्राणायाम और जाप से एकाग्रचित्त होने तथा हवन से शुद्ध होने का कार्यक्रम चलाते हैं। बच्चों को पढ़ाने वाला पंडित भी योग और ब्रह्मचर्य की घिसी–पिटी बातों को सिखाता है। बच्चों में औरत के प्रति, लिंग के प्रति घृणा और भय पैदा कर दिया जाता है। अर्जुन, पृथ्वीराज चौहान, राणा प्रताप जैसे आर्यवर बनने की शिक्षा दी जाती है। यहाँ तक कि घर का नौकर तुलसी भी मंत्रपाठी हो जाता है।

'कड़ियाँ' उपन्यास की कथा–भूमि में महेन्द्र के संदर्भ में यह विचार नितांत उल्लेखनीय है– 'कड़ियाँ उपन्यास में मध्यवर्गीय संस्कार और संवेदन का संघर्ष है जो महेन्द्र के जीवन को बदल देता है। महेन्द्र, सुषमा के फेर में अपने पत्नी प्रमिला को छोड़ देता है। वह पाप–पुण्य को बकवास मानते हुए भी स्वयं को संस्कारी कहता है, अपने भीतर की हीनताओं से मुक्ति पाने के लिए परिवार के नैतिक वन्धनों को तोड़ डालता है। आधुनिकता की छाप ने महेन्द्र को विसंगतियों का नमूना बना दिया है। महेन्द्र की भावुकता पूरे परिवार को तोड़ डालती है। महेन्द्र अपनी मनोग्रंथियों के कारण स्वतः ही विडम्बनापूर्ण परिस्थितियों को आमंत्रित करता है।' उपर्युक्त विचारों से पता चलता है कि महेन्द्र अपने–आप को संस्कारों से बचा नहीं पाता और वह पाप–पुण्य के बारे में विशवास नहीं रखता है फिर भी अपने आपको संस्कारवान मानता है।

भीष्म साहनी जी ने अपने 'झरोखे' उपन्यास की कथा–भूमि में एक मध्यवर्गीय हिन्दू परिवार के शैक्षिक महत्ता को दर्शाया है। इस आर्य–समाजीय परिवार में 'तुलसी' एक गांव का अनपढ़ भोला–भाला आम चरित्र है। वह इस घर में एक नौकर की हैसियत से काम करता है। वर्ग–भेद को भली– भाँति पहचानता है। बड़ा मेहनती है और उसकी विवेक बुध्दि में कमी नजर आती। इस परिवार में वह वर्षों से अपना जीवन व्यतीत कर चुका था। इस परिवार के संग रहने के कारण उस परिवार के संस्कार एवं शिक्षा के परिवेश का परिणामकारी प्रभाव हुआ है। इस कारण तुलसी ने पढ़ना–लिखना,मंत्र, श्लोक, संध्यावंदना और पूजा, हवन आदि करना सीख लिया था। परन्तु तुलसी दुनिया की इस नियति से परे था कि निम्न वर्गों के लोग पढ़ने से अपने पिछड़ेपन की निज स्थिति को जान लेंगे और वर्ग शत्रु को भी ब–खूबी पहचान लेंगे और अपमान को सह नहीं पायेंगे। बल्कि इस उच्च वर्गों से संघर्ष विद्रोह पर उतर आयेंगे। वर्गीय मानसिक धारणा को 'झरोखे' के प्रस्तुत उदाहरणों से स्पष्ट होता है – 'अब तुलसी को भी अपने साथ मिलाने लगे हो।'

'तुम इसकी जिन्दगी बर्बाद करने पर तुले हुए हो।'

'पढ़–लिख जाएगा तो क्या करेगा, क्या बैंक का मैनेजर बन जाएगा? यह बरतन ही मांजेगा, और क्या करेगा? इसे जैसा है वैसा ही रहने दो। क्यों उसकी जिन्दगी बरबाद करते हो।'

इस संदर्भ में वीरेन्द्र मोहन जी के यह विचार वर्गीय मानसिकता को और स्पष्ट रूप देता है। इसी कारण ये विचार नितांत उल्लेखनीय हैं – "यह है वर्गीय मानसिकता। इसलिए जब तुलसी का बोध जागृत हो जाता है, तो उच्च वर्ग उसके प्रति करुणा या सहानुभूति से कुछ नहीं छद्म होती है– स्वार्थ के लिए श्यामा बीबी की तरह। तुलसी आर्यसमाज, औषधालय, बैंक सब जगह भटकता है नियतिवाद को ढोते हुए लेकिन उसे कहीं भी उचित मुआवजा नहीं मिलता। इसलिए वह औषधालय और बैंक के अनेक परिवारों का बोझ न ढोकर पुनः पुराने

एक परिवार में आ जाता है।'

तुलसी के संदर्भ में उपर्युक्त वीरेन्द्र मोहन जी के विचारों से राजेश्वर सक्सेना के विचार मेल खाते हैं और यह विचार सटीक भी प्रतीत होते हैं– 'झरोखे' उपन्यास में तुलसी को नौकर की हैसियत से मुक्ति नहीं मिलती। वह आयुर्वेद चिकित्सालय में भी घर का नौकर है, उसके बच्चे भी उसकी नियति को पाते हैं। तुलसी की वास्तविक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता।' उपर्युक्त विचारों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि किसी निम्न वर्ग के नौकर के पढ़–लिख जाने से उसके साथ उच्च वर्गे के लोगों का व्यवहार सहानुभूति एवं करुणा से युक्त नहीं हो जाता। वह अपनी जिन्दगी को परिवर्तित करना चाहता है परन्तु वर्गीय मानसिकता के कारण परिवर्तित नहीं कर पाता और वह उसी परिवार में एक नौकर की हैसियत से बच नहीं पाता और उसके बेटे वेद को भी उसी नियति का शिकार होना पड़ता है।

तुलसी मूल से ही शिक्षित हुआ होता, तो इस वर्ग–भेद का शिकार नहीं बन पाता, क्योंकि लाला जी की सिफारिश से ही तुलसी औषधालय में वैद्यगिरि सीखने जाता है। परन्तु उसे वैद्यगिरि न सिखाकर वैद्य के घर के काम–काज और सीढ़ियाँ धोने का काम दिया जाता है। फिर किसी बैंक की नौकरी करने के लिए जाता है, तो वहां पर भी कर्मचारी–खजांची रौब जमाते हुए कहता है –'तुलसी उठ, एक गिलास पानी ले आ। जरा हाथ हिलाया कर, चुस्ती से काम किया कर।' तुलसी को यह व्यवहार रास नहीं आता, क्योंकि यह उच्चवर्गीय लोग अपने मस्ती के मिजाज में निम्नवर्गीयों पर जोर करते हैं और उनके साथ करुणा, मैत्री और सहानुभूति से पेश नहीं आते। वे निम्नवर्गीयों को कुछ सिखाना–बनाना नहीं चाहते। वे उनको सहन नहीं पाते। वह बैंक की नौकरी को छोड़कर चला जाता है। वर्ग–भेद को पहचान लेता है फिर उसी घर में नौकर के काम पर लग जाता है।

शिक्षा और अशिक्षा की समस्या को 'मय्यादास की माड़ी' में भी दर्शाया गया है। वानप्रस्थी की बेटी सुमित्रा का ब्याह सरगोधा में ही हुआ था। वह अनपढ़, अशिक्षित नारी थी। यह उस दिनों की बात है, जब रेलों का काम शुरू हुआ था तो उसी काम की वजह से वानप्रस्थी का दामाद वजीराबाद तक चला गया था। वानप्रस्थी को किसी काम से घर के बाहर जाना पड़ा। उसकी अनुपस्थिति में वजीराबाद में रहे उनका दामाद बीमार पड़ गया था और उसने कई पत्र लिखे कि मैं यहाँ बीमार पड़ा हूँ मुझे यहाँ से ले जाओ। परन्तु उसकी पत्नी सुमित्रा अनपढ़ थी। उसने समझा कि यह सारी चिट्ठियां उसके पिता वानप्रस्थी की हैं और उन चिट्ठियों को निकालकर रखा था। वानप्रस्थी के लौटने के पश्चात् उन पत्रों को पढ़ने पर वह वजीराबाद चला गया। परन्तु वहां उनका दामाद परलोक सिधार चुका था। सुमित्रा पिता की राह में आंखें बिछाए बैठी थी। वह भी रोग का शिकार बन चुकी थी। पिता के आते ही, पति की मृत्यु का पता चलते ही सुमित्रा के दुःखित मन से यह शब्द फूट निकलते हैं– "मैंने भी दो अक्षर पढ़ लिए होते, तो क्या मालूम वह बच ही जाते।'

यहाँ पर भीष्म साहनी जी की कुशलता सराहनीय है, वे इस बात की ओर संकेत करते हैं कि भारतीय नारी की त्यागमय और पति के प्रति स्वामिनिष्ठा की भावना को दर्शाया। वह पत्नी अपनी मृत्यु के आगोश में लीन होते हुए भी अपने पति की भलाई चाहती है। रचनाकार भारतीय पतिव्रता नारी के गरिमामय चरित्र को दर्शाते हैं। इसके साथ–साथ यह भी दर्शाते हैं कि नारी शिक्षा कितनी महत्वपूर्ण होती है। सुमित्रा अगर शिक्षित होती, तो सही समय पर पहुँचकर अपने पति के प्राण बचा सकती थी। सुमित्रा को अनपढ़ होने के कारण अपने पति को खोना पड़ा। जीवन में विधवा का दुःख झेलना पड़ा। नारी शिक्षा पर जोर दिया गया है। आज के प्रासंगिक

सन्दर्भ में 'बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं' नारी सशक्तिकरण पर सरकार जोर देते हुए नारी के लिए संबल की आशा बनी हुई है।

वानप्रस्थी की बेटी दिक् रोग का शिकार होकर, मृत्युवश हो जाती है। परन्तु बेटी के वह शब्द पिता को शिक्षा के प्रति जागरूक बना देते हैं, वानप्रस्थी, बेटी सुमित्रा के शब्द और चेहरा आंखों के सामने आते ही विचलित सा हो जाता है। मास्टर वानप्रस्थी के मस्तिष्क में बेटी के वह शब्द अमिट–छाप छोड़ जाते हैं। उसी से स्फूर्ति पाकर उनके मन–मस्तिष्क में यह विचार उत्पन्न होते हैं–'मैं जो काम करने लगा हूं, उससे मेरी बेटी तो नहीं पढ़ पाएगी, पर किसी की बेटी तो पढ़ेगी, किसी लड़की की तो भलाई होगी, मेरी मेहनत किसी के तो काम आएगी।' अपनी विधवा बेटी के उन शब्दों से प्रेरित वानप्रस्थी ने मन में ठान लिया कि स्त्रियां भी शिक्षित हों, ताकि जो उसकी बेटी के साथ हुआ है, वह किसी और के साथ ना हो।

वानप्रस्थी विरोधों का सामना बड़ी मजबूती के साथ करता है– 'लड़कियां दो अक्षर पढ़ आयेंगी, तो यह कंजरख़ाना बन जाएगा।' और फिर जोर से चिल्लाते हुए बोला –'हमारी बेटियां पढेंगीं तो वह कंजरखाना बन जाएगा।' अनेक विरोधों के बावजूद भी वानप्रस्थी पाठशाला का श्रीगणेश करता है। फलस्वरूप उसके सामने एक युवती खड़ी है। वानप्रस्थी हत् प्रभ होकर उसे देखता है और उसे उसका सपना साकार सा होता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में वानप्रस्थी और युवती के बीच के संवाद प्रस्तुत है।

'कौन हो बेटी? कहां से आई हो?'

'जी, मैं स्कूल में नाम लिखवाऊंगी।'

'कहां से आई हो बेटी कौन हो तुम?'

'जी, मैं दीवानों की माड़ी में आई हूं, मैं उनकी बहु हूं।'

'घर वालों से पूछ लिया है बेटी?'

'जी, मैं किससे पूछूं?'

'बेटी, अगर तेरे घर वालों ने ऐतराज किया तो?'

'जी, मैं पढ़ूंगी।'

'तुम पढ़ोगी, बच्ची तुम पढ़ोगी।'

अंततः वानप्रस्थी ने लड़की की पढ़ाई के प्रति उत्सुकता को देखकर उसके आत्मविश्वास को बनाये रखा और प्रोत्साहित भी किया इस प्रकार वानप्रस्थी अपनी आशा के दीप के रूप में प्रकाशमयी पाठशाला को प्रारंभ कर समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता पैदा करता है। प्रस्तुत संदर्भ में शिक्षा के प्रति डॉ. तेजसिंह जी के विचार नितांत प्रस्तुत है। डॉ. तेजसिंह शिक्षा की महत्ता को दर्शाते हुए एक दलित लालबाई नामक वेश्या द्वारा समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता पैदा करते हैं और शिक्षा के प्रति उस वेश्या की संकल्पबद्द ललक को उभारते हैं – ऐसे प्रसंग साहित्य में अत्यन्त दुर्लभ है। उदाहरण द्रष्टव्य है – 'वेश्या लालबाई संकल्प लेती है कि वह अपने बेटे बाबू को जरूर पढ़ाएगी। वह जानती है कि इस बस्ती का कोई भी बच्चा जवान होकर जज, कलेक्टर और मुन्सिफ, मजिस्ट्रेट न हुआ था। बस सभी वासना के इस भयानक जंगल में खो गए। वह बाबू को दलाल न बनाना चाहती थी। पढ़ा–लिखाकर अच्छा इन्सान बनाने के हक में थी। इसलिए वह स्कूल के मास्टरों की बदतमीजी भी सहन कर लेती है। कितनी ही बार काम न होते हुए भी स्कूल के एक–दो मास्टरों ने उसे बुलाया

था। बाबू की खातिर उसे जाना ही पड़ा, मन न चाहते हुए भी वह बात सुननी पड़ी थी जिसे कोई भी औरत सुनना पसन्द नहीं करती। पर वह न सुने, तो बाबू का क्या होगा। स्कूल में बाबू को वेश्या का बेटा होने का अपमान झेलना पड़ता है। यहाँ तक कि उसकी बस्ती के लोग उसे मास्टर जी कहकर चिढ़ाया करते। बाबू भी अपनी माँ की तरह बुरा नहीं मानता था। लालबाई की आशाओं और आकांक्षाओं का केंद्र बाबू ही था। वह अपने संकल्प को सपने में पूरा होते देखती है कि बाबू ने बारहवीं कक्षा पास कर ली हैं। फिर कॉलेज में उसका दाखिला हो जाता है बाबू खूब पढ़ता है। कोठे पर पहले जो लोग बाबू को गालियाँ देते थे, मजाक उड़ाते थे, अब उसे प्यार करने लगे हैं। कोठे के अन्य बच्चे भी धीरे–धीरे पढ़ने लगे हैं। कॉलेज से लौटकर बाबू उन्हें पढ़ाता है। यह समाज में सबसे ज्यादा अपमानित, तिरष्कृत और उपेक्षित स्त्री लालबाई का सपना है जिसे एक–न–एक दिन पूरा होना ही है। शिक्षित और संगठित होकर दलित अपनी अस्मिता की लड़ाई समाज में समानता पा सकता है। यह दिवास्वप्न नहीं है, बल्कि एक सच्चाई है।' उपर्युक्त विचारों से बोध होता है कि लालबाई जैसी वेश्या स्त्री सभी समस्याओं का सामना करते हुए अपने पुत्र के शिक्षा एवं भविष्य के प्रति सचेत ही नहीं, बल्कि अपनी प्रतिबध्दता व संकल्प को बनाये रक्खा और सपने को साकार बनाने में सफलता के शिखर –लक्ष तक पहुँचने में कोई कसर शेष नहीं छोड़ी। लालबाई अपने–आप को भारतीय संकल्पबद्द नारी के रूप में स्थापित करने में सफल हो पायी है।

सन्दर्भ संकेत :–

1. भीष्म साहनी –झरोखे –पृ. 31, 32
2. दस्तावेज 61 अक्टूबर –दिसंबर –1993 –पृ. 34
3. भीष्म साहनी –झरोखे –पृ. 32
4. राजेश्वर सक्सेना और प्रताप ठाकुर –भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना –पृ. 84
5. राजेश्वर सक्सेना और प्रताप ठाकुर –भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना –पृ. 83, 84
6. राजेश्वर सक्सेना और प्रताप ठाकुर –भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना –पृ. 85, 86
7. भीष्म साहनी –झरोखे –पृ. 46
8. राजेश्वर सक्सेना और प्रताप ठाकुर –भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना –पृ. 121
9. राजेश्वर सक्सेना और प्रताप ठाकुर –भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना –पृ. 84
10. भीष्म साहनी –झरोखे –पृ. 123
11. मय्यादास की माड़ी –पृ. 260, 261
12. मय्यादास की माड़ी –पृ. 261
13. मय्यादास की माड़ी –पृ. 261
14. मय्यादास की माड़ी –पृ. 266
15. डॉ. तेजसिंह – आज का दलित साहित्य –पृ. 28, 29

दूरवाणी 9739935976 / 8277325957, ई–मेल: drbkbsr@gmail.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 40-43

वाणी के डिक्टेटर कबीर

–चोवाराम यदु, शोधार्थी
–डॉ. आर.के. पाण्डेय, शोध–निर्देशक
विभागाध्यक्ष (हिंदी) संत गुरु घासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कुरूद, जिला–धमतरी (छ.ग.)

निर्गुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवियों में कबीरदास का नाम आदर से लिया जाता है। ज्ञानमार्गी शाखा के अग्रणी कवि कबीरदास सर्वाधिक चर्चित एवं विवादित भी रहे हैं। इनके जन्म, जन्मस्थान, समय, जाति, माता–पिता आदि के विषय में काफी मतभेद रहा है, फिर भी ये तमाम बातें उन्हें कमतर नहीं अपितु सबल ही बनाते हैं। कबीर ने अपने जन्मस्थान और जाति के बारे में लिखा है– 'मैं काशी का जुलाहा'। कबीर का जिस समय प्रादुर्भाव हुआ उस समय समाज में नाना प्रकार की बुराइयाँ, कुरीतियाँ प्रचलन में थीं, ऐसी कुरीतियों को देखकर एक सच्चा सहृदय कैसे चुप रह सकता था, ठीक वही कबीर के साथ भी हुआ।

कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे, लेकिन उन्होंने पर्यटन, तीर्थाटन एवं सत्संग किया था, जिसके परिणाम स्वरूप उनमें ज्ञान का अथाह भंडार भरा हुआ था। शिवकुमार शर्मा ने ठीक ही कहा है– ''भले ही कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे, परन्तु वे बहुश्रुत अवश्य थे। वे एक सिद्ध कवि की भांति काव्य परम्पराओं, कवि समयों तथा कवि कर्म के अन्य ज्ञातव्य रहस्यों से परिचित थे। उन्हें यह सब कुछ परम्परा से प्राप्त हुआ था।''[1]

कबीरदास वाणी के डिक्टेटर थे। भले ही वे पढ़े–लिखे नहीं थे, लेकिन उनके कहने की जो शैली है, वह सीधे–सीधे प्रभाव डालने वाली होती है। इस संबंध में शिवकुमार शर्मा के विचार अत्यंत महत्वपूर्ण हैं– ''कबीर का अभिव्यक्ति–पक्ष चाहे सूर, तुलसी और केशव का सा न हो, परन्तु जो कुछ है वह इतना पर्याप्त है कि वे किसी रियायत से नहीं वरन् ईमानदारी से कवि कहला सकते हैं।''[2] कबीर की वाणी आम जनमानस की वाणी है, यही कारण है कि उनकी वाणी आम लोगों में बस गई और कबीर भारतीय जनता के सुख–दुख के साथी बन गए।

शास्त्रीय ज्ञान से कबीरदास वंचित थे, इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें कुछ ज्ञान ही नहीं था, उन्हें पर्याप्त ज्ञान था और वह ज्ञान पुस्तकीय ज्ञान न होकर अनुभवजन्य था। सत्यभामा आड़िल के विचार उल्लेखनीय हैं– ''यद्यपि कबीर शास्त्रीय ज्ञान से वंचित थे, उन्होंने 'मसि कागद तो छुआ नहीं था' तथापि उन्होंने पर्यटन तथा सत्संग द्वारा ज्ञान को प्रत्यक्ष किया था। प्रत्यक्ष ज्ञान में वैयक्तिक साधना की अनुभूति का संयोग होने से कबीर की वाणी मानव मात्र के लिए सुखकारी है वह शास्त्रज्ञान से भी अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने शास्त्रों के बोझिल ज्ञान का विरोध भी किया है।''[3]

कबीरदास अपने समय के महान समाज–सुधारक थे। कविता करना उनका उद्देश्य नहीं था। कविता

के लिए उन्होंने कोई श्रम–साध्य या कृत्रिम–सौंदर्य को कहीं भी स्थान नहीं दिया है। उनके काव्य में अनेक ध ार्मिक संप्रदायों का प्रभाव उल्लेखित हुआ है, इसमें उन्होंने धर्म आदि का कोई शास्त्रीय विवेचन न करके केवल जनभाषा में जनजीवन के सत्य को अभिव्यक्ति दी है। इस संबंध में कुसुम शर्मा ने ठीक ही लिखा है– ''कबीर का साहित्य श्रम साध्य अथवा कृत्रिम सौंदर्य रुचि द्वारा रचित नहीं हुआ। इनके काव्य में आध्यात्मिक विषयों की अभिव्यक्ति हुई है, पर वह जन जीवन में डूबी हुई अनुभूतियों से संपन्न है। कबीर काव्य में अनेक धार्मिक संप्रदायों के प्रभाव को आत्मसात किया है, किन्तु उसमें धर्म अथवा साधना की कोई शास्त्रीय व्याख्या नहीं की, बल्कि जनभाषा में उसका मर्म है। इनके काव्य में जनजीवन के सत्य की अभिव्यक्ति अलंकार विहीन सीधी सादी भाषा में है।''[4]

कबीर की वाणी में अनुभव की सच्चाई है, उन्होंने समाज में जो देखा–परखा वह पुस्तकीय ज्ञान पर न होकर स्व–अनुभूत है। यही कारण है कि उनके पदों पर अनुभव की सर्वांगीणता दिखाई देती है। कुसुम शर्मा के शब्दों में– ''कवि पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाले थे, नाथ पंथियों की भांति योगी नहीं थे। यही कारण है कबीर संत की वाणी में जीवनगत अनुभव की सर्वांगीणता है, इनकी साधना में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक है।''[5]

कबीर की वाणी में इतनी सहजता, सरलता है कि दोहे जैसे छोटे व कम शब्दों में अधिक भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता है। उन्होंने नारी को माया का रूप माना है और नारी–निंदा की है– 'नारी की झाईं परत अन्धा होत भुजंग। कबिरा तिनकी कौन गति नित नारी के संग।' कबीर नारी की निंदा ही नहीं करते वे दूसरी ओर सती और पतिव्रता के आदर्श पथ पर चलने वाली नारी की मुक्त कंठ से प्रशंसा भी करते हैं। जहाँ वाणी में पावित्र्य, सरलता, सहजता देखा जा सकता है– 'पवित्रता मैली भली, काली कुंचित कुरूप। पतिव्रता के रूप पर वारो कोटि सरूप।।'

शास्त्रों में कही बातों की अपेक्षा अनुभवगत अभिव्यक्ति पर ही अधिक विश्वास करते दिखाई पड़ते हैं कबीरदास जी, तभी तो उन्होंने साफ शब्दों में कहा है– 'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखिन की देखी। मैं कहता सुरझावन हारी, तू राखा उरझोय रे।' कला की सहजता के संबंध में नगेन्द्र के विचार दृष्टव्य हैं– ''कवि के रूप में कबीरदास जीवन के अत्यंत निकट हैं। सहजता उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी शोभा और कला की सबसे बड़ी विशेषता है। उनके काव्य का आधार स्वानुभूति या यथार्थ है।''[6]

कबीरदास के पदों से यह स्पष्ट होता है कि वे अपनी शैली के स्वयं निर्माता हैं। उन्होंने किसी परंपरा का निर्वहन नहीं किया है, उनके सभी काव्य मुक्तक शैली में लिखा गया है। उन्होंने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए आमजन की भाषा को ही सर्वोपरि माना है। कहीं भी भाषा संबंधी विवशता उन्होंने स्वीकार नहीं किया है। शिवकुमार शर्मा के अनुसार– ''कबीर अपनी शैली के स्वयं निर्माता हैं। उनका समस्त काव्य मुक्तक शैली में है। उनके व्यक्तित्व के गुण मस्त मौलापन, अक्खड़पन और मौजीपन उनकी शैली में अवतरित हो गये हैं, अतः उसमें प्रभावात्मकता, बल और ओज है। इनकी भाषा खिचड़ी भाषा है, जिसको कि कई विद्वानों ने अव्यवस्थित और अपरिष्कृत कहा है, पर यह स्मरण रखना होगा कि उनकी भाषा में अभिव्यक्ति के सभी आवश्यक उपकरण मौजूद हैं। उन्होंने भावों की अभिव्यक्ति के लिए कहीं भी भाषा संबंधी विवशता का अनुभव नहीं किया।''[7]

कबीर की भाषा में अक्खड़पन दिखाई देता है, यही अक्खड़पन उनके व्यंग्य का आधार है। जब वे व्यंग्य

करने लगते हैं तो सभी इनके व्यंग्य से कटकर रह जाते हैं, चाहे मुल्ला हो या पंडित, योगी हो या अवधूत। इस प्रकार उनके भाषा की मार सहना और खड़े रहना दोनों स्थिति में संभव नहीं था। उनकी वाणी की सहजता देखते ही बनती है– 'माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर। कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर।' कबीर ने अपने काव्य में व्यंग्य के सहारे समाज में प्रचलित बाह्याडम्बरों को धराशाई कर दिया। उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों को खूब खरी–खोटी सुनाई है, वे तो यहाँ तक कहते हैं कि 'अरे इन दोउन राह न पाई'। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की काव्य–प्रतिभा के संबंध में कहा है वह उचित प्रतीत होता है– ''भाषा बहुत परिष्कृत और परिमार्जित न होने पर भी कबीर की उक्तियों में कहीं–कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है। प्रतिभा उनमें बड़ी प्रखर थी इसमें संदेह नहीं।''[8]

'बीजक' उनकी महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें साखी, सबद और रमैनी ये तीनों समाया हुआ है। उनके साखी, सबद और रमैनी की काव्य–भाषा के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है– ''सांप्रदायिक शिक्षा और सिद्धांत के उपदेश मुख्यतः 'साखी' के भीतर हैं जो दोहे में है। इसकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी, पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं, जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं–कहीं पूरवी बोली का भी व्यवहार है।''[9]

कृत्रिमता या बनावटी कबीर को जरा भी पसंद नहीं था। यही कारण है कि उन्हें जो भी अच्छा लगा उसका समर्थन किया और जो उन्हें अच्छा नहीं लगा उसका विरोध भी किया। उनकी भाषा में लापरवाही एवं सजगता दोनों मौजूद हैं, जब वे पंडित या शेख के प्रति आक्रमण करते हैं तो वहाँ वे लापरवाह तथा अवधूत या योगी के प्रति आक्रमण करते हैं, तब वे सजग दिखाई देते हैं। कबीर की वाणी ऐसी वाणी के रूप में भी प्रस्फुटित हुआ है, जो भाषा में बिना कहे भी बहुत कुछ कह देने एवं बिना मारे ही प्राण लेने की अमोघ शक्ति जैसा है। उन्होंने जो धारदार व्यंग्य का सहारा लिया है, वह बाहर ही नहीं पूरा भीतर तक झकझोर कर रख देता है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय है– 'हीरा पाय परख नहि जाने, कौड़ी परखन करता है। कहत कबीर सुनो भाई साधो, हरि जैसे को तैसा है।' यहाँ हम देखते हैं तो कबीर ने ऐसी व्यंग्य का सहारा लिया है, जो कहने का बहुत आसान तरीका है। कहने वाले ने यहाँ कहीं भी क्रोध और गुस्से का आश्रय नहीं लिया है। यहाँ कथन में निश्चितता तो है ही एक सहज प्रवाह भी है।

कबीर के पास सबसे बड़ा गुण था आत्मविश्वास का। इसी आत्मविश्वास के सहारे उन्होंने अपनी बातों को बेखटके कहा है, जरा भी हिचक नहीं किया है। उन्होंने कभी कलापक्ष को कमतर नहीं समझा है। वे जनभाषा के हिमायती थे। कबीर ने भले ही बाह्याडम्बरों की आलोचना की है, अगम–अगोचर की चर्चा की है, फिर भी वे साधारण जनता के पास ही रहे हैं। आम लोगों में आज भी कबीर बसे हुए हैं। आज से लगभग छह सौ वर्षों पहले के कबीर जितने उस समय प्रासंगिक थे आज भी उनके द्वारा कही गई वाणी अमर है। तभी तो हरेक धार्मिक, सामाजिक कार्यक्रमों में आवश्यकतानुसार समाज को सीख देने के लिए कबीर के पदों को भाव के साथ गाया जाता है। यह कबीर की लोकप्रियता नहीं तो और क्या है ? निस्संदेह कबीर की वाणी में सरलता, सहजता, प्रवाहमयता के गुण मौजूद हैं।

कबीरदास एक ऐसे महामानव हैं, जो परम संतोषी, निर्भीक, सत्यवादी, उदार, अहिंसावादी, सत्य और प्रेम के समर्थक, सात्विक, प्रकृति प्रेमी, बाह्याडम्बर के विरोधी, क्रांतिकारी, दूरदर्शी एवं समाज सुधारक के रूप में

चीन्हें जाते हैं। वे प्रखर प्रतिभा के धनी थे। उनमें आत्मविश्वास के गुण कूट–कूट कर भरा हुआ था। वे अटपटी वाणी के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। कुसम शर्मा ने ठीक ही कहा है– ''वे जीवन पर्यन्त अपनी अटपटी वाणी से उत्तर भारत का नेतृत्व करते रहे। सुकरात के ही समान वे सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक व्यवस्था पर तीव्रतम आघात करते थे।''[10]

अंत में कहें तो कबीर के पदों पर किसी एक भाषा की प्रधानता न होकर कई भाषाओं का मिश्रण देखने को मिलता है। यही कारण है कि कबीर की भाषा को सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी कहा गया है। कबीर के पदों में पूर्वी हिंदी, खड़ी बोली, राजस्थानी, ब्रजभाषा, पंजाबी आदि भाषाओं के शब्द मिल जाते हैं। वे भले ही भोजपूरी क्षेत्र के रहने वाले थे, किंतु उन्होंने भोजपुरी क्षेत्र की बोलियों को महत्व नहीं दिया। इस प्रकार बनारस की बोली में काव्य रचना नहीं की। उन्होंने नाथ पंथियों की परंपरागत भाषा को महत्व दिया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर की भाषा की महत्ता स्वीकारते हैं और कहते हैं कि भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिटेक्टर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया है। बन गया तो सीधे–सीधे नहीं तो दरेरा देकर। कवि का उद्देश्य कविता करना नहीं था, उन्होंने अपनी बातों को कहने के लिए कविता का आश्रय जरूर लिया है। यही कारण है कि कबीर के काव्य–कला क्लीष्ट, दुरूह न होकर सहज और अनगढ़ है।

संदर्भ सूची :–

1. शर्मा, शिवकुमार. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ. दिल्ली : अशोक प्रकाशन, अठारहवाँ संस्करण, 2008; 155.
2. वही; 156.
3. आड़िल, सत्यभामा. प्राचीन हिंदी काव्य. रायपुर : छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी, पंचम संस्करण, 2017; 11.
4. शर्मा, कुसुम. साहित्य दर्पण. जयपुर : एम.के. पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2018; 92.
5. वही; 94.
6. नगेन्द्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, तीसरा संस्करण, 2017; 120.
7. शर्मा, शिवकुमार. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ. दिल्ली : अशोक प्रकाशन, अठारहवाँ संस्करण, 2008; 155.
8. शुक्ल, रामचन्द्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. दिल्ली : प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2005; 74.
9. वही; 74.
10. शर्मा, कुसुम. साहित्य दर्पण. जयपुर : एम.के. पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण 2018; 91

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 44-46

शिक्षा एवं संस्कृति में नारी साहित्य विमर्श

–डा० दीप चंद
सहायक प्रोफ़ेसर, हिंदी–विभाग, बाबु अनन्त राम जनता महाविधालय, कौल (कैथल) पिन 136021

भारत में नारी देवी श्रद्धा अबला जैसे संबोधनो से संबंधित करने की परंपरा बहुत पुराने समय से चली आ रही है। इस तरह के संबोधन अथवा विशेषण जोड़कर हमने उसे एक और पूजा की वस्तु बना दिया है। तो दूसरी ओर अबला के रूप में उसे भूल गया एवं चल संपत्ति बना दिया। हम यह भूल जाते हैं कि नारी मातृ सत्ता का नाम है। जो हमें जन्म देती है, पालती है ,तथा योग्य बनाती हैं। व्यक्ति को जन्म देकर उसे अपने पांव पर खड़ा करना राष्ट्र निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य है। यह कार्य नारी का मातृरूप ही करता है। बहन के रूप में मानव मात्र को अपनी स्नेहमयी छाया से अभिभूत किए रहना भी राष्ट्र निर्माण का कार्य है। आज तो नारी पुरुष की भांति सक्षम रहकर जीवन के हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा एवं कार्य कुशलता का पूर्ण परिचय दे रही है तथा उपग्रहों के माध्यम से अंतरिक्ष की यात्रा कर मानव विकास के लिए विविध प्रकार की खोजों में भी ध्यान दे रही है। आज विश्व के हर कोने में नारी के सुदृढ़ पगो की चाप सुनाई दे रही हैं।

आज जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी ने अपना स्थान बनाया है। शिक्षा के क्षेत्र में सभी परीक्षाओं में लड़कियां अधिक आगे रहती हैं। आज आई.ए.एस आई.आई.टी चिकित्सक,प्रबंधन सभी क्षेत्रों में नारी पुरुषों से आगे हैं। इंदिरा नूरी ने व्यवसाय और प्रबंधन में अपनी पहचान बनाई है। आज भारत के सबसे तेज बैंक आई.सी आई. सी.आई की सी.ई.ओ श्रीमती कोचर है। राजनीति में सोनिया गांधी देश की सबसे ताकतवर महिला है। मायावती,सुषमा स्वराज, उमा भारती आदि राजनेताओं के योगदान को कौन भूल सकता है। अभिनय के क्षेत्र में ऐश्वर्या राय, गायन के क्षेत्र में लता मंगेशकर, खेलों में सानिया मिर्जा, मैरीकॉम ,समाज प्रशासन में किरण बेदी प्रगति के मानदंड बन चुके हैं। शिक्षा चिकित्सा स्वास्थ्य और फैशन की बात करें तो नारी ही भारत की प्रगति की सूत्रधार हैं। स्कूल शिक्षा का सारा ढांचा शिक्षिकाओं के कंधों पर खड़ा है।

नारी का नौकरी में होना आज एक आम बात है। 50 वर्ष पहले यह एक बड़ी घटना थी। शताब्दियों से पुरुष ही घर के भरण पोषण का दायित्व संभालता रहा। नारी को केवल यह सिखाया गया कि तुम अच्छी मां बनो, अच्छी बहन और अच्छी पत्नी बनो। इसी में तुम्हारा जीवन सार्थक है। बाहर के जीवन से तुम्हें कुछ लेना–देना नहीं, इसलिए शिक्षा से भी तुम्हारा कोई वास्ता नहीं। नारी यह घरेलू दायित्वों को लंबे समय तक निभाती रही। वह घर की चारदीवारी में बंद रही। धीरे–धीरे नारी शिक्षा पर बल दिया गया। शिक्षा पर बल दिया गया। शिक्षा से चेतना जगी। नारी शिक्षा से जगी। नारी में आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ। परिणाम स्वरूप वह पुरुषों

से कंधे से कंधा मिलाकर अर्थोपार्जन के क्षेत्र में कूद पड़ी। समय ने यह सिद्ध कर दिया कि नारी पुरुषों से अधिक कुशल,ईमानदार और जिम्मेदार कर्मचारी है। जिन पदों पर नारियां आसीन हैं, उनमें अपेक्षाकृत बहुत कम बेईमानी और भ्रष्टाचारी है। जहां तक योग्यता का प्रश्न है, नारियों ने कर्म के सभी क्षेत्रों में नाम अर्जित किया है। नारी के नौकरों में आने से अनेक लाभ हुए हैं। सबसे पहला नाम नारी का सम्मान बढ़ गया। उसको एक स्वतंत्र व्यक्तित्व मिला। अब परिवार को चलाने में वह बराबरी की सहयोगी होती है। अब उसकी पहचान पत्नी के रूप में नहीं बल्कि जीवन संगिनी के रूप में विकसित होने लगी हैं।

नारी के चक्कर में आने के कई दुष्परिणाम भी सामने आए हैं। सबसे बड़ी हानि यह हुई है कि कामकाजी महिलाओं के बच्चे उपेक्षित रह जाते हैं। उन्हें मां का स्नेह नहीं मिल पाता। इसी कारण वह बच्चे गलत आदतों के शिकार हो जाते हैं। नौकरी में आने से नारी का अपना जीवन भी मशीन बन गया है। उन्हें ऑफिस का काम तो पुरुष के समान ही करना पड़ता है घर के सभी काम भी उसे करने पड़ते हैं। इसी तरह वह सदा भोज से लदी लदी रहते है। पहले पति और बच्चे घर आते थे, तो उनकी दिन भर की थकान, व्यथा और उदासी को पत्नी हर लिया करती थी। अब सभी लोग अपनी–अपनी समस्याएं लिए घर आते हैं और एक दूसरे का क्लेश बढ़ाते हैं। जिन परिवारों में पुरुष अपनी पति वाला रोग नहीं छोड़ पाते उनका जीवन पूरी तरह युद्ध का मैदान बन जाता है। नारी के नौकरों में आने से भारत की बेरोजगारी की समस्या और अधिक विकट हो गई है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि नारी का नौकरी में आना हानियों की अपेक्षा लाभ की मात्रा ही ज्यादा है।

एक समय था जब कि भारतवर्ष जगतगुरु कहलाता था। विश्व के कोने–कोने से शिक्षार्थी यहां के विश्वविद्यालयों में विद्या ग्रहण करने आते थे। परंतु परिस्थितियों के चक्रवात में भारत ऐसा कैसा आज यहां शिक्षा और अज्ञान का साम्राज्य है। विश्व के निरीक्षरो का एक बड़ा प्रतिशत भारत में विद्यमान है। यहां की नारियों की स्थिति और भी दयनीय रही है। उल्लेखनीय बात यह है की युगो तक विद्यालय शिक्षा से वंचित रहने पर भारतीय नारी के पुरुष समाज को सुसंकरित करने का बीड़ा उठाया। शिवाजी को महान बनाने वाली जीजाबाई थी। राम भगत तुलसीदास को बनाने वाली रत्नावली थी।

नारी और पुरुष दोनों समाज रूपी रथ के दो पहिए हैं। दोनों का समान रूप से शिक्षित होना आवश्यक है। स्त्री को अशिक्षित रखकर कोई समाज अपने कल्याण की बात नहीं सोच सकता। अरस्तु के कथनानुसार नारी की उन्नति कथा अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति अवनति निर्भर है। प्रश्न यह है कि नारी शिक्षा का रूप क्या है? क्या नारी और पुरुष की शिक्षा में कोई अंतर होना चाहिए? उत्तर है हां होना चाहिए। जब प्रकृति ने उन्हें संभाव्यता भिन्न बनाया है तो उनकी शिक्षा विभिन्न होनी चाहिए। नारी स्वभाव से कोमल होती है। उसमें समस्त रचनात्मक क्षमताएं होती हैं। नारी, दया, ममता, मधुरिमा, विश्वास, स्वच्छता, त्याग आदि व्रतियों का सागर है। अता उनकी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे उनकी इन शक्तियों का उत्तरोत्तर विकास हो। एक नारी चिकित्सा सेवा, संघ, शिक्षा, सुंदरिया बोध आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा आदि के रूप में कुशल सिद्ध हो सकती है। यह कार्य उनकी शक्तियों और रूचियों के अनुरूप हैं। आज की नारी पुरुषों के साथ या आगे जाने की होड़ में इंजीनियर, वाणिज्य, सेना, पायलट, पुलिस आदि सेवाओं में जा रही है। स्त्री के लिए वासी शिक्षा और नौकरी

चाहिए जिससे उसका स्त्रैण अक्षुण्ण बना रहें।

अतः कह सकते हैं कि आज भारत में नारी शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं है किंतु आशा जनक आवश्यक हैं। सरकार और समाज के प्रयत्नों से नारी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि नारी शिक्षा का अधिकाधिक विकास करके उसकी क्षमताओं को विकसित किया जाए। ऐसा होने पर राष्ट्र निर्माण में वह पुरुषों से भी अधिक सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

संदर्भ :-

1. नारी की अस्मिता : डॉ. गजानन माथुर
2. उत्तरा महिला पत्रिका 2004
3. औरत लेख : शिरीष कुमार मौर्य।

मो. न. 9306327642

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 47-52

चन्द्रकान्ता के उपन्यासों में कश्मीर

–डॉ. कमलेश यादव
सहायक आचार्य, हिन्दी, राजकीय कन्या महाविद्यालय, कोटपूतली (जयपुर)

कश्मीर के सांस्कृतिक एवं आचंलिक रंगों को हिन्दी साहित्य में दर्ज करने वाली प्रथम महिला। कश्मीर पर तीन महत्वपूर्ण उपन्यास लिखने के बावजूद चन्द्रकान्ता का लेखन समय के ज्वलंत प्रश्नों एवं वृहत्तर मानवीय सरोकारों से जुड़ा है। चन्द्रकान्ता कश्मीर की भूमि से जुड़ी लेखिका है। कश्मीर उनके प्राणों में सांस बनकर दौड़ रहा है। उन्होंने कश्मीर पर बेजोड़ साहित्य की रचना की।

जीवन परिचय :-

चन्द्रकान्ता का जन्म श्रीनगर कश्मीर में, 3 सितम्बर, 1938 ई0 को प्रोफेसर रामचन्द्र पण्डित के घर हुआ इनकी माता सम्पत्तिदेवी एक घरेलू औरत थी। इनके पिता समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। स्वभाव से चंचल और शरारती चन्द्रकान्ता माता की मृत्यु के पश्चात् शांत और गंभीर स्वभाव की हो गई। हरदम उछल–कूद करने वाली चन्द्रकान्ता अब पिता के चार बच्चों के लिए दो शादियाँ और की। किन्तु दुर्भाग्य से कोई भी शादी लंबे समय तक नहीं चली। इन सब घटनाओं का चन्द्रकान्ता के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसके मन में उठते हुए प्रश्न व्याकुल करने लगते परिणाम स्वरूप लेखिका का स्वभाव विद्रोही होता गया। क्योंकि घर के नियम–कायदे कानून के अनुसार उसने सिलाई–कढ़ाई सीखने की बजाय अध्ययन पर जोर दिया।

चन्द्रकान्ता के अनुसार– "श्रीनगर, कश्मीर में मेरी जन्मनाल गठी है। मेरी स्मृतियों के कोष इन्हीं वादियों में जुड़ें है। झीलों–झरनों और वितस्ता से मैंने जीने और बहने का मंत्र सीखा है। जन्मभूमि हमारे अनुभवों और अहसायों की जमीन होती है, इसलिए कथा संसार का हिस्सा बन जाती है।"[1]

चन्द्रकाता का विवाह छोटी उम्र में हो गया था। जिसका उनके मन मस्तिष्क पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। ससुराल में सबको अपने पढ़ने के निर्णय से अवगत करते हुए सहमति–असहमति के बीच उन्होंने आगे की पढ़ाई जारी रखी।

चन्द्रकाता की 23 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। इनमें से सात उपन्यास एक कविता संग्रह और शेष कहानी संग्रह है–

1. सलाखों के पीछे (1975)
2. गलत लोगों के बीच (1984)
3. दहलीज पर न्याय (1989)
4. काली बर्फ (1986) आदि।

उपन्यास :-

1. अर्थान्तर (1975)
2. अन्तिम साक्ष्य (1980)

3. बाकी जब खैरियत है। (1983) 4. ऐलान गली जिंदा है। (1984) आदि।

अन्य कृतियां :– कविता संग्रह है–यही कहीं आसपास (1999)

आत्मकथात्मक सस्मंरण– हाशिये की इबारतें (2008)

सस्मंरण एवं आलेख– मेरे भोजपत्र (2008)

ऐलान गली जिंदा है– लेखिका के अनुसार :– "यह उपन्यास साहित्य में मेरी अलग पहचान का कारण बना। शायद इसलिए भी कि इस उपन्यास के माध्यम से हिन्दी साहित्य के पाठकों ने कश्मीर के मध्यमवर्गीय जीवन को प्रचलित मुहावरों और फिल्मी तस्वीरों से अलग, लोक संस्कृति के आइने में एक भिन्न रूप में देखा। इसमें मेरे अंतरंण परिवेश की विसंगतियों, विद्रूप, द्वन्द्व संघर्ष और राजनीतिक–सामाजिक परिवर्तनों के प्रभाव झेलते समाज की कथा दर्ज है। पात्रों के कोने–कुदरों में झाकना अपने से साक्षात्कार करना था। मन्दिर के धर्मनिष्ठ गलत चश्मदीद गवाह थी। मन्दिर के धर्मनिष्ठ पुजारी संसारचन्द अभाव के किस चरण क्षण में मंन्दिर का दानपात्र उलटते है, जीरों पावर बल्ब की रोषनी में, अवतारें की माँ धुआती लकड़ियों पर भात राधंते, राग में मोजा पकाते भी क्यों और कैसे तटस्थ भाव से, धोकर सुखने डाल को, कहकर दीगर जरूरी कामों में व्यस्त हो जाती है, इसे समझने के लिए धर्म–कर्म –निष्ठ समाज में व्याप्त दारिद्रय और विद्रपों की पड़ताल भी जरूरी थी और उस समाज में मनोजगत में गहरे धंसने की भी।

ऐलान गली..... विरोध और विरोधाभासी से नरहीं एक भरी पूरी सृष्टि थी, जीवन की खूबियाँ–खराबियों से भरपूर। यहाँ जब नई बर्फे पड़ती, तो बर्फ नव उफवाद में दावतों का कारण बन जातेी, वही बर्फ कूचिता गिलषुद की कीचड़ कादों और ठिठुरन में बदल दुखों को बुलावा देती। यहाँ अपनी तय की गई सीमाओं की बलि चढ़ाते लोग थे, दरार पड़ती सांझी विरासतों और ढहते ढ़ांचों की पीड़ा झेलते बुजुर्ग थे, रोजी–रोटी की तलाश में घर द्वारा छोड़ देश–देशान्तर में भटकने जाते युवा थे।

एक–दूसरे के सुख–दुख में टांग अड़ाने की रियासतें भी थी, छोटे–मोटे भी और कमी न सूखने वाले करूणा के स्त्रोत भी। काफी कुछ था, जो समझ से परे भी था। और आश्चर्य और प्रतिरोध को जगाते, सोच को उकसाता था।"[2]

"ऐलान गली जिंदा है, उपन्यास में लेखिका में स्वर्ग के हाषिये पर बसे लोगों के जीवन को केन्द्र में रखकर सारा घटनाक्रम इस प्रकार संजोया है कि पाठक के दिमाग पर सीधा असर होता है। "देश का स्वर्ग' कहे जाने वाले कश्मीर में भी लोगों की जिंदगी दुर्गध, सीलन और कीचड़ से भरे स्थानों पर कर रही है। इस उपन्यास में लेखिका ने कश्मीर के सौन्दर्य को चित्रित करने की अपेक्षा वहाँ के लोगों के जीवन के यथार्थ को उकेरा है यह उपन्यास दो खण्डों में विभक्त है।

'ऐलान गली के निवासियों के आपसी संबंधों के विविध आयामों को इस उपन्यास में इतने विस्तार और सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है कि एक समूचे समाज का रूप उभकर सामने आता है। वस्तुतः अपने तमाम पिछड़ेपन के बावजूद ऐलान गली वही के प्रवासियों और निवासियों के दिल दिमाग में उसी तरह जिंदा हैं जिस तरह फूलों में सुगध।'[6] स्वयं लेखिका के शब्दों में– 'कश्मीर पर मैंने तीन उपन्यास और पचासे कहानियाँ लिखी। ऐलान गली जिंदा है कश्मीर की पृष्ठभूमि पर लिखा मेरा पहला उपन्यास है, जिसमें श्रीनगर–कश्मीर के अचंल का मेरा जाना पहचाना समाज है। उसी समाज में जीवन ऐलान गली जिंदा है उपन्यास के माध्यम से मैंनें कश्मीर

के मध्यवर्गीय जीवन को, प्रचलित मुहावरों, सैलानी दृष्टि से लिखी कहानियों और फिल्मी दृश्यों से बनी धारणाओं से अलग लोग संस्कृति के आईने में दिखाने की कोशिश की है।[3]

स्वर्ग के नजारों से हटकर हाशिये के लोगों की खराबियों से भरी जीवन शैली कर परीक्षण कर मैंने उन मूल्यों को खोजने की कोशिश की, जो तमाम विसंगतियों और विद्रूपों के बीच भले लुप्त लगे, पर अंतर्धारा की तरह लोगों की रंगों में बहते रहते है। कश्मीर की कश्मीयित और ललदेद व नुंद ऋषि की साझी विरासतों को हिन्दी जगत में पहली बार इस उपन्यास के माध्यम से जाना और इसे खूब सराहा भी। बल्कि मुझे इसी उपन्यास ने साहित्य जगत में एक अलग पहचान की। इसी लिखने की प्रेरणा मेरे परिवेश के जिंदा पात्रों ने की। वे मेरे साथ गली में जुट गए मुझसे अपनी कहानी लिखवा गए। मैंने कोई प्लानिंग नहीं की। जीवन स्थितियों के बीच से ही जीवन दर्शन प्रकट हो गया।"[4] घूमती है। उसकी तीन शदियाँ होती है। पहली पत्नी सुभद्रा विवाह के कुछ समय पश्चात् भयानक बीमारी से ग्रस्त हो जाती है और पति का दूसरा विवाह करा देती है। गोरी पढ़ी–लिखी नहीं थी, उन दोनों के संबंध मेल नहीं खाते थे। वह अपने दुखों को नहीं बात पाई और घुट–घुट कर मर गई। लेकिन राजनाथ उसकी मानसिक स्थिति को उसकी मृत्युं के बाद समझ पाए, सिर्फ इतना था कि वे थोड़ी देर से समझ गए। फिर उन्होंने 40 वर्षीय विधवा देवकी से विवाह किया तथा उसे पूरा सुख देना चाहा। यहाँ तक की देवकी की सन्तानोन्पति की कामना को पूर्ण करना चाहा जिससे देवकी प्रसन्न थी। लेकिन शायद राजनाथ के भाग्य में स्त्री सुख नहीं था, तभी तो उनसे कही पहले देवकी की भी इस लोक को त्याग कर चली गई। राजनाथ का जीवन हर नश्वर व्यक्ति के जीवन के इस पड़ाव की तरह ही अत्यन्त दुष्कर हो गया था।

अपने जीवन में आदर्षवादी नियमों पर चलते हुए अपनी एक बेटी का विवाह बिना दहेज के किया और उनके इस कार्य की परिणति बेटी की मौत के रूप में उठानी पड़ी। संयुक्त परिवार की मान प्रतिष्ठा व शान्ति बनाए रखने के लिए अपने ही घर की पांचवी मंजिल पर बसने का साहस था ताकि परिवार के अन्य सदस्य सुख–शांति से रह सके।

'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास के विषय में स्वयं लेखिका का मत है कि–'मुझे उन शस्यितों ने भी लिखने को प्रेरित किया, जो सामाजिक सरोकारों के लिए नहीं की तरह बटे और दीये की तरह चुपचाप जले पीठ पीछे की रोशनियाँ बनते ऐसे व्यक्तित्व, राजनाथ में मुझे अपने पिता की झलक मिली। उसी व्यक्तित्व ने मुझे यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास लिखा।[5] यहाँ वितस्ता बहती है– 1992 में प्रकाशित इस उपन्यास में सम्पूर्ण कथा राजनाथ कैल के इर्द गिर्द घूमती है।

कथा सतीसार– 'ऐलान गली जिंदा है' यहां वितस्ता बहती है' के बाद कश्मीर की पृष्ठभूमि पर लिखा गया चर्चित लेखिका चन्द्रकान्ता का वृहद् उपन्यास है कथा सतीसार। लेखिका ने इस उपन्यास में पात्रों के माध्यम से मानवीय अधिकार और अस्मिता से जुड़े प्रश्नों को उठाया है।

लेखिका कहती है कि अपने पर विश्वास मैंने कभी नहीं खोया। जन्मभूमि से निष्कासन और अपने ही स्वतंत्र गणतंत्र में शरणार्थी बनने की यंत्रणा ने मेरे लेखन को एक नई चुनौती दी, मुझसे कथा सतीसार उपन्यास लिखवाया। कथा सतीसार लिखना मेरे लिए जन्मभूमि का ऋण चुकाना था। एक लुप्त होती संस्कृति को इतिहास में दर्ज करना मात्र नही। नहीं कश्मीरियत की त्रासदी का जीवंत साक्ष्य मात्र। बल्कि निजी क्षति के साथ दुनिया भर में अपनी जन्मभूमि से निर्वासितों की त्रासदियों का साहित्यिक प्रतिरोध भी था।

कथा सतीसार लिखते पूरे आठ साल कई सकटों को झेलते इतिहास पूराण खंगालती रही। स्वर्ग से नरक बनतीं अपनी भूमि की व्यथा कथा कहते कई तनावों से जुझते बराबर महसूस करती रही कि देखी भोगी मानवीय यातना को शब्दबद्ध करना हिमालय लाघने से कम कष्टकर नही।

"'2001 में प्रकाशित यह उपन्यास अपने विषालरूप के कारण कई नामों में चर्चित रहा। जैसे साहित्य सृजन होते हुए भी राजनीतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक दस्तावेज कहा, किसी ने कश्मीर के दर्द और हादसों की गाथा भुक्त भोगी कश्मीरियों ने कथा सतीसार को जन तरंगिनी और महाकाव्य की संज्ञा देकर कश्मीर के अनचिहन का अनावरण माना।"[6]

इस उपन्यास में सन् 1937 से लेकर 2000 तक के शुरूआती समय के बीच बनते बिगड़ते कश्मीर की कथा को संवेदना का ऐसा पुट दिया है कि सारे पात्र सजीव हो उठते है। सामाजिक राजनीतिक परिदृश्य से घटे हादसों से जनजीवन के आपसी रिश्तों पर पड़े प्रभावों का संवेदनात्मक परीक्षण ही नहीं है यह उपन्यास वर्तमान के जवाबदेह तथ्यों को साहित्य में दर्ज करने से एक ऐतिहासिक दस्तावेज भी बन गई।

धरती का स्वर्ग कहा जाने वाला कश्मीर शुरू से ही या कहे कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्राकृतिक सौन्दर्य, सांस्कृति, दर्शन, तथा एक साझी परम्परा का केन्द्र रहा है। शैव दर्शन तथा बौद्ध दर्शन और इस्लाम दर्शन भी पल्लवित और पुष्पित हुए है। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की परिकल्पना से ओत–प्रोत कश्मीर जैसे प्रदेश में अनिष्ट की भावना की गुजाइंश न होना बीते जमाने की बात हो गई। इस प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रतीक का इतिहास जितना खूबसूरत था, वर्तमान उतना ही लोमहर्षक और कलुषित है। कश्मीर समस्या पर चन्द्रकान्ता ने अन्य उपन्यासों की अपेक्षा कथा सतीसार इस अर्थ में भिन्न है कि डॉ. इदुं प्रकाश पांडेय के अनुसार – इनकी सबसे बड़ी और बीहड़ कथाकृति है, साथ ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण भी। इस उपन्यास में 1931 से 2000 के प्रारम्भिक समय के बीच बनते बिगड़ते कश्मीर का आख्यान है।[7]

इस उपन्यास में लेखिका ने अतीत वर्तमान और भविष्य की यात्रा एक साथ कर ली है। विरासत और वर्तमान के द्वन्द्व तनाव को झेला है। लेखिका ने न केवल राजनीतिक, सामाजिक पक्षों को परखा है बल्कि यथातथ्य घटनाओं पस्थितियों को रेखांकित भी किया है। जो विचार मूलतः मनुष्य की संवेदना से जुड़े होते है वे ही अनुभूत होते है और कोई भी रचनाकार सदैव अनुभूत सत्य ही पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है।

उपन्यास में स्थान–स्थान पर कश्मीर की लोकगायिका ललद्यद का जिक्र है उपन्यास के प्रारंभ में चन्द्रकान्ता ने उनकी कुछ पक्तियाँ उद्घत की है, जो उसी कसक को प्रस्तुत करती है, जो कथा का आधार है।

"आभ्यन टाक्यन पोन्य जन श्रमान
जुव छूम ब्रमान, धर गछड़ा (ललद्यद)"

अर्थात (मिटटी) के कच्चे सकोरों से ज्यों पानी रिस रहा हो, मेरा जी कसक रहा है कब अपने घर चली जाऊँ।)

प्रत्यक्ष तौर पर देखा जाए तो उपन्यास की कहानी वर्ष 1931–2000 ई. तक की दिखलाई पड़ती है, परन्तु परोक्ष में कश्मीर की समस्या, ऐतिहासिक, पौराणिकता, सामाजिकता, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक सभी पक्ष

पूर्णतः समाहित है। न केवल दुख प्रकट नहीं कर रही बल्कि तमाम निर्वासितों का दर्द व्यक्त कर रही है जिन पर हर दिन राजनीति होती है, और स्थितियाँ वही ठाक के तीन पात रहती है, यह उपन्यास कश्मीर की पूरी विकास यात्रा तय करता है। उपन्यास में कथा का आरंभ कश्मीर की उत्पत्ति संबंधी एक मिथक कथा के पश्चात् जलमग्न सृष्टि भगवान विष्णु ने मतस्य रूप धारण किया और नौका बनी सती को खींच कर कश्मीर को दक्षिण पश्चिम चोटी पर बाध दिया फिर नाव रूपी सती ने भूमि का रूप धारण किया। इसी भूमि के बीच छह योजना लंबे और तीन योजना चौड़े सतीसार का जिक्र है, जिसमें जल से उत्पन्न राक्षस का निवास है और वह बह्मा से वरदान प्राप्त कर चुका है। यह राक्षस उस सतीसार के आस–पास रहने वालों का संहार करने लगा जिससे प्रस्त होकर राजा नील ने आग्रह पर पिता कष्यप मुनि ने ब्रह्म, महेश की तपस्या की और झील को सुखाकर जलोद्भव राक्षस का अंत किया।

पीटर, जीतू, अशरफ, विकी की कहानी में कश्मीर के आज के माहौल को दर्शाया गया है कि किस प्रकार आतंकी गतिविधियों के कारण आपस का प्रेम समाप्त होकर शक में बदलने लगा लोगों के मन में आर्मी और जेहादियों दोनों के प्रति डर व्याप्त हो गया। अशरफ की बहन नसीम को उसकी आजादी की सजा मिली क्योंकि उसने जेहादियों की बात नहीं मानी। फलस्वरूप उसका बलात्कार किया गया। आतंकवादी जिस के सामने चाहे मेंहदी रख देते थे जिसका मतलब था उस घर की बेटी की शादी उस आतंकवादी से होगी। वादी से निष्काषित हिन्दूओं के मकानों में जेहादियों, ने डेरा डाल दिया था तथा वादी के कुछ मुसलमान, हिन्दुओं के घर औने–पौने दामों पर खरीद कर उनके वादी में दोबारा बसने के सपने को चकनाचूर कर रहे थे।

सियासत की नीतियों के चलते अपने घर से निष्काषितों को कोई भी उनके घर में दोबारा भेजने की हामी नहीं भर रहा था। क्योंकि किसी के भी भविष्य का नही ंपता और अपने फायदे के चलते किसी का भला बुरा सोचने का वक्त किसके पास है। उपन्यास को आशा की किरण पर लाकर छोड़ दिया जाता है। जब एक बच्ची का जन्म नये मिलेनियम में होता है उसी मुक्त आवाज की कोख से नयी सदी का जन्म हो रहा है। अपमान और अजाब सही कोख से, आंतक और अत्याचार के विरूद्ध उठी तेज, तुन्द अवाज।"

कथा सतीसार में कश्मीर में रहने वाले लोगों की त्रासदी पूर्ण जीवन स्थितियों का वर्णन लेखिका ने किया है। कश्मीर आतंकवाद की आग में जल रहा है। कश्मीर के लोगों के घर आतंकवाद के कारण नष्ट हो गये है। 1931 के रंगों में बहुत से कश्मीरी पन्डितों के घरों को पूरा लूटा गया और जला दिया गया। जिसके कारण उन्हें अपनी पैतृक जगहों को छोड़कर नई जगहों पर बसने के लिए मजबूर होना पड़ा। आतंकवाद, राजनीतिक दावंपेच, मजहबी हिंसा के कारण स्वर्ग नरक में बदलता जा रहा है।

'कथा सतीसार' में कश्मीर के पण्डित समाज की कथा सतीसार से कही गई है। यह कहना गलत न होगा कि इसमें पण्डित केन्द्र में है और उसी के माध्यम से कश्मीर की कथा कही गई है। इसलिए इस कथा में पूर्वग्रह भी है और पक्षपात भी। यह कथा कश्मीर के हिन्दुओं का दर्दे–बयां है। लेखिका कहती है कि– ' विस्थापित हिन्दु हैरान है कि मातृभूमि में रहने का हक उन्हें क्यों नहीं है? अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर फिलिस्तिनियों के अधिकारों की गूंज है। कश्मीरी पंडितों की क्यों नही? क्या वह हथियार उठाए जे0के0एल0एफ0 से दोस्ती करें? बयानवें में सुनील कौल और सुरेष मान पर जम्भू के परीक्षा हाल हवाले हो गया। गुस्से, दुख और निराशा का

धुआ उसकी मौत के साथ बुझा नहीं, युवादिलों में दबा–दबा आक्रोश बनकर फैलता रहा। सिर उठाकर जीने का हक हमसे क्यों छिना जा रहा है? हमारी मांगें बहरे कानों पर क्यों फिसल रही है? वे लोग फिलिस्तिनियों के लिए आँसू बहाते है, कश्मीरी विस्थापितों के लिए संवेदन शून्य हो गए है क्यों हम इस देश के नागरिक नहीं?'[8]

सन्दर्भ सूची :–

1. चन्द्रकान्ता, मेरे भोज पत्र, पृ0 19–20
2. चन्द्रकान्ता, मेरे भोज पत्र, पृ0 26, 27
3. चन्द्रकान्ता, ऐलान गली जिंदा है फ्लैप से.
4. चन्द्रकान्ता, मेरे भोज पत्र, पृ0 55, 56
5. वही, पृ.स. 27
6. पत्रिका ऋचा, मार्च 2004, पृ0 55
7. आजकल पत्रिका, मई 2006, पृ0 42
8. वही, पृ.स. 588–590

मो. 7665029222

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 53-57

भक्ति और सूफी काव्य में पर्यावरण चेतना

–डॉ. रहिम गुर्जर
सहायक आचार्य, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

भारतीय संस्कृति की काव्य परम्परा में पर्यावरण और प्रकृति के प्रति सदा सकारात्मकता का भाव दृष्टिगोचर होता है। भारतीय संस्कृति में पृथ्वी और प्रकृति को माता का स्थान दिया जाता है – 'माता भूमि : पुत्रोऽहं पृथिव्या'।

जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक व जीवित परिस्थितियों का योग ही पर्यावरण है।[1] अथर्ववेद के कुछ शब्दों जैसे वृत्तावृत्ता[2], छन्दांसि, पर्यभवत् आदि से भी पर्यावरण का ही बोध होता है। वैदिक वाङ्मय में हमें प्राकृतिक पर्यावरण के साथ सांस्कृतिक पर्यावरण के प्रति सजगता का भी बोध होता है। श्रेष्ट सांस्कृतिक जीवन मूल्य भी प्राकृतिक पर्यावरण को पुष्ट करते हैं।[3]

पर्यावरण संचेतना एवं प्रकृति चिंतन की दृष्टि से भक्ति एवं सूफी काव्य परम्परा भी महत्वपूर्ण रही है। भक्तिकालीन काव्य में प्रकृति के आलंबनात्मक एवं उद्दीपनात्मक अंकन के साथ–साथ परोक्ष सत्ता के गुणगान के रूप में एवं रहस्यानुभूति के रूप में प्रकृति चित्रण हुआ है। इस काल में काव्य में प्रकृति के माध्यम से भाव पक्ष बहुत ही निखर कर आया है। संत काव्यों में प्रकृति के आधार पर दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण हुआ है क्योंकि इसमें जीव, जगत् व ईश्वरादि का प्रत्यक्ष व विस्तार से उल्लेख हुआ है।

कृष्ण भक्ति काव्य में वन विहार और कुंज विहार का खुलकर चित्रण हुआ है। कृष्ण गोपियों के साथ वन विहार का आनंद लेते हुये चित्रित किये गये है। सूरदास, परमानंद, नागरीदास आदि कवियों के काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप नजर आता है। इन कवियों के नाम परिगणन पद्धति के आधार पर पर्यावरण एवं प्रकृति का अंकन किया है। परमानंद दास ने खग, मृग, द्रुम, लता, चांद आदि की गिनती कर दी है।[4] सूरदास की रचनाओं में प्रकृति, वन, कालिंद्रीतट आदि का उल्लेख भी मनभावन हुआ है।

जब तै श्रवन सुन्यौ तेरौ नाम
जब तै हा राधा हरि इहै जु मंत्र जपत दूरिदाम
रहत निकुंज निसि कालिंद्रीतट सुहृद सषा छाड़ेसुष धाम
विरह बियोग महा जोगी लौं जागत ही बीतत जुग जाम
कब हुंक किसल पीठ रचि पचि कै कबहुंक पाठ करत गुन ग्राम
कब हुंक लोचन मूदि मौन है चित चिन्तन ये अंग अभिराम
तरपन नैन हदै होमत हवि ब्रिप्र भोजन बोलत बिश्राम

सूरस्याम कृसगात सकल अंग दरसन दैपिय पुरवहु पिय काम।।[5]

राधा और कृष्ण के कुंज विहार के समय पावस का मन भावन चित्रण भी सूरसागर में विशेष रूप से किया गया है।[6]

गगन उठी घटा कारी, तामै बग पंगति अति न्यारी
सुरधनु की छवि रूचिर देखियत, बरन बरन रंगधारी
बीच–बीच दामिनी कौंधती हैं, मानो चंचल नारी।।

रहीम द्वारा वर्णित प्रकृति का रूप परम्परा से थोड़ा हटकर है –

रहिमन रजनी ही भली, पिय सौं होय मिलाय
खरो दिवस केहि काम कौ रहिबौ आपुहि आप।।[7]

यहाँ रहीम दिन की अपेक्षा रात्रि को अच्छा बता रहे है क्योंकि उसमें प्रियतम के संयोग का अवसर होता है। प्रकृति का मानवीयकरण भी उनके काव्य में परिलक्षित होता है।[8]

कृष्ण भक्त मीरा बाई के काव्य में प्रकृति का अंकन आलम्बन व उद्दीपन दोनों ही रूपों में हुआ है। विरहणि अर्थात् मीरा सावन के बादलों को देखकर संतप्त होती है –

बादल देखा झरी स्याम मैं बादल देखां झरी
काला पीला घट्या उमड्या बरस्यौ चार घरी
जित जोयांतित पाणी पाणी प्यासा भूम हरी
म्हांरा पिया परदेसा बसंता, भीज्या बार खरी।
मीरा के प्रभु हरि अविनाशी करस्यों प्रीत खरी।।[9]

इसी प्रकार मीरा पपीहा के बारे में कहती है कि –

पपइया रे पिब की राणी न बोल
सुणि पावेलि विरहणि रे, थारी बालैली पाँख मरोड़।।[10]

भक्ति संत कबीर प्रकृति के स्वाभाविक विकास से आनंदित नहीं होते बल्कि उन्हें एक दिन इसके मुरझा जाने की चिंता अधिक रहती है। कबीर कहते हैं कि यह संसार सेमल के फूल की तरह मोहक परंतु सारहीन है अल्पकाल के इस जीवन में मनुष्य को झूठे दिखावे या मनोरंजन के नाचगाने में अपनी वास्तविक स्थिति को भूलना नहीं चाहिए।[11] वर्तमान में मनुष्य झूठे दिखावे के कारण प्रकृति का दोहन करता जा रहा है और पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहा है ऐसी स्थिति में कबीर की ये चेतावनी उन्हें सजग करती है कि अपने अल्पकालीन जीवन में वे सजगता के साथ जीवन जिये क्यों प्रकृति के संकेत मानव को सदा ही राह दिखाते प्रतीत होते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिक मानव उन्हें समझते हुये संयमित जीवन जीये ताकि प्रकृति और पर्यावरण सुरक्षित रहें। इसी प्रकार कवि हवा, धूल व बादलों की गडगड़ाहट की आंधी के स्थान पर ज्ञान की आँधी लाने की चर्चा करते हैं।[12] वर्तमान परिस्थितियों में पर्यावरण संरक्षण के लिए हम ये महसूस करते हैं कि वास्तव में ज्ञान के आलोक और प्रकाश से ही हम चेतना जागृत कर विश्व में सामंजस्य और शुद्धता का वातावरण पैदा कर सकते हैं।

राम भक्ति काव्य परम्परा में पर्यावरण के प्रति संचेतना काफी मुखर रूप से अभिव्यक्त होती नजर आती

है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में जनकपुर की शोभा का वर्णन करते हुये लिखा है –

पुर रम्यता राम जब देखी। हरसे अनुज समेत बिसेसी।।
बापीं कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना।।

अर्थात् राम जी ने जब जनकपुर की शोभा देखी, तब वे छोटे भाई लक्ष्मण सहित हर्षित हुए। वहाँ अनेकों बावड़ियाँ, कुएँ, नदी, तालाब हैं जिनमें अमृत के समान जल है और मणियों की सीढ़िया है।[13]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मनुष्य को यह समझने की आवश्यकता है कि कुंए, बावड़ी, नदी और तालाबों के संरक्षण के प्रति हमें जागरूक होना होगा क्योंकि ये सब अमृत के समान जल के स्रोत हैं।

कविवर तुलसीदास ने अयोध्याकाण्ड में लिखा है –

तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ–सुरसरिहि माथ
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथा।।

अर्थात् तब श्री रघुनाथ जी गणेश जी व शिवजी का स्मरण करके तथा गंगा जी को मस्तक नवाकर सखा निसादराज, छोटे भाई लक्ष्मण जी और सीताजी सहित वन को चले।।[14] इस दोहे से स्पष्ट होता है कि प्रभु श्रीराम भी गंगाजी के सामने मस्तक नवा रहे है अर्थात् वे उनका सम्मान करते हैं। आज बढ़ते जल प्रदूषण के समय हमें हमारी नदियों की साफ–सफाई एवं स्वच्छता पर ध्यान देना होगा क्योंकि जल है तो जीवन है।

रामचरित मानस में पुष्पवाटिका और उनकी वसंती लताओं की प्रशंसा करते हुये तुलसीदास कहते हैं

सुमन वाटिका सबहिं लगाई। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं।।
लता ललित बहु जाति सुहाई, फूलहिं सदा बसंत कि नाई।।

अर्थत् सभी लोगों ने भिन्न–भिन्न प्रकार की पुष्पों की वाटिकाएं यत्न करके लगा रखी हैं जिनमें बहुत जातियों की सुन्दर और ललित लताएं सदा वसंत की तरह फूलती रहती है।[15] यहाँ भी यह बात स्पष्ट होती है कि हमें भी प्रयत्नपूर्वक धरती की सुन्दरता के लिए वृक्षारोपण अवश्य करना चाहिए।

तुलसीदास फूल, वृक्ष, लता, मृग आदि के माध्यम से प्रेम की वृद्धि की बात भी कहते हैं जो वर्तमान प्रकृति और मानव जीवन के बीच सामंजस्य के लिए अतिआवश्यक प्रतीत होती है। उन्होंने प्रतीक रूप से हाथी और सिंह के शत्रुता रहित सम्बन्ध का निरूपण इस प्रकार किया है कि उनके सतत सहचर्य से उनकी मित्रता भी व्यंजित होती है।[16]

फूलहिं फरहिं सदा तरू कानन
रहहिं एक संग गज पंचानन
खग मृग सहज बयरू बिसराई
सबन्ह परस्पर प्रीति बढ़ाई।।

सूफी काव्य परम्परा में भी षड्ऋतु और बारहमासा वर्णन विशिष्ट रहा है। कवि मंझन ने बसंत बहार का निरूपण करते हुये लिखा है –

चहुँ दिस में मधुकर गुंजार
पखुरी डाल फूल अनुसार
फागुन ते जे तरू पतझारे, ते सम भये चैत हरिआरे।।

सूफी प्रेम गाथाओं में कथानक विस्तृत होने के कारण प्राकृतिक दृश्य योजना को व्यापकता से स्थान मिला है। सूफी कवियों को सरोवर वर्णन में विशिष्ट सफलता मिली है। जायसी मानसरोवर का सुंदर चित्रण इस प्रकार करते हैं –

मानसरोदक देखिऊ काहा। भरा समुंद्र अस अति अवगाहा
पानि मोति अस निरमल तासू। आंखित बानि कपूर सुबासू।।[18]

सूफी कवियों ने फूलों से संबंधित क्रीडाओं का भी उल्लेख किया है जिनमें सखियों का एक दूसरे को फूल मारना, मालाएँ गूँथना आदि क्रीडाएं सम्पन्न होती है।[19]

सूफी काव्य में प्रकृति के रोद्र रूप का अपेक्षाकृत अधिक चित्रण हुआ है। मलिक मुहम्मद जायसी रत्नसिंह के सिंहलद्वीप जाते समय आने वाली बाधाओं को इस प्रकार निरूपित करते हैं–

एही आगे परबत की पाटी विसम
पहार अगम सुठि घाटी
बिच बिच खोह नदी और नारा
ठांवहि ठांव उठहि बट पारा।[20]

जायसी ने 'सात समुद्र खंड' में समुद्र का वर्णन भयोत्पादक रूप में किया है। 'आखरी कलाम' में जायसी भीषण भूकम्प का भी वर्णन करते हैं।[21]

समुद्र के भयावह चित्रण कुतुबन के मृगावती में आये हैं जैसे –

बाहित बहा चला वह जाई, परा जाय जहाँ लहर उठई
लहरि उडावहिं देख भ्ला, जनु हिंडोले पर सौ झूलार।[22]

इस प्रकार सूफी काव्य में वर्णित प्रकृति का रोद्र व भयावह रूप और भूकम्प जैसी प्राकृतिक विपदा का चित्रण मानव जीवन को चेतावनी देता प्रतीत होता है कि यदि हम पर्यावरण संरक्षण के प्रति सचेत नहीं रहे तो हमें प्रकृति का विनाशक रूप भी झेलना होगा क्योंकि प्रकृति जहाँ मित्रता का वरण करती है वहीं यदि मनुष्य इसी तरह आधुनिकीकरण की होड़ में लगा रहा तो वह विनाशक के रूप में भी सामने आती है। इस प्रकार हमारा भक्ति एवं सूफी काव्य पर्यावरण के प्रति संचेतना जागृत करने वाला रहा है जिससे आज के मानव को प्रेरणा लेकर पर्यावरण संरक्षण और प्रकृति की सुन्दरता को अपनाते हुये सुखद भविष्य की ओर उड़ान भरनी होगी।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ. रघुवंशी, पर्यावरण और प्रदूषण पृ. 1
2. अथर्ववेद, 12.1.52
3. सिंघवी, डॉ. नन्दिता, वेदों में पर्यावरण चेतना : सोनाली प्रकाशन, जयपुर, पृ. 5
4. सम्पादक, शर्मा ब्रज भूषण, परमानन्ददास, परमानन्द सागर, विद्या विभाग, कांकरौली, प्र.सं. 2016, पृ. 337
5. हौली, जॉन स्ट्रैटन (अनुवाद : अशोक कुमार), भक्ति के तीर स्वर : मीरा. सूर. कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 134

6. सूरदास, सूरसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2012, पृ. 680
7. रहीम ग्रंथावली, पृ. 33
8. वही, पृ. 36
9. मीरा बाई और उनकी पदावली, पृ. 283
10. वही, पृ. 289
11. सम्पादक, डॉ. चतुर्वेदी, राजेन्द्र प्रसाद, कबीर ग्रंथावली, पद 112
12. वही, पृ. 93
13. तुलसीदास, गोस्वामी, श्रीराम चरितमानस, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्धार, गीता प्रेस, गोरखपुर, बालकाण्ड, पृ. 211
14. उपर्युक्त, अयोध्याकाण्ड, पृ. 430
15. वही, उत्तरकाण्ड, पृ. 937
16. शर्मा, जगदीश, गोस्वामी तुलसीदास : आधुनिक संदर्भ में, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर, पृ. 44
17. सम्पा. डॉ. मिश्र, शिव गोपाल, मधुमालती, पृ. 122, वाराणसी प्रकाशन
18. सम्पा. वासुदेव शरण अग्रवाल, जायसी, पद्मावत लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 31
19. सम्पा. वर्मा जग मोहन, उसमान, चित्रावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ. 122
20. सम्पादक वासुदेव शरण अग्रवाल, जायसी, पद्मावत, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 131–132
21. हिन्दी प्रेम गाथा काव्य संग्रह, युसुफ जुलेखा से पृ. 348
22. सम्पादक मिश्र, शिव गोपाल, कुतुबन, मृगावती, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 93–94

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 58-61

कुमारसम्भवः शिवाराधना का वटवृक्ष

–तहसीन फातिमा
शोधार्थी, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

"कुमारसम्भव महाकाव्यम्" महाकवि कालिदास के समस्त काव्यों–महाकाव्यों में अपनी महिमा षिवाराधना के कारण संस्कृत साहित्याकोष में हीरकमपिवत देवीप्यमान है। यद्यपि महाकवि कालिदास की समस्त रचनाएँ शिवाराधना की आधारशिला है, लेकिन उन रघुवंशादि रचनाओं में कुमारसम्भव महाकाव्य शिवाराधना का वटवृक्ष है। यद्यपि यह विवेच्य है कि कुमारसम्भव महाकाव्य कितने सर्गो में विभक्त है, आठ सर्गो तक ही महाकवि कालिदास की रचनओं के आद्यटीकाकार श्रीमल्लिनाथ ने टीका (संजीवनी) की है। इसे ही आधार बना कर समालोचक आठ सर्गों तक ही महाकवि की रचना मानते है। वहीं कुछ आचार्यो का मत है कि– 'प्रारम्भस्यान्तर्गमनमिति' न्याय से कार्य और कारणभाव से तारकासुर का वध ही महाकाव्य का मुख्य लक्ष्य है। अतएव सप्तदष सर्ग पर्यन्त प्रक्रमिताकथा कुमारसम्भव महाकवि कालिदास की रचना है। यह सर्वमान्य है।

कुमारसम्भव में हिमालय के वैभव का वर्णन, पार्वती की उत्पति, कामदहनान्तर भग्न मनोरथा पार्वती की तपस्या का वर्णन लोक विश्रुत है। तपस्योपरान्त शिव के साथ पार्वती का परिणय शिव पार्वती की रति–क्रीडा, कुमारोत्पति, कुमार का देवसेना का सेनापति पद पर अभिसिंचन, राक्षसों एवं तारकासुर का संहार प्रमुख वर्णन पुराणयुक्तक विकर्म की रमणीयता में अत्यन्त ही सौमुख्यता को प्राप्त करता है। उपर्युक्त सभी कार्य शैवीय भावना को उद्‌बोधित करते है। शिव महादेव है, "महश्चासौदेवः महादेवः" इस व्युत्पति से उस देव की महत्ता और कालजयीच्व साथ ही महादेव का कालजयीच्व अन्यच्च समस्त विरूद्ध धर्मों का यक्ष–किनर उरग–गन्धर्व भूत–प्रेत पिशाच राक्षसादिको का, विजयादिको का, वृषभवाहन का, त्रिशुल का, विरूपाक्षता का, उनके भष्म रागिता गरलपानाद्विका एकत्र सन्निवेश ही महादेवत्व की सार्थकता को मजता है। यही कारण है कि महादेव साम्वशिव के साथ हमारा सम्बन्ध जैसे भी हो एतदर्थ कवि कुमारसम्भवम् महाकाव्य की रचना की है।

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौतोयनिधि निगाहय स्थितः पृथिव्यामिव मानदण्डः।।"[1]
"कान्ता सम्मित तयोपदेश युगे।"[2]

जैसे साधक के द्वारा निःश्रेयस का मार्ग उपदिश होता है। तद्वदेव महाकवि की उपमा भी निःश्रेयस मार्ग का अनुसरण करती है–

"देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः" उपमा भी नहीं सार्थकता कोमजती है, जो नानाविध शास्त्रानुरोधित हो। हिमालय भी "पूर्वापरौ तोयनिधि विगाह्य पृथिव्यां मानदण्डऽव" इस धरा–धाम पर स्थित हो विराजित है। वह

हिमालय भी पृथिवी पर अवस्थित समग्र पर्वतों का गुरू है। उसका एक नाम रत्नाकर भी है। महा औषधियों का उत्पति क्षेत्र है। कर्पूराम, सान्द्र, शिवतुल्य, निश्चय ही विश्वभरण पोषण रत देवता भी यही विश्रमित हो उत्कर्ष को प्राप्त करता है।

कुमारसम्भव महाकाव्य शैवधर्म का निदर्षन है। अथवा यों कहे यह शिवाराधना का वटवृक्ष हे। मेघदूतम् प्रस्फुटित शिवराधना का अंकुरण है, जो आगे चलकर कुमारसम्भवम् में वटवृक्ष का रूप लिया है। कुमारसम्भव में वर्णित आख्यानों से अतीव कमनीय महाकाव्य की रचना महाकवि ने की है। इस महाकाव्य में लोकभिराम शिव का स्वरूप वर्णित है।

मस्तिष्क प्रदेश के भ्रूमध्य में अथवा त्रिकुटी में आज्ञाचक्र का निवास होता है। यही ईडा, पिंगला और सुषम्णा नाड़ियो का सम्मेलन होता है। यही त्रिकुटी अथवा भ्रूमध्य में मन बुद्वि और अहंकार का निवास होता है। "प्रज्ञाचक्षु या ज्ञान–चक्षु" का भी निवास यही है। जिसे तृतीयनेत्र भी कहते है। शिव–शक्ति का यहीं निवास स्थान है। साधक या योगी जब योगावस्था में पन्चचक्रों का उद्भेदन करता है, तब उसे कामपीड़ा नहीं सताती है, अर्थात् काम उसे वाधित नहीं करता है इसी को ध्यान में रखकर महाकवि कहता है–

"अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात"[3]

भगवान शिव ने काम को भष्मसात कर दिया :–

"भष्मावषेषं मदनं चकार"[4] उसके बाद ही शिव ने पार्वती से विवाह किया और शडानन की उत्पति हुई। "आज्ञा–चक्र" के उपर सहस्रदल कमल विद्यमान है। यहॉ शिव साक्षात् निवास करते है। इसी को सहस्रारपद से भी जाना जाता है। कुमार का जन्म षिव के साक्षात् तेज से हुआ है। यह तेज पार्वती रूपी सुषुम्णा निक्षिप्त होकर क्रमशः शटचक्र में पुष्ट होता हुआ लालित–पालित होकर स्कन्द को जनित करता है इसीलिए स्कन्द को षडमाताओंका पुत्र या षट्मातु कहते है। यही कारण हैं कि महाकवि ने मेघदूत खण्डकाव्य में स्कन्द के जन्म का रहस्य सूत्ररूप में निरूपित किया है–

"तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा–
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगंगा जलार्द्रोः।
रक्षाहेतोः नवषषिमृता वासवीनां चमूना–
मत्यादित्यं हुतवह मुखे संभृतं तद्धि तेजः।।"[5]

स्कन्द के उत्पति का यही रहस्य है। हुतवह का तात्पर्य अग्नि नामाजय सुषम्णा के मुख में सूर्य से भी अधिक शिव का तेज ही स्कन्द है। कोषादि ग्रन्थों में स्कन्द की भार्या का नाम "देवसेना" है। इन्द्रियों के सात्विकी और तामानी वृत्तियों का द्वन्द ही देवासुर संग्राम है। जब सतोगुणयुक्त इन्द्रियाँ काम को पराजित करती है, तो वे समाधिस्थ शिव से प्रार्थना करती है, कि शिव उन्हें एक सेनापति प्रदान करें। देवता भी यही कामना करते है। "यदिच्छामो विभो स्रष्टुं सेनान्यं तस्य शान्तये।" रघु0 2/51

शिव ने काम को जला दिया। तदुपरांत पार्वती के कठिन तपस्या से या सुषुम्णा की योग साधना से शिव और पार्वती का विवाह हेाता है। अर्थात् योग या शिवाराधना की भाषा में व्यक्ति की चिदात्मिका भक्ति जो अधोमुखी थी, वही अन्तर्मुखी होकर सहस्रार दल कमल मे स्थित हो, षिव के साथ संयुक्त होती है। यही कारण है कि शिव विषयासक्त नहीं होते। अत्यादिव्य का अर्थ– सुषुम्णा अग्निस्वरूपा है। सराचतीलोहित वर्णा है। ईडा

चन्द्र स्वरूपा गंगा है, जो सतोगुणी है। साथ ही वह अमृत स्वरूपा है, पीतवर्णा भी है। पिंगला सूर्यस्वरूपा तेजस वर्णा रौद्रात्मिका वज्रिणी यमुना है जो राजसी है।

सुषुम्णा के हुतवह भी कहते है। यही कारण है कि अपने ही तेज को वहन करने के लिए शिव यज्वा होते है। साधना मे पुरूष का तेज इसी अग्नि में संचित होता है। जब षट्चक्रों का भेदन पूर्ण होता है, तभी कुमार की उत्पति होती है। उसी कुमार की अध्यक्षता अथवा सेनापतित्व में देवसेना विजय प्राप्त करती है। पुराणों में वर्णित शिवपुत्र वही कुमार है, जो जन्म ब्रह्मचारी है। सहस्रार दल में अवस्थित शिव ही अक्षर तत्व नामाभिहित है, वे ही समस्त ब्रह्माण्ड के चितशक्ति है। मूलाधार चक्र में शक्तिपीठ है।

जिसमें व्यक्ति की शक्ति निवास करती है। शक्ति के तीन कोण होते है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया और इसी का का नाम त्रिपुर है। उसी त्रिपुर के अन्दर निवास करने वाली शक्ति त्रिपुर सुन्दरी कहलाती है। इसी त्रिपुर अथवा त्रिकोण में कुण्डली के रूप में अवस्थित शक्ति शकगत कल्पना रूपिणी सर्पिणी का निवास है। यही कारण है कि भगवान शिव के शरीर में सर्प आवेष्ठित रहते है। इसी को आधार मान कर महाकवि ने मेघदूत में लिखा है–

"हिच्वातस्मिन् भुजगबलयं पुष्पमेघी कृतात्मा।"[6]

भगवान शिव को "पिनाकपाणि" भी कहते है। पिनाक शिव के धुनष का नाम है। निरूक्त में पिनाक का अर्थ– "रम्भः पिनाकष्माति दण्डस्य।"[7]

यही पिनाक भगवान शिव का धनुष है। जिस धनुष का दण्डाकार दो कोटियाँ है। नीचे की कोटि को "मूलाधार" चक्र कहते है। वहां उस कोटि पर गौ कुण्डलिनी निवास करती है। वही पिनाक (शिवधनुष) की प्रत्यंचा है। जिसे शिव पिनाक पर आरोहित करते है। धनुष की प्रत्यंचा ग्रन्थि रहित होती है। पिनाक को सर्वप्रथम शिव ही अधिरोहित करते है। इसलिए शिव ही उस धनुष के स्वामी है।

भगवान शिव को "खण्डपरषु" नाम से भी पुकारा जाता है। अमरकोष में आया है–

"भूतेषः खण्ड परशुर्गिरीषो मृदुः।"[8]

अस्तु! शम्भ् रहस्यावतरणं दत्वा म0म0 मल्लिनाथ महोदयः क्रीडा शैलस्यार्थः लिखति :–

"कैलाशं कनकाद्रिश्च मन्दरों गन्धमरदमवू।
क्रीडार्थं निर्मिताः शम्भोर्देवैः क्रीडाद्रंयोदभवन्।।"[9]

मेरूपर्वत अथवा मेरूदण्ड क्रीडा शैल के ही पास में अवस्थित है। कैलाश के साथ उसका परस्पर सम्बन्ध परिलक्षित है। कैलाश की व्युत्पति ही क्रीडा स्थान के रूप में की गयी है। "केलिनाम् समूहःकैलम्, तेन आस्पतेऽयइति कैलाशम्।"

इसी कैलाश पर्वत पर कुवेर का निवास स्थान है, जो यक्षो, किन्नरो, गन्धर्वों, सिद्धों, चरणों के साथ निवास करते है। यही ध्यानावस्थित योग–योगश्वर शिव भी निवास करते है। तपस्या में रत रहते है। पार्वती सती की अवतार है। चित शक्ति वैन्दवी शक्ति स्पन्दशक्ति स्वरूपा भगवान शिव के साथ शिखरारूढ़ सर्वथा शान्ति एवं निरपेक्ष भाव से पिता एवं देवर्षि नारद के निर्देश से विवाह करती है। इस वैवाहिक सम्बन्ध में नितान्त विषमता है। भारतीय समाज में एक ही समाज में जो कुलरहित हो, विवाह श्रेष्ठ माना जाता है।[10] परन्तु इस विवाह में समानता नहीं है। पुनरपि शिव और शक्ति की अविना भाव से ऐक्य विश्व विदित है। यही है शिव और शिवा की

साम्यता तथा महादेवत्व। शिव को प्राप्त करने के लिए शक्ति प्राण–पण से कठिन तपस्या करती हैं। वह अपर्णा,[11] निराहारा,[12] निर्जला[13] रहकर वायु भक्षण करती हुई तपस्या करती है।

कुमारसम्भव का पॉचवा सर्ग तपश्चर्या का निदर्शन है, जहां पार्वती कठिन परीक्षण को पास कर ब्रह्म विवाह विधि से षिव के अंकाधिरोहित होती है, यहां यह चिन्तय है कि निष्पन्द शिव में सस्पन्दित तिव्रधारा समायतित होकर उसके आन्दोलन से निष्पन्द भी सस्पन्द होकर जगत् प्रसिद्ध कुमार प्रतीक सम्भव होता हैं।[14] समस्त देवगणों का पीड़ादायक, सभी के सत्वों का अपहरण करने वाला नितान्त भौतिक उस तारकासुर को जीतकर, उसका वधकर सभी देवताओं को निर्भय करता है। इन्हीं संदेशों को हृदयंगम करते हुए महाकवि कालिदास ने अपनी कृति कुमारसम्भव में साम्वसदाशिव को नमन करते हुए शिवाराधना को प्रख्यापित किया है।

संदर्भ सूची :–

1. कुमारसम्भवम् महाकाव्यम्, प्रथम सर्गः, श्लोक सं0–1।
2. काव्य प्रयोजनम् आ0 विश्वनाथ कृतम्।
3. कुमारसम्भव महाकाव्यम्, सर्ग–5, श्लोक सं0–53।
4. कुमारसम्भव महाकाव्यम्, तृतीय सर्ग, श्लोक सं0–72।
5. कुमारसम्भव महाकाव्यम्, द्वितीय सर्ग, श्लोक सं0 –51।
6. मेघदूत खण्डकाव्य, पूर्वमेघ, श्लोक सं0–64।
7. निरूक्त, नैसर्ग काण्ड, 3/4।
8. अमरकोष, अमर सिंह।
9. म0म0 माल्लिनाथ कृत टीका से, शम्भू रहस्यावतरण से साभार गृहीत।
10. यमोदेव समं वितं ययोखे समंकुलम।
    तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्ट विपुष्ट योः।। नीतिशतके।
11. स्वयं विषोर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हिकाष्ठा तपसस्तया पुनः।
    तदथपाकोर्णमतः प्रियंवदा वदन्तपर्णेति च तां पुराविदः ।। कु0सं0 5/28
12. मृणातिकापेलवमेवमादिभिर्व्रतैः स्वमंगं ग्लपयन्त्यहर्निश्म्।
    तपः शरीरै कठिनैरूपार्जितं तपस्विनां दूरमघश्चकार सा।। कु0सं0 5/29
13. मुखेन सा पद्यम सुगान्धिना निशि प्रवेपमानाधरपत्रशीमिना।
    तुषार वृष्टिक्षत पद्मसम्पदां सरोजसन्धान मिवाकरोदपाम।। रघु0 5/7
14. गुहोऽपितेषां प्रथमाप्तगलमनां न पुत्र वात्सल्यमपाकरिष्यति।
    कु0 सं0, पन्चम सर्ग, श्लोक सं0 –14

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 62-62

रत्नकुमार सांभरिया की कहानियों में स्त्री विमर्श

(आखेट कहानी के विशेष सन्दर्भ में)

–बर्णाली गोगोई
पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजल, मिजोरम

रत्न कुमार सांभरिया हिंदी साहित्य के समकालीन कहानीकारों में से है। उनका जन्म हरियाणा में हुआ। उन्होंने कहानी के साथ–साथ नाटक, लघुकथाएँ भी लिखी है। उनकी कहानियों का केंद्रबिंदु दलित समाज, स्त्री अस्मिता आदि है। उन्होंने अपनी रचनाओं में दलितों एवं स्त्रियों पर खूब लिखा है। उनकी कहानी 'आखेट' स्त्री समस्या पर आधारित है। इसमें एक बेबस और असहाय स्त्री का चित्रण है।

इस कहानी में रेवती नामक स्त्री की दुखभरी जीवन की कथा है। रेवती को गाँव के जमींदार नानक सिंह द्वारा उसी के खेत में शारीरिक शोषण करने की चेष्टा की गयी। पर रेवती हार नहीं मानी। उसने साहस से काम लिया और नानक सिंह पर पलटकर बार किया। वह वहाँ से भाग गयी। रेवती से मार खाने के बाद नानक सिंह गुस्से से आग बबूला होकर सोचता है कि रेवती के पति सोमा को मारकर उसे रखेल बनाकर पुरुष पर हाथ उठाने का सबक सिखाएगा। यह सारी बातें सोमा को उसके एक मित्र से ज्ञात होता है। इसके पश्चात जमींदार से डरकर रेवती और सोमा गाँव छोड़कर चले जाते हैं।

इसी तरह शहर में भी लाला सुखप्रसाद रेवती पर बुरी नजर डालता है। लाला सुखप्रसाद अपनी बुढ़ापे का भी ख्याल नहीं करता। वह बस रेवती को पाना चाहता है। रेवती के मना करने पर उसे मारने के बारे में सोचता है। और रेवती को पिस्तौल दिखाने लगता है। पर रेवती उस पिस्तौल को खिलौना समझकर रख लेती है। यह स्त्री की भोलेपन को दिखाया है। इस कहानी में कहानीकार ने यह बताया है कि स्त्री चाहे जहाँ भी हो पुरुष द्वारा वह शोषित होती ही है।

बीज शब्द : दलित समाज, स्त्री अस्मिता, साहित्य, समकालीन, शोषित।

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 63-65

सिनेमा और पत्रकारिता का साहित्यिक योगदान

–डॉ चंद्रशेखर जे नायर
बेंगलुरु 560029

सिनेमा और साहित्य में एक अटूट सम्बन्ध है। साहित्य जब मुद्रित रूप से प्राप्त होता है तब सिनेमा पात्रों के अभिनय द्वारा उद्धेशित विषय में दृष्टिगोचर कर सरलता से आम जनता के मन तक पहुंचाने का आसान माध्यम है। सिनेमा का एक और विशेषता यह है कि उसे लोग देखकर समझाने की भरपूर कोशिश कर सकते हैं, वरन साहित्य के मुद्रित अंक को केवल शिक्षित वर्ग अपने ज्ञान विस्तार के लिए पढ़कर समझने का प्रयास करते हैं। ये दोनों समाज के निरंतर परिवर्तन के लिए सहायता करनेवाले बलिष्ट माध्यम है। सिनेमा एक लोकप्रिय कला है, परंपरागत कलाओं का एकीकरण है, इसमें यथार्थ परिस्थिति को जैसा है वैसा नहीं थोड़ा हटाकर ले जाने की जादुई शक्ति का भण्डार है। इसीलिए सिनेमा को अभिव्यक्ति का प्रमुख प्रभावपूर्ण और सशक्त माध्यम मानते हैं। यह विधा भी साहित्य के सामान सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों को समझकर और समाज की आवश्यकता को पहचानकर प्रस्तुत करने वाले रचनात्मक माध्यम है। साहित्य द्वारा लिखी जानेवाली सभी विधाओं को अभिव्यक्त करने का एक मात्र सशक्त माध्यम सिनेमा है।

साहित्य, सिनेमा और पत्रकारिता की परिभाषा से हम यह समझ सकते हैं कि तीनों रचनात्मक अभिव्यक्ति के कला का स्वरुप है। साहित्य की परिभाषा केवल काव्य तक ही सीमित होकर सभी विद्वान वह चाहे भारतीय हो या पाश्चात्य शब्दों के द्वारा रसात्मक रूप से प्रस्तुत करनेवाला वाक्य की सृष्टि ही काव्य या साहित्य मान सकते हैं। परन्तु सिनेमा की परिभाषा अनुभूति और संवेदना को व्यष्टि और समष्टि के साथ जोड़नेवाला एक विज्ञानं मानते हैं। इस परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि चाहे साहित्य हो या सिनेमा ये दोनों कलाएं समाज में ही जन्म लेकर समाज को ही प्रभावित करता है।

भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी ही पत्रकारिता है। उन्नीसवीं सदी में जब गद्य साहित्य की शुरुआत हुई तब और हिन्दी भाषा का प्रचार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उन दिनों विरोधी परिस्थितियों के कारण भीकर कठिनाइयों का सामना करना पडा। ऐसी अवस्था में भी 'भारत मित्र' 'सार सुधानिधी', 'उचित वक्ता' आदि पत्रिकाएँ इन परिस्थितियों का खुलकर सामना करते हुए तेजी से पुष्ट होता था। आज अंग्रेजी पत्रकारिता के दबदबे में फंसकर भारतीय पत्रकारिता अपनी असलीयत खोए जा रहा है । भारत में 1850 के बाद भारतेंदु के गद्य साहित्य स्वरुप को देखकर नए नए पत्रकार जाग उठे, उनमें प्रसिद्द पत्रकार बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी, देवकीनंदन त्रिपाटी आदि थे। ये केवल पत्रकार ही नहीं साहित्य सृजक भी थे।

साहित्य और पत्रकारिता एक ही सिक्के के दो पहलुएँ हैं, क्योंकि दोनों की वृद्धि के लिए सामान रूप के तत्व और तथ्य की आवश्यकता है। सिनेमा एक नवा सृजित कला है, जो अपने रंगमंच और साहित्यिक विधा को एक–दूसरे से जोड़कर जनता तक पहुंचाता है। सिनेमा और पत्रकारिता दोनों में एक विचार सामान है जैसे ये एक स्तर पर वृत्तान्तक कला रूप है। केवल सिनेमा की भाषा वशीभूत करने के रूप में तैयार किया जाता है। साहित्यिक पत्रकारिता किसी मूल कथा का केवल एक रूप मात्र है जो उसकी बातों को कहानी साहित्य से जोड़ती है। पत्रकारिता का मूल उद्धेश्य ही साहित्यिक रचनाओं का प्रचार तथा अडोस–पड़ोस में होनेवाली स्थितिगातियों की खबरें रिपोर्ट कर आम जनता तक पहुंचाना था, परन्तु जब विश्व स्तर पर मीडिया द्वारा विज्ञापनों के प्रचार का दबाव बढ़ने लगा, तब भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता हाशिये में चली गयी, जो देश और समाज के लिए करुणाजनक विषय बन गया। हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने उस तीव्र परिस्थिति में खड़ीबोली हिन्दी का विकास पर्कारिता के माध्यम से ही शुरू किए थे और इसके साथ संसार भर के सारे मुद्दों का परिचय भी इसी माध्यम से कर रहे थे।

साहित्यिक पत्रकारिता में भारतेंदु के युग से ही 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' नामक पत्रिका शुरू हो गई। इन्होने इसके साथ ही 'बाल बोधिनी' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' नामक पत्रिकाएँ निकाली। इनकी प्रेरणा से उस समय के कई प्रसिद्ध पत्रकार एवं साहित्यकारों ने समाचारपत्र–पत्रिकाओं के सम्पादन और प्रकाशन की ज़िम्मेदारी सभाली। उनमें प्रमुख पत्रकाएँ इस प्राकार है– बालकृष्ण भट्ट जी की 'हिन्दी प्रदीप', 'प्रतापनारायण मिश्र जी के 'ब्राह्मण' रुद्रदत्त शर्मा जी के 'भारत मित्र' और महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के 'सरस्वती' आदि है। ये साहित्यिक पत्रकार स्वयं अपने आपको विषयों के संसार जैसे महासागर में डुबो देते हैं।

सिनेमा की स्थापना के उपरांत साहित्यकारों ने भी अपनी रचनाओं में काफी परिवर्तन को अपनाकर फिल्म निर्माताओं को आकर्षित करने लगे। इस सिनेमा के प्रारम्भ में भारत के प्रसिद्द निर्माताओं ने शरत चटर्जी जैसे जैसे लेखकों की रचना को आधार मानकर फिल्म बनाने लगे। सत्यजित रे ने 'पाथेर पांचाली' नामक सिनेमा जो अन्तराष्ट्रीय स्तर पर उन्हें ख्याति दिलाई थी वह उन दिनों के प्रसिद्द साहित्यकार विभूति भूषण बंदोपाध्याय जी द्वारा रचित एक महान साहित्य कार्य पर आधारित है। यदि हम दुनिया में लोकप्रिय सिनेमा को ध्यान से देखा जाय तो यह पता लगता है कि आधी से अधिक फ़िल्में साहित्य के आधार पर ही चयनित है। इसी प्रकार सन 1900 के बाद निकलने वाली सिनेमा पर एक नज़र डाले तो यह मालूम होता है कि सारी कि साड़ी फिल्मों का विषय साहित्य के बीच में तेजी से एक जुड़ाव पैदा करती है। इन दोनों माध्यमों का संगम सन 1930 से लेकर आज की परिस्थिति तक चलती आ रही है। इतना सब होने पर भी कुछ साहित्यिल चिंतक, आलोचक और लेखक भारत के सिनेमाओं को साहित्य का हिस्सा मानने के लिए तैयार नहीं है, इसका कारण यह है कि आजकल के सिनेमा हमें उस विचलन को संकेत कर दिखा रहा है जो वास्तव में उपयोग और रूपांतरण की प्रक्रिया का मिलावट हो गया हो, इसका भ्रम हममे पैदा करता है।

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि सिनेमा और पत्रकारिता दोनों ही साहित्य का एक प्रधान अंग है जो अपनी–अपनी माध्यम शैली में रूपांतरण होकर समाज तक पहुंचता है। सिनेमा और साहित्य हो या

पत्रकारिता एवं साहित्य हो, दोनों ही एक दूसरे से अभिन्न सम्बन्ध रखकर ही चलता है। पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादकीय कॉलम को आज भी केवल 10 प्रतिशत से 30 प्रतिशत मात्र पढ़ते हैं, क्योंकि उसे साहित्य की सृजन शैली से लिखी जाती है, केवल इसमे यह खेद यह है कि पाठकों की संख्या इस कॉलम के लिए कम है। सिनेमा की बात लेने से यह आभास होता है कि पहले के दिनों में सिनेमा बनाने के लिए साहित्य कि रचनाओं की बड़ी आवश्यकता थी, परन्तु अब साहित्यिक रचनाकारों ने अपनी रचना निर्माताओं के मांग के अनुसार या उनको आकर्षित करने हेतु लिखते हैं और साड़ी रचनात्मक शैली में ही बदलाव ला दिए। साहित्य में जो काल्पनिक शक्ति थी वह धीरे–धीरे कम होने लगा।

अंततः यह कहना बहुत अनिवार्य बन गया है कि इन्ही दो (सिनेमा और पत्रकारिता) के द्वारा साहित्यिल कार्यों को जन–मानस तक आसानी से पहुंचा सकते हैं। पत्रकारिता और सिनेमाका साहित्य के प्रचार प्रसार के लिए बड़ा योगदान माना जा सकता है।

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 66-68

वर्तमान परिदृश्य में महामारी के दौरान शिक्षक और शिक्षकीय व्यवसाय

–कल्पना पाण्डेय
शोधार्थी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा।

यह ताज जो तूने पहना, जिससे है तुझे तेरा नाम मिला,
करके बीमार लेता है जान, क्या यही है तुझको काम मिला,
आफत में है डाला दुनिया, लोग नाम से तेरा डर रहे है,
तुझसे संक्रमित होने वाले, अनगिनत लोग मर रहे हैं,
आसान नहीं है इलाज तेरा, क्या इन्सान हार जायेगा,
तुझेजड़ से उखाड़ फेंकेगा, मानवता को संवार जायेगा।

वर्तमन परिदृश्य में महामारी के दौरान लाखों बच्चों की शिक्षा से वंचित होने के कारण अब समय आ गया है कि बेहतर और अधिक न्याय पूर्ण एवं मजबूत शिक्षा प्रणाली का पुनर्निर्माण कर शिक्षा के अधिकार को सुदृढ़ किया जाए इसका उद्देश्य इस महामारी से पहले की स्थिति बहाल करना नहीं बल्कि व्यवस्था की उन खामियों को दूर करना होना चाहिए जिनके कारण समय से स्कूल के दरवाजे सभी बच्चों के लिए खुले नहीं है।

विद्यालय की गतिविधियों में शिक्षक का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। इस संबंध में डॉ राधाकृष्णन ने कहा है –"अध्यापक का समाज में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान होता है वह उस दूरी के समान है जो बौद्धिक परंपराओं व तकनीकी क्षमताओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करता है और सभ्यता की ज्योति को प्रज्वलित रखता है।"

शिक्षा शास्त्रियों का विचार है कि अध्यापक उस मोमबत्ती के समान है जो स्वयं को जलाकर दूसरों को प्रकाशित करता है। वास्तव में अध्यापक शिक्षा पद्धति का केंद्र बिंदु होता है वह जीवन पर्यंत विद्यार्थी बना रहता है। विद्यालय सरस्वती का पावन स्थान है। अतः इसमें राजनीति,धर्म नीति का प्रवेश पूर्णतः निषेध होना चाहिए। इसके साथ ही बच्चों को आर्थिक और असमानता का एहसास ना होने दें। शिक्षक द्वारा किया गया यह भेदभाव पूर्ण व्यवहार बच्चों के आत्मबल को कम करता है और शिक्षा का लक्ष्य बच्चे मे आत्मविश्वास जगाना।

शिक्षा राष्ट्र के विकास के लिए केंद्रीय दूरी है, परंतु शिक्षा स्वमेव गतिशील नहीं है, बल्कि उसे गतिशील बनाता है शिक्षक। अतः देश की प्रगति में शिक्षा के निरंतर विकास में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अध्यापक विद्यालय में बच्चों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभावित करता है। वह बालकों के लिए एक प्रतिमान है। शिक्षक एक ऐसा प्रतिनिधि है जो विद्यार्थी में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदि सभी प्रकार के गुणों का विकास करता है।

छात्र–छात्राएं बगीचे में लगे पौधे की समान होते हैं शिक्षक एक माली है जो पौधों को सीखता है। उनके अनावश्यक गुणों की काट छांट करता है तथा अन्य सभी प्रकार से देखभाल करते हुए उन्हें फलने फूलने योग्य बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है। अतः अध्यापक में शिक्षक के गुण योग्यताएं, विशेषताएं एवं क्षमताओं का होना आवश्यक है।

शिक्षकों को छात्र के अज्ञान रूपी अंधकार को मिटाने वाला एक ज्ञान रूपी प्रकाश दिखाकर मानवता के पथ को आलोकित करने वाला कहा गया है।

कोठारी कमीशन (1964–66) नेभी शिक्षक को एक राष्ट्र निर्माता की संज्ञा दी है।आशय यह है कि शिक्षक, सामान्य सामाजिक व्यक्ति से अधिक चरित्रवान,उदार, सहिष्णु दयालु तथा मर्यादित है।

शिक्षकीय व्यवसाय में शिक्षकोंकी भूमिका दोहरी होती है, एक तरफ तो वह अपनी विशिष्ट वृत्ति का सदस्य होता है तो दूसरी ओर उस पर अपने समूह के आदर्शों का समुन्नत करने का भी दायित्व होता है।

वेकन महोदय ने कहा था –" मैं हर व्यक्ति को अपनी वृत्ति के प्रति जिससे कि लोग अपना निर्वाह करते हैं और लाभ उठाते हैं, ऋणी मानता हूं इसलिए हर व्यक्ति का उस वृत्ति के कर्तव्य भी है। उसे ऐसे सुधार का प्रयत्न करना चाहिए जिससे उसे सहायता भी मिले और यह उसके लिए शोभा जनक हो।"

शिक्षक विद्यालय संगठन का ह्रदय माना जाता है, विद्यालय में पर्याप्त संख्या में विभिन्न विषयों एवं प्रवृत्तियों के दक्ष एवं सुयोग्य शिक्षकों का होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। शैक्षिक कार्यक्रमों की सफलता शिक्षक के व्यवहार, योग्यता एवं कार्यप्रणाली पर ही निर्भर करती है। वर्तमान समय में अध्यापक कोशाला में प्रमुख स्थान माना जाता है।

आधुनिक काल में अध्यापन को एक उधम या आजीविका का स्वरुप प्रदान किया जा रहा है क्योंकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस दिशा में अपनी सहमति व्यक्त करती है। बाद में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के द्वारा भी अध्यापन को आजीविका के रूप में मान लिया गया है। और इस हेतु गुणात्मक सुधार और स्तरोंन्नयन की आवश्यकता पर बल दिया गया है। वास्तव में किसी उधम या आजीविका में कुछ मूलभूत तथ्यों पर ध्यान अवश्य दिया जाता हैजो न्युनतम कौशलगत दक्षता कार्यधारित प्रतिबद्धता एवं व्यवहार गत निष्पादन से संबंधित होते है। इनके अभाव में कोई व्यक्ति किसी आजीविका मे न तो आर्थिक दृष्टि से सफल हो सकता है। और ना ही गुणवत्ता की दृष्टि से स्तरीय प्रमाणित हो सकता है।

न्यूटन, जान ने कहा है कि"एक डॉक्टर कुछ मरीजों को मार देता है और फिर भी वह मरीज देखना जारी रखता है। एक आर्किटेक्ट द्वारा निर्मित भवन यदि गिर जाते हैं तो वह अन्य भवनों के निर्माण का कार्य प्राप्त नहीं कर पाएगा। बहुत से असक्षम व्यक्ति ऐसे हैं जिनके द्वारा किए गए कार्यों के परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।

परंतु यदि एक शिक्षक असक्षम है तो वह लोगों के जीवन से तब तक खिलवाड़ करता रहता है जब तक कि वह अवकाश प्राप्त नहीं कर लेता।"

निष्कर्ष :-

वर्तमान परिदृश्य में शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई। शिक्षकों ने अपने दायित्वों का भली प्रकार से निर्वहन करते हुए ऑनलाइन कक्षाएं संचालित की। वर्तमान परिदृश्य में विपरीत परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए शिक्षकों ने स्कूल बंद होने की दशा में मोहल्ला स्कूल का संचालन कर शिक्षा का प्रसार किया वहीं विभिन्न माध्यमों से लोगों को महामारी के प्रति जागरूक किया। शिक्षकपूरी मुस्तैदी से अपने कार्यों में डटे हैं और यह साबित कर दिया कि गोविंद से भी आगे गुरु ही है।

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 69-74

आदिवासी लोकगीतों में सांस्कृतिक परिदृश्य

–डॉ. कमलबाई मीना
सहायक आचार्य, हिन्दी, राजकीय कन्या स्नात.महा.स.मा.।

लोक शब्द का शाब्दिक अर्थ है– जनमानस। यह अंग्रेजी के फॉक लिटरेचर शब्द का हिन्दी समानार्थी है। जो आधुनिक सभ्यता, संस्कृति, नागरिक संस्कारों, बाह्य चकाचौंध से दूर अपनी आदिम सभ्यता से आबद्ध जीवन की अभिव्यक्ति है। लोक साहित्य लोक की मौखिक अभिव्यक्ति है जो सांस्कृतिक धरोहर के रूप में पुष्पित और पल्लवित होता है। लोक जीवन इस साहित्य की आत्मा है और जनभाषा अभिव्यक्ति का माध्यम। श्रुति और स्मृति के द्वारा यह लोक हृदय में स्थायी रहता है। ऐसे इस साहित्य को परिभाषित करते हुए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है :–''लोक साहित्य ऐसी मौलिक अभिव्यक्ति है जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी साधना समाहित रहती है तथा जिसमें लोक मानव प्रतिबिम्बित रहता है। वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने न गड़ी हो पर आज सामान्य लोक समूह उसे अपना मानता है।''[1]

लोक साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। साधारण जनता का रोना, हँसना, कूदना, गाना, खेलना, मनोरंजन, ज्ञान, धर्म, संस्कृति एवं प्रकृति आदि सभी लोक–साहित्य की विषय वस्तु है। लोक जीवन की आशा–निराशा, जीवन–मरण, लाभ–हानि, हर्ष–विषाद, सुख–दुख आदि की सजीव अभिव्यक्ति ही इसकी विशिष्टता का आधार है। लोक साहित्य परिस्थिति के अनुसार अभिव्यक्ति के लिए भाषा, भाव और विशेष भंगिमा को ग्रहण कर लेता है। लोक–जीवन को वाणी देने के लिए जिन माध्यमों को अपनाया जाता है, वे लोक–साहित्य की विधाएं कहलाती है। वैसे तो विद्वानों ने लोक साहित्य को अपने–अपने अनुसार वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। परन्तु निम्न उपविभाग विशेष रूप से प्रचलित है– 1. लोकगीत 2. लोककथा 3. लोकगाथा 4. लोकनाट्य 5. प्रकीर्ण साहित्य।[2]

लोकगीत, लोकसाहित्य की समृद्ध व लोकप्रिय विधा है। जो जनकण्ठों में विचरण करते हुए अपनी दीर्घ परंपरा के प्रवाह को आज तक अक्षुण्ण बनाये हुए है। ये गीत मानव हृदय की नैसर्गिक अभिव्यक्ति है जो भाव, भाषा, छन्द, अलंकार आदि बन्धनों से मुक्त, स्वच्छन्द रूप में प्रस्फुटित होते है। जब–जब मानव हृदय प्रबल भावावेश से भर जाता है तब–तब उनके निष्कपट हृदय से गीतों की स्वर लहरियां फूट पड़ती है। ये भावों की प्रबलता व हर्ष, उल्लास के अथाह सागर है। आदिवासी भारत के सबसे प्राचीनतम निवासी है। लोक साहित्य ही इनके लोक हृदय की निष्कपटता से हमें अवगत कराता है, जिसमें उनके उत्थान–पतन, रीति–रिवाज, रहस्य–रोमांच, परंपराओं, संस्कारों, धार्मिक मान्यताओं एवं प्रकृति सुन्दरी की अनुपम झाँकी मिलती है। इतना ही नही, उनकी हर धड़कन की आवाज लोकगीतों में सुनी जा सकती है। प्राकृतिक तत्त्वों के साहचर्य से निर्मित

होने के कारण प्रकृति की संपूर्ण मधुरता का समावेश इनमें होता है। रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत ने लोकगीतों के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है :– ''लोकगीत प्राणवान है, मधुर है, नैसर्गिक एवं उनमें हृदय की गति विलोडित करने की शक्ति है। ये गीत असंख्य नारियों के हृदय की झंकार है, कामना की शब्दमूर्ति है और भावनाओं के रेखाचित्र है। इन गीतों द्वारा ग्रहदेवियां मुस्कराई है, काल्पनिक आनंद से आंख मिचौलियां खेली है और प्रेम, अभिनय के संकेत किए है। गा–गाकर घर में जीवन–ज्योति जगा दी है।[3] विद्वानों ने लोकगीतों का विभाजन अपने–अपने अनुसार किया है लेकिन सर्वमान्य वर्गीकरण निम्नवत है–

1. संस्कार संबंधी गीत
2. ऋतु संबंधी गीत
3. धार्मिक गीत
4. पर्व, उत्सव उवं त्योहार गीत
5. श्रम–परिहार गीत
6. दांगलिक एवं मेलों के गीत
7. अन्य गीत
8. बालगीत ।[4]

मानव संस्कृति के कारण ही मनुष्य कहलाता है। संस्कृति का निवास लोक जीवन की भावनाओं में है। संस्कृति मानव की बाह्य ही नहीं, अपितु आंतरिक जीवन की भी अभिव्यक्ति है। कुछ विद्वानों के अनुसार संस्कृति आचारगत परंपरा का नाम है। संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग कृ धातु एवं क्तिन् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ–सुधार, परिष्करण और परिष्कार होता है। जिन कार्यों से हमारे आचार–विचार, रहन–सहन बनते है, निखरते है तथा जिनसे हमारी रूचि परिमार्जित, परिष्कृत व प्रतिबंधित होती है, उन सबका संबंध संस्कृति से है। संस्कृति हमारे जीवन को सुनियोजित, सुसम्बद्ध एवं रूचियों को संस्कार प्रदान करती है और लोक संस्कृति का पंक्तिबद्ध इतिहास अनुपलब्ध है, वह तो एक मानसिक धरोहर के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत के रूप में मिलती रही है। इस अमूल्य धरोहर को चिर–स्थायी रखने का सर्वोत्तम साधन लोकगीत है। इसलिए संस्कृति के अध्ययन हेतु लोकगीतों का ज्ञान अत्यावश्यक है।

आदिवासी लोकगीतों में भारतीय संस्कृति के तत्त्वों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। संस्कृति का कोई भी पक्ष जैसे – रीति रिवाज, परंपरा, पर्वोत्सव, त्योहार, आदर्श, हवन, यज्ञ, ऋण, पुरूषार्थ, ज्ञान, विश्वास, धर्म, वर्णाश्रम, जन्म से मृत्यु तक के सभी संस्कारों की झांकी लोकगीतों में उपलब्ध होती है। आदिवासी लोकगीतों को संस्कृति का दर्पण कहा जाये, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारतीय समाज एवं संस्कृति में वर्णाश्रम धर्म को विशेष महत्त्व दिया जाता है। समाज में श्रम विभाजन हेतु चार वर्णों – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र की रचना की गई है। प्रत्येक वर्ण के अलग–अलग कार्य निर्धारित थे। सभी वर्णों के कार्यों को समान महत्त्व दिया जाता था। इससे समाज में एक आदर्श व्यवस्था विद्यमान थी। ब्राह्मण के कार्य अध्ययन–अध्यापन करना, यज्ञ करना, यज्ञ करवाना, दान लेना और दान देना होता था। वे समाज की बुद्धि और शिक्षा के प्रतीक थे। क्षत्रिय देश की रक्षा करते है तो वैश्य भरण–पोषण एवं अर्थव्यवस्था का संचालन करते थे और शुद्र इन सभी वर्गों की सेवा में ही अपने जीवन की सार्थकता मानते थे। आदिवासी लोकगीतों में इस व्यवस्था की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

यथा–

''ब्राह्मण जाति राजपाट नहीं चावै
थोड़ी सी सेवासे राजी हो जावै
कुंआरी कुन्ती ने करि विप्र की सेवा
पर राजी हो गये विप्र देवा
बा दिन दुर्वासा ऋषि दया नहीं लाते
तो रह जाती कुन्ती बाँझ वंश मिट जाते
पूरे कुआर कनागत पाठ कराये
देशी घी के माल बनाये
ओर खीर खांड ते भोजन खाये
दान–दक्षिणा पायी।''[5]

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानकर उसे चार भागों में विभाजित किया है वे चार भाग ही चार आश्रम कहलाते है– ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रम। चारों आश्रमों में व्यक्ति के कर्तव्यों का निर्धारण इस प्रकार से किया गया है कि उनमें त्याग, परोपकार, सहिष्णुता, सामाजिकता, उदारता, सरलता, आध्यात्मिकता एवं लोकमंगल जैसे गुणों का विकास हो सके। आश्रमों का उद्येश्य समाज के चार पुरूषार्थों की पूर्ति करना है, जो व्यक्ति का सामाजिक, व्यावहारिक जीवन संभव बनाते है। आयु के साथ–साथ व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक प्रवृत्तियों में बदलाव आता है। इस सच को ध्यान में रखते हुए मनुष्य को हमेशा अच्छे कार्यों का वरण करना चाहिए। एक आदिवासी लोकगीत में इस तथ्य की मार्मिक अभिव्यंजना दृष्टव्य है :–

''पाके सुन्दर वदन कर प्रभु का भजन
दुनियां फौनी का कोई भरोसा नहीं
जो भी आया उसको जाना पड़ा
जिन्दगानी का भरोसा नहीं
पांच बरस का तू भोला–भाला
अब तो पच्चीसी भयो
बालपन खेल और मौज में खो दिया
फिर जवानी का असर आने लगा
श्रेष्ठ जीवन बनाकर सभी का भला
तेरे जीवन में सुख–शांति का जावेगी
गर करेगा भला तेरा होगा भला,
बदगुमानी का कोई भरोसा नहीं।''[6]

भारतीय समाज कर्म प्रधान है। यहां यह माना जाता है कि अच्छे कर्मों का अच्छा और बुरे कर्मों का बुरा फल मिलता ध्रुव सत्य है। इसलिए व्यक्ति को हमेशा सद्कर्म करने चाहिए। कहा जाता है कि इस जीवन के

कर्मों के अनुसार है हमारी अजर–अमर आत्मा को मरणोपरांत योनी प्राप्त होती है। रामचरितमानस में भी कहा गया है –''प्रारब्ध पहले रंच्यो बाद में रच्यो शरीर।'' अर्थात् पूर्व में किये गये कर्म ही हमारे वर्तमान जीवन का सच है। व्यक्ति को हमेशा परहित में तत्पर रहना चाहिए। आदिवासी लोकगीतों में भी सत्कर्म करने की प्रेरणा दी गई है –

''कर्मों की जंजीर न तोड़ी प्यार प्रभु का तोड़ दिया
मोह माया में अन्धा बनकर पाप से नातां जोड दिया
किन्हीं शुभकर्मों का फल है तुझे मानव का ये चोला मिला
जो आया है जायेगा वो बन्द होगा यह सिलसिला
आया था तू इस दुनिया में जीवन ज्योति जलाने को
तजकर आया झूंठ अन्धे प्रभु के दर्शन पाने को
पर पग तेरे नहीं उठते है प्रभु के दर तक जाने को
प्रभु भक्ति को दिल से भुलाकर सच्चा रास्ता छोड़ दिया
गई जवानी आया बुढ़ापा अब क्यों बैठा रोता है
बीत गयी सो जाने दे अब शेष बची क्यों खोता है
गन्दे कर्मों में फंसकर अनमोल जन्म क्यों खो दिया
मोह अज्ञान का घोर अंधेरा तेरे तन पर छाया
होके दिवाना इस दुनिया में प्रभु से मुखड़ा मोड़ लिया।''[8]

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का विशेष महत्त्व है। संस्कार का तात्पर्य– शुद्धिकरण की प्रक्रिया से है। संस्कार व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और नैतिक परिष्कार करते है। आदिवासी लोकगीतों में इन संस्कारों की छवि अंकित है। शिशु के जन्म से ही संस्कार आरम्भ हो जाते है। एक आदिवासी लोकगीत में जन्म संस्कार की झांकी अंकित है जिसमें शिशु के जन्म के पश्चात् जच्चा एवं बच्चा को घर के बाहर निकालकर, जच्चा के केशों को धुलाकर, प्रथम बार कंघा स्पर्श करके, दीर्घ आयु की कामना की जाती है :–

''कुडला भर केसर घोरी वा में जच्चा उबटा न्वाही हो
मलूक जादी जच्चा सरूप जादी जच्चा
उबट नवाहीं जब लम्बे–लम्बे केश फिकाड्या हो, मलक जादी जच्चा
जब तेल फुलेल लगाया हो जब कंघी सुरझायो हो, मलक जादी जच्चा
जब वेश पीरे को पहिनो, जब नख–सख गहनो पहनो हो, मलक जादी जच्चा
जब नख पहनी जब रूण–रूण महल बधारी हो, मलक जादी जच्चा
गोरी एक अरज मेरी सुनियो मेरी मम्मी को आदर लिजो हो, मलक जादी जच्चा।''[9]

भारतीय संस्कृति की यह मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति समाज का अनेक रूपों में ऋणी है। हिन्दू जीवन में व्यक्ति पर पाँच प्रकार के ऋण माने गये है – देव–ऋण, ऋषि–ऋण, पितृ–ऋण, मातृ–ऋण और भूत–ऋण। उन व्यक्ति ऋषियों का ऋणी है जिन्होंने तप साधना के द्वारा सिद्धि अर्जित करके आदर्श स्थापित किये और वे आदर्श मानव के मार्गदर्शक है। माता–पिताओं ने भी बालक को जन्म देकर कष्ट सहकर उसका भरण–पोषण

किया। अतः वह माता–पिताओं का भी ऋणी है। उसी प्रकार देवताओं का भी ऋणी है। क्योंकि जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी आदि सभी महत्त्वपूर्ण साधन उसे ईश्वरीय शक्ति द्वारा प्राप्त हुये है। आदिवासी लोकगीतों में इन ऋणों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई हे। देव ऋण की झलक 'भजन' नामक गीत में दृष्ट्व्य है –

''परम पिता से प्यार नहीं शुद्ध रहे व्यवहार नहीं
इसलिए तो आज देख लो सुखी कोई परिवार नहीं
फल और फूल अन्न इत्यादि समय–समय पर देता है
लेकिन है अफसोस यही बदले में कुछ नहीं लेता है
करता है इंकार नही भेद–भाव तकरार नहीं
ऐसे दानी का ओ बन्दे! किये जरा विचार नहीं
जल वायु और अग्नि का वो लेता नहीं किराया है
सर्दी, गर्मी, वर्षा का अति सुन्दर चक्र चलाया है
लगा कहीं दरबार नहीं कोई सिपहसालर नहीं
कर्मो का फल देय सभी को विश्वपति अंधकारी नहीं।''[10]

जो व्यक्ति वर्णाश्रम धर्म के नियमों का पालन करते हुये, इन ऋणों से उऋण होने का प्रयास करता है उसे ही मोक्ष की प्राप्ति होती है और इन ऋणों से मुक्ति पाने के लिए ही पंच–महायज्ञों का विधान किया गया है। यह यज्ञ निम्न है – ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ एवं अतिथियज्ञ। आदिवासी लोकगीतों में इन यज्ञों की झलक मिलती है। ये यज्ञ करवाने एवं दान करने में विशेष रूचि रखते है। एक धार्मिक गीत के अंतर्गत यज्ञ योजना का सुंदर निदर्शन दृष्टव्य है :–

''गंगाजी के घाट पै सुसरो जिग (यज्ञ) भरावै हो राम
पहले तो भरायो जिग पाछै धरम रचाओं हो राम
जिग भरायो जोर की ऋषि न्यौत बुलाये हो राम
ऋषि तो आये ग्यानी उनने कुण्ड खुदाये हो राम
कुण्ड खुदाये सात जिनमें हवन भी करायो हो राम
हवन करायौ मौज सूं पाछै दान बंटायो हो राम
दान बंटायौ बहुत सौ पाछै भोजन करायो हो राम।''[11]

उक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक तत्वों के संरक्षण में लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन लोकगीतों में जहां सांस्कृतिक चेतना के बीजांकुर सन्निहित है वहीं सांस्कृतिक तत्वों का अथाह, जलधि हिलौरे लेते दृष्टिगोचर हो रहा है। परोपकार, गुरू महिमा, माता–पिता की सेवा, स्वतंत्रता, समानता, सहिष्णुता, मातृभूमि प्रेम एवं मानवीय मूल्यों का संरक्षण एवं मानव बन्धुत्व के सूत्र में पिरोने को संदेश तथा जांति–पांति छुआछुत के भेदभावों का विरोध भी इन गीतों की विशिष्टता को प्रकट करता है। ये गीत संतोष, भगवद् प्रेम, सदाचार, आत्मसंयम, अहिंसा, सत्य, आस्था, सद्कर्म, विश्वास, आत्मसमर्पण आदि जीवन मूल्यों की महत्ता से भी अवगत कराते है। अतः निःसंदेह कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक विरासत के संवर्धन में इनका अप्रतिम स्थान है।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ. स. 747।
2. लोक साहित्य विशेषांक : भाषा, जुलाई–अगस्त 2005, अंक–6, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार।
3. लोक साहित्य विशेषांक : भाषा, जुलाई–अगस्त 2005, अंक–6, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार।
4. लोक साहित्य विशेषांक : भाषा, जुलाई–अगस्त 2005, अंक–6, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार।
5. शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण के आधार पर संकलित।
6. शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण के आधार पर संकलित।
7. तुलसीदास : रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर।
8. तुलसीदास : रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर।
9. तुलसीदास : रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर।
10. तुलसीदास : रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर।
11. तुलसीदास : रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर।

ई–मेल kamalm020282@gmail.com

Mobile No. 9414746172

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 75-78

RELAVANCY OF GURUKUL EDUCATION SYSTEM IN THE PRESENT ERA OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

-Dr. Kuldeep Singh
Principal, Ravindra Bharti College of Educatio, Jhajjar
-Mr. Anil Kumar,
Assistant Professor, M.R. College of Education, Hassanpur (Jhajjar)

ABSTRACT :-

Education is of great importance in human life. Education builds personality, improves knowledge and skills and at the same time takes man towards civilization. An educated person knows the difference between right and wrong, and at the same time his power to think and understand is strong. Proper education gives man the right opportunity to move forward in the future and at the same time opens many avenues. Not only this, but the right way to live in society and give many options to fight with economic problems. Education is very important in human life because education not only helps to change our thinking but also gives us equal place in the whole society. The importance of education is not only to get the knowledge of four books, but an educated person uses education in a civilized manner in his life.

The education system first took its steps in India. The world's first school and university were established in India. Taxila is the first university in the world where people from many countries of the world used to come to study. The way schools run in today's time, in the same way Gurukul used to run in that ancient time. The difference was that the Gurukul was much better than the school. Today the education system of our country has actually been given by the British officer Lord Macaulay. Macaulay's motive was that Indian students should leave their personal education and study English. The result of this will be that later on the students will adopt us more and they themselves will go away from their own tradition. In the present study, an attempt has been made to know the relevance of Gurukul education system in the modern era of science and technology.

Keywords :- Gurukul Education System, Modern Era.

INTRODUCTION :-

Education is an important tool to be successful in life and do something different. The difficult challenges of life can be reduced through this. The knowledge gained during the education period assures every person about his life. Education fills the good thoughts in man and throws out the bad thoughts that enter inside. Education paves the way for human life. It works to establish man in the society. This brings humanity into man. Through this, it helps a lot in inculcating good values in the human community. Education is the process of raising man above the animal. The animal is ignorant, it has little knowledge of right or wrong. Even an uneducated man is like an animal. He is not able to take the right decision. But when he gets education, his eyes of knowledge are opened. Then he does everything with care. He is able to remove all kinds of confusions inside him. The basic meaning of education is that it should guide the person properly. The education which does not guide the person properly is not education but illiteracy. Education makes a person knowledgeable. The student is equipped with worldly and spiritual knowledge after getting education. This knowledge develops his personality. He masters those areas of knowledge and science which fill his future life with happiness, peace and wealth. He is capable of doing such works for the human society, which improves humanity. Education helps a man to identify the demerits so that he can always keep distance from them. Education teaches man to live life in real sense.

In the ancient education system of India, we find mention of both informal and formal educational centers. Formal education was imparted through temples, ashrams and gurukuls. These were also the centers of higher education. Whereas informal education was received through family, priests, pandits, sanyasis and festival events etc. It is mentioned in various Dharmasutras that the mother is the best teacher of the child. Some scholars have accepted the father as the teacher of the child. As social development took place, so did educational institutions. Sanghas such as Parishad, Shakha and Charan were established in the Vedic period, but systematic educational institutions were started by Buddhists at the public level.

Rationale of the Study :-

Gurukul tradition is the oldest system in our nation. Gurukul has been in existence since the Vedic age. In ancient times, education was given only through Gurukul education system. India was called Vishwa Guru only because of this method. Now this tradition is dying out. Let us study through this article what is Gurukul tradition, how education was given before and how modern education of today's era is different from Gurukul system.

Gurukul Education System :-

The Gurukul education system was a form of residential education system, where students

lived in the home of the teacher or Acharya, which was the center of education. The basis of this education system was discipline and hard work. Students were expected to learn from their gurus and apply this information in life. The relationship between the student and teacher was very sacred and there was often no payment in it. However, the students used to give Gurudakshina to the teacher for their cooperation. The Gurukul education system started in the Vedic period when there was no education system of any kind. But along with skill-based education, there was definitely a trend to learn from Vedas, Puranas etc. These spiritual books used to help the students to increase their knowledge. In the Gurukul, not just Vedas and Upnishads were taught to the students, but also the focus was on holistic development of the child. The system was comprehensive and all encompassing. The teachings included Mathematics, fundamentals of Astronomy, Science, Languages, Medicinal theories, along with Vedas, Upnishads, Brahmanas, Dharmasutras etc. Renowned scholars like Aryabhatt and Patanjali were also taught to the students in Gurukuls. The students learnt Yogic sciences, performed war science practicals, martial arts and sports as well. This way it leads to holistic development of the pupil as well.

The classes were held in the shade of trees, and under some shelter during monsoon to ensure that the students are in touch with nature which benefitted their physical and mental development. The Gurukuls were situated at beautiful natural places which were near some rural or urban areas to fulfill the daily necessity requirement of the students and to have the facility of imploring. The age to begin Vedic education was usually eight to twelve years and for those parents who did not send their children to the Gurukul; a specific punishment was decided and implemented. The Shudras (low caste people) did not have the right to education. The time period for the study was twelve years and a student could study only one Veda in that time period.

The session was of five months only. The holidays weren't too long for the students to return their homes due to the problems in transportation. So, the students returned home only after completing their education. The education was totally influenced by religion. There was the provision of free education but after the completion of education, money, land, animals, grain, etc. was given as reward. Due to the lack of printed books, the lessons were delivered orally. There were certain rules for the students to adhere regarding their daily lives such as to lead a simple life, wake up early before the day breaks, get freshened up and take a bath early, and then worship the God and perform havan, etc. They could eat food twice a day. The students were asked to follow the rules of self control and discipline. The students had great respect for their teachers and treated them as their parents and king. The relation between the teacher and the students was of care, respect, trust and duty. Punishment was given but was not harsh.

Relevance of Gurukul Education in the Modern Era :-

Although the Gurukul education system isn't found in contemporary society, however many of the modern education systems take inspiration from it. The Gurukul education system continues to remain relevant even in modern times.

1. Due to the focus on holistic education, the Gurukul education system can work wonders on the generations of today and facilitate their wholesome development.
2. The importance of a value-based education can be found in this system which can become integral learning for the students in the modern world.
3. The gurukul system can bring about the needed change from bookish learning to amassing knowledge in a practical manner that will go a long way.
4. It can also encourage people to discover their passions and not restrict themselves to the books thus helping them find their true calling in life.

Our present day education system has a lot to learn from the ancient education system of India. Therefore, the stress is being laid on connecting learning to the world outside the school. Today educationists recognise the role and importance of multilingual and multicultural education, thereby connecting the ancient and the traditional knowledge with contemporary learning. Some features of Gurukul System that may be followed by present education system are character building and philosophy which should get an appropriate place in today's education system. The schools should be situated away from the noisy and polluted environs of the cities so that the students are not affected by the everyday fights and bad practices. In modern times, however, it is not possible to completely lead a life full of control, but we should try to adapt to such way of living.

References :-

1. Anita Pathania (2011): Teachers role in Quality Enhancement and Value Education, Academe, Vol. 24(1), 19-25
2. Kusum Jain and Shelly (2013): Corruption: it's silent penetration into the Indian education systemJournal of Education and Practice Vol 4, No 1 www.iiste.org
3. Brahmadeva Vidyalankar (2015): Adhunik shiksha vavastha-uchit nahi, kyon ? aur vikalp. http://www.aryamantavya.in/modern-education-
4. Aditya Pareek (2021): A Survey on Gurukul Education System, Journal of Contemporary Issues in Business and Government Vol. 27, No. 3
5. Dinesh Joshi (2021): Gurukul and Modern Education System in India: Holistic Outlook, International Journal of Engineering Research And Management (IJERM) Volume-08, Issue-02.

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 79-83

सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं में बाल मनोविज्ञान

–मधुरा केरकेट्टा
शोधार्थी, हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

व्यक्ति के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण काल बाल्यकाल होता है। बचपन ही व्यक्ति के भावी जीवन का नींव होता है। बचपन में बच्चे को जैसा संस्कार और परिवेश मिलता है उन्हीं के बीच उसका पूर्ण विकास होता है। बाल मन जिन संस्कारों को ग्रहण करता है जीवन के अंत तक उनके साथ बने रहते हैं। ब्लेयर जोन्स एवं सिंपसन के अनुसार 'बाल्यावस्था वह समय है जब व्यक्ति के आधारभूत दृष्टिकोण व मूल्यों और आदर्शों का बहुत सीमा तक निर्माण होता है।' वास्तव में बाल मन किसी भी बात को सरलता से ग्रहण करने में सक्षम होता है और यह कार्य साहित्य के माध्यम से संभव हो पाता है। बच्चों के लिए लिखना किसी बड़ी चुनौती से कम नहीं है लेखिन बच्चों को सही दिशा दिखाए बिना किसी प्रकार का बदलाव संभव नहीं है। बाल साहित्य बालक को ध्यान में रख कर लिखा जाने वाला साहित्य होता है। डॉ. श्री प्रसाद के अनुसार 'बाल साहित्य बच्चों से जुड़ा मानसिक चिंतन है जिसकी अभिव्यक्ति भाषा के विविध विधाओं में होती है।'

हिंदी साहित्य में बाल साहित्यकारों की एक लम्बी परम्परा रही है। प्रचीन काल से ही पंचतंत्र, हितोपदेश, परी कथाएँ, सिंहासन बत्तीसी, जातक कथाएँ आदि के माध्यम से बच्चों को मनोरंजनपूर्ण तरीके से शिक्षा प्रदान किया जाता रहा है। हिंदी साहित्य के प्रमुख साहित्यकारों में अमीर खुसरो की पहेलियों, मुकरियों में बच्चों के लिए मनोरंजन की सामग्री मिल जाती हैं। सूरदास, तुलसीदास आदि कवियों ने भी अपनी रचनाओं में बाल्यवस्था की मनोरम वात्सल्य को प्रस्तुत किया है। वस्तुतः सूरदास के काव्य की वात्सल्य प्रेम भावना से ही बाल साहित्य गाढ़ा हुआ है। सूरदास के साथ साथ अन्य कवि कवयित्रियों ने भी श्री कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन करते हुए बाल साहित्य को पुष्ट किया है। प्रेमचंद, जैनेन्द्र कुमार, रवींद्रनाथ, महादेवी वर्मा आदि की परम्परा में सुभद्रा कुमारी चौहान एक महत्वपूर्ण रचनाकार हैं जिनके साहित्य मं बाल मनोविज्ञान को रेखांकित करना आवश्यक है।

बाल साहित्य पर सुभद्रा कुमारी चौहान की पहली पुस्तक 'सभा का खेल' है किंतु इसमें बहुत से कविताएं नहीं आ पाए हैं। हंस प्रकाशन से 'सभा का खेल' का नया संस्करण तथा कदम का पेड़ शीर्षक से 2 पुस्तकें प्रकाशित हुए हैं। 'सभा का खेल'संग्रह के अंतर्गत अंतर्गत 'अजय की पाठशाला','सभा का खेल', 'नटखट विजय','मुन्ना का प्यार', 'पतंग', 'बांसुरी वाला', 'कुट्टी' आदि कविताएं संग्रहित हैं। 'कदम्ब का पेड़' संग्रह में 'कोयल', 'रामायण की कथा', 'पानी और धूप', 'खिलौने वाला' और 'कोयल' कविताएं हैं। सन 1932 –33 के लगभग सुभद्रा जी का झुकाव बालकों की कविता और कहानियों की तरफ हुआ। सुभद्रा कुमारी चौहान में मातृत्व कूट कूट कर भरा हुआ था।

दमयंती तलवार उनकी मातृत्व के संबंध में कहती हैं– "आधुनिक हिंदी लेखकों में शायद सुभद्रा कुमारी चौहान ही एक हैं जिनकी रचनाओं में मातृत्व साकार हो उठा है और जिनके वात्सल्य की सहज सरल व स्वाभाविक अभिव्यक्ति सहसा सूर की यशोदा की याद दिला देती है।" सुभद्रा जी बच्चों के साथ बच्ची बन जातीथीं, वह बच्चों से बहुत प्यार करती थी इसलिए पहली बेटी के जन्म के पश्चात अपनी कविता में इस प्रकार लिखती हैं –

"बीते हुए बालपन की यह
क्रीड़ापूर्ण वाटिका है
वही मचलना, वही किलकना
हँसती हुई नाटिका है।"

सुभद्रा कुमारी चौहान की बाल कविताओं की खासियत यह भी है कि वे अपनी अभिव्यक्ति में देशभक्ति जरुर ले आती हैं। उनकी कविताओं में बच्चे भी अक्सर खेल खेल में महापुरुषों की भांति बनना चाहते हैं। 'सभा का खेल' देशभक्त बच्चों का खेल पर आधारित कविता है। इस सभा का खेल में बच्चे गांधी, नेहरू और सरोजिनी आदि के प्रतिरूप हैं। सुभद्रा जी ने बच्चों की राष्ट्रीय भावना को बहुत ही सरस ढंग से कविता में उकेरा है। बच्चों का यह बाल सुलभ निश्चल मन 'सभा का खेल' कविता में इसप्रकार द्रष्टव्य है :–

"सभा का खेल आज हम,
खेलेंगे जीजी आओ
मैं गाँधी जी, छोटे नेहरू
तुम सरोजनी बन जाओ।"

सुभद्रा कुमारी चौहान बाल कविताओं में प्रसंग अनुसार भारतीय राष्ट्रीयता की पौराणिक एवं ऐतिहासिक भूमिका को भी प्रस्तुतकरती हैं। इस दृष्टि से 'कदम्ब का पेड़' और 'बांसुरी वाला' कविता उल्लेखनीय है। कदम्ब का पेड़ कविता में मां बेटे के बीच लुकाछिपी का खेल चलता है। सुभद्रा कुमारी चौहान की 'कदम्ब का पेड़' कविता मनोहर है, इसे पढ़कर बच्चे झूम उठते हैं। यह कविता सुनकर बड़ों को भी अपने बचपन की याद दिलाती है। यमुना नदी हो न हो बचपन पर पेड़ों पर चढ़ने और उस पर बैठ कर यह कविता आज भी जरुर गायी जाती है। माँ और बच्चे के लाड दुलार की यह दुर्लभ तस्वीर खिंचती हुई कविताइसप्रकार है :–

"यह कदम्ब का पेड़ अगर माँ /होता जमुना तीरे
मैं भी इस पर बैठ कन्हैया /बनता धीरे–धीरे
ले देती यदि मुझे बांसुरी/ तुम दो पैसे वाली
किसी तरह नीची हो जाती /यह कदंब की डाली
तुम्हें नहीं कुछ कहता पर मैं / चुपके चुपके आता
इस नीची डाली से अम्माँ /ऊँचे पर चढ़ जाता
वहीँ बैठ फिर बड़े मजे से / मैं बाँसुरी बजाता
अम्माँ अम्माँ कह वंशी के / स्वर में तुम्हें बुलाता
सुन मेरी वंशी को माँ तुम / कितनी खुश हो जातीं

मुझे देखने काम छोड़कर/तुम बाहर तक आती
तुमको आती देख बाँसुरी रख / मैं चुप हो जाता
एक बार माँ कह पत्तों में/ धीरे से छिप जाता
तुम हो चकित देखतीं चारों/ ओर न मुझको पातीं।"

सुभद्रा कुमारी चौहान की बाल सुलभ रचनाओं की प्रशंसा करते हुए श्री केशव प्रसाद पाठक ने कहा है कि "बाल स्वभाव के चित्रण में कुमारी जी को अच्छी सफलता मिली है, यह सत्य है।" सुभद्रा जी बाल मनोविज्ञान से बहुत अच्छी तरह परिचित थीं। वह जानती थीं कि छोटे बच्चे पर मां का अधिक स्नेह देखकर बड़े बच्चों में ईर्ष्या की भावना उत्पन्न होती है। बच्चों की इस भावना को वे अपनी कविताओं में इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं–

"मां, मुन्ना को तुम हम सबसे
क्यों ज्यदा करती हो प्यार ?
हमें भेज देतीं पढ़ने को
उसका करतीं सदा दुलार
उसे लिये रहतीं गोदी में
पैरों हमें चलाती हो
हमें अकेला छोड़ उसे तुम
अपने साथ सुलाती हो
उसके रोने पर तुम अपने
काम छोड़ कर आती हो
किन्तु हामरे रोने पर तुम
कितनी डांट लगाती हो
माँ, क्या मुन्ना ही बेटा है
हम क्या नहीं तुम्हारे हैं?
सच कह दो मां उसी तरह क्या
तुम्हें नहीं हम प्यारे हैं?"

सुभद्रा जी बाल सुलभ कविताएं लिखती थीं। उनका स्वभाव भी उसी प्रकार का था। वे बच्चों के बीच स्वयं को एक बच्चे की तरह समझती थीं। इसलिए सुभद्रा जी 'कोयल' कविता में बच्चों को मीठी बोली बोलने की सीख देती हैं। कोयल काली है पर उसकी बोली मीठी है यह मिठास से भरी बोलीबच्चे अपनी मां से ही सीखते हैं। मीठी बोली के साथ–साथ सरल शब्दों में सुभद्रा जी कोयल की मनोरम विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखती हैं :–

"कोयल कोयल सच बतलाओ
क्या संदेशा लायी हो
बहुत दिनों के बाद आज फिर
इस डाली पर आयी हो

क्या गाती हो किसे बुलाती हो
कह दो कोयल रानी
प्यासी धरती देख माँगती हो
क्या मेघों से पानी
अथवा कड़ी धूप में हमको
दुखी देख घबराती हो
शीतल छाया भेजो यह
बादल से कहने जाती हो।"

सुभद्रा जी 'पतंग' कविता में बच्चों के मन की लालसा को रेखांकित करती हैं। बच्चे जब दुकान पर कोई चीज देखते हैं तो उसे खरीदने के लिए मचल उठते हैं। बच्चे रोने और चिल्लाने लगते हैं तब कोई भी मां सहन नहीं कर पाती है। अपने बच्चे की मांग को मां हर संभव पूरा करने का प्रयास करती है। इसी स्वभाविक दृश्य को सुभद्रा जी की 'पतंग' कविता में देखा जा सकता है। स्वयं सुभद्रा जी के बच्चे पतंग देखकर मचल उठते हैं, पतंग खरीदने का आग्रह करने लगते हैं। बच्चे माँ को समझाते हैं, माँ के द्वारा पैसे ना देने की बात पर रोएंगे चिल्लायेंगे कहने लगते हैं। पतंग की बात अपनी मां को समझाते हुए कहते हैं :–

"लाल लाल हैं, हरे हरे हैं
पीले और चांद तारा
धेले वाला भी पतंग माँ
लगता हमें बहुत प्यारा...
तुम तो नहीं समझती हो मां
पतंग और मंझे की बात
घर में बैठी बैठी जाने
क्या करती रहती दिन–रात।"

एक बालक अपनी माँ की कोख से जन्म लेता है जन्म के बाद उसकी पहली पाठशाला माँ की गोद होती है। माँ से ही वह सीखता है जब बच्चा अपनी माँ की आँचल छोड़ पहली बार पाठशाला जाता है तब उसका कौतुहल और बढ़ जाता है वह पहली बार घर से बाहर किसी और के अधीन में रहकर अक्षर ज्ञान सीखता है। इस प्रक्रिया में बच्चों की जो मनोवृत्ति होती है उसे सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'अजय की पाठशाला' कविता में देखा जा सकता है। इस कविता में सुभद्रा जी के बेटे अजय के स्कूल जाने वाले उत्साह का वर्णन सहज ही देखने को मिलता है :–

"उस दिन पहले पहल अजय जब
पढने गये पाठशाला
उन्हें गुरु जी ने घर भेजा
पहना फूलों की माला
पूछा गया नाम तब बोले

मुझे बड़े भैया कहते
घर में भी हम नहीं खेलते
सारे दिन पढ़ते रहते।"

सुभद्रा कुमारी चौहान अपने बाल कविताओं में अपने ही बच्चों के क्रियाकलापों को प्रस्तुत करती हैं। अपने बच्चों में सुधा, अजय, विजय, मुन्नी आदि के क्रियाकलापों से अनुभव लेकर वे कविताएं लिखीं, इस प्रकार उन्होंने अपने बच्चों को भी साहित्य के बच्चे बना दिया है। वात्सल्य उद्घाटन जिस रूप में सुभद्रा जी ने किया है वह कहीं और नहीं देखा जा सकता है। इसलिए यह कहना उचित होगा कि बाल साहित्य में सुभद्रा कुमारी चौहान की उपस्थिति अनुपम व अद्भुत है।

संदर्भ :-

1. सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्य में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना, डॉ. सावित्री भरतिया, गरिमा प्रकाशन, मुरादाबाद, पृ. सं. 93
2. सुभद्रा कुमारी चौहान ग्रंथावली, संपा रूपा गुप्ता, स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली 2015, पृ. सं. 77
3. वही, पृ.सं. 213
4. वही, पृ. सं. 199 –200
5. सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्य में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना, डॉ. सावित्री भरतिया, गरिमा प्रकाशन, मुरादाबाद, पृ. सं. 97
6. सुभद्रा कुमारी चौहान ग्रंथावली, संपा रूपा गुप्ता,स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली 2015, पृ. सं. 207
7. पृ.सं. 189–190
8. वही, पृ. सं. 202–203
9. वही, पृ. सं. 209

ईमेल – mk21350@gmail.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 84-88

गोविन्द मिश्र की कहानी – साहित्य में वृद्ध जीवन

मंजू शर्मा
शोधार्थी

शोध सार :–

मनुष्य जीवन का अंतिम पड़ाव वृद्धावस्था होती है। यह अवस्था व्यक्ति को संसारिक दायित्यवों से मुक्त करती है। व्यक्ति अपनी परिवार व आजीविका हेतु किए जाने वाले कार्यो से निवृत हो कर अपने जीवन की इस सांध्या बेला को सुख शान्ति से भोगना चाहता है। लेकिन वर्तमान आधुनिकीकरण की इस दौड़ में इस प्रकार दौड़ा जा रहा है जहां इमारे परिवारिक मूल्यों, संस्कृति, नैतिक मूल्यों का हनन होता जा रहा हैं। इनमें से एक प्रमुख मूल्य वृद्धो के प्रति समान व श्रद्धा का भाव है लेकिन अब इस संवेदना या मूल्य का ह्रास होता जा रहा है। भौतिकवादी यूग से सबसे अधिक शोषित अगर कोई है तो वह हमारा वृद्ध वर्ग जिन्होंने हमारी युवा पीढी के भविष्य को संवारने के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन होम कर दिया गोविन्द मिश्र ने अपनी कहानियों में वृद्ध जीवन की इस त्रासदी को अत्यन्त संवेदनात्मक रूप से उठाया है। मिश्र जी आज के दौर से साहित्यकार होने के साथ यथार्थ व संवेदना से गहराई से जुड़े है उनकी कहानियां कचकौध, कोना, युद्ध अंश, अक्षम, निरस्त, जंग, संध्यानाथ, आल्हखण्ड, आदि इसी प्रकार वृद्ध जीवन की त्रासदी, कमियों आदि का चित्रण करती है।

मूल आलेख :–

साहित्य में वर्तमान परिस्थिति यथार्थ को व्यक्त करने की मांग करती है और यह मांग जो जैसा है वैसा प्रकट करने का पक्ष लेती है। इसलिए साहित्य समाज की समस्या को खुले रूप से प्रस्तुत करने लगा है और इसी कारण वृद्ध को लेकर हमारे समाज की जो ज्वलन्त समस्या है ने भी साहित्य को आकृष्ट किया और आज हिन्दी साहित्य में कोई भी विद्या ऐसी नहीं है जिसमें वृद्धों को लेकर लिखा नही गया हो। वृद्ध जीवन मनुष्य जीवन की अंतिम अवस्था हे। जहां आकर उसके जीवन में एक ठहराव सा आ जाता है। उसके जीवन की सारी भागदौड़ समाप्त हो जाती है। वह अपनी नौकरी व अपनी गृहस्थी की जिम्मेदारियों को पूरी कर चुका होता है। जीवन में इतना लम्बे समय तक जिम्मेदारियों को पूरा करने में व्यस्त रहने वाले के जीवन की जिम्मेदारियों के साथ व्यस्तता तो समाप्त होती है साथ ही एक खालीपन उसके जीवन में उतर जाता है। यही से उनके जीवन की समस्याएं होने लगती है।

वैसे यह बात नहीं है कि हिन्दी साहित्य में वर्तमान से पहले वृद्ध विमर्श को लेकर लिखा नहीं गया हो। मुंशी प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' जिसमें (1) बूढी काकी कहानी के बुद्धीराम रूपा का विचार है कि बूढी काकी का काम ही उतपात मचाना है समस्या न काकी के स्वास्थ्य की है न उसके पारिवारिक सामाजिक सांस्कृतिक जीवन

की समस्या उसके स्वादेंद्रिय की है। इस समस्या का जन्म उसी दिन हो गया था जिस दिन इस अमीर विधवा बुढिया ने बेटो की मृत्यु के बाद सारी जायदाद भतीजे बुद्धिराम के नाम लिख दी थी।'' (2) ऊषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' वृद्ध पुरूषो का दर्द प्रस्तुत करने वाली प्रथम सशक्त कहानी है। पैतीस साल परिवार का पोषण करने वाले स्वयं छोटे–छोटे स्टेशनों पर रहकर उनके लिए शहर में हर सुविधा जुटाने वाले गजाधर बाबू को रिटायरमेन्ट के बाद कमाने पुत्र से लेकर पढने वाले पुत्र तक बेटी से लकर बहु तक, यहा तक पत्नि भी परिवार का हिस्सा मानने से इन्कार कर देती है। (3) चन्द्रकिशोर जायसवाल की 'मानबोध बाबू' में गाड़ी में मिले दो बुर्जुग यात्रियों के संन्दर्भ में वृद्धो की पारिवारिक सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। जायदाद वाले वृद्ध अगर गांव में रहे तो जीवन की मुलभुत जरूरते भी पूरी नही हो पाती। सब बेचकर बेटो के पास महानगरों में चले जाये तो सारी राशी उनकी हथेली पर रखनी होगी। मनीषा कुलश्रेष्ठ की प्रेत कामना, निर्मल वर्मा की जाले, सुषमा बेरी की झाड़, गुनहगार, कृष्णा अग्निहोत्री की 'यह क्या जगह है' आदि वृद्धावस्था को केन्द्र में रख कर लिखी गई कहानियां है। समकालीन कहानीकारों में कथाकार गोविन्द मिश्र ने वृद्धावस्था पर कई कहानियां लिखी उनके द्वारा लिखी गई कहानियां इस अवस्था की बहुत ही बारीकी से अच्छाईयां व बुराईयों का चित्रण निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया जाता है।

1. कमजोर स्वास्थ्य व मानसिकता
2. उपेक्षा के शिकार
3. अनुभवी, स्वाभिमानी, भावुक
4. मनोवैज्ञानिक स्थिति का चित्रण
5. रूढ़िवादी विचार

1. कमजोर स्वास्थ्य व मानसिकता :–

गोविन्द मिश्र की कहानियां वृद्धावस्था की सबसे बड़ी विशेषता वृद्धों द्वारा अपने स्वास्थ्य को लेकर है। यह अवस्था वह अवस्था है जिसमें मनुष्य का शरीर कमजोर व लाचार हो जाता है। शरीर के अंगों में वह युवावस्था वाली ताकत नहीं रहती है। शरीर की अशक्तता के साथ वह मानसिक रूप से भी अपने आप को लाचार व कमजोर मानने लगते है जो उनके शरीर में बिमारियों को आमंत्रण देती है। शारीरिक व मानसिक रूप से लाचार वृद्ध व्यक्ति हर समय अपने स्वास्थ्य संबंधी बाते करता है और बार–बार रोने को भी अपनी आदत बना लेते है। 'बेबस' कहानी की वृद्ध को कोई भी बीमारी नही, होती लेकिन हर समय वह अपने शरीर को लेकर बड़बड़ाते ही रहते है। [1]''अरे दैया..... अरे मोरे करम रे.....हाय! कैसो अंग अंग बिगरो है रे ..... अरे भोगमान भुगतने है रे.... अरे कोई नही आय रे.....''अरे दुनिया मरत जात, मोहे जाने कबै मौत आहै रे.....'' शारीरिक रूप से कमजोर होने के साथ वृद्धावस्था मानसिक रूप से भी कमजोर होने की अवस्था होती है। इस समय कई वृद्धों में मानसिक सन्तुलन बिगड़ने, याददाशत कमजोर होने, बार–बार अपनी बात को दोहराने, सन्देह करने वाली मानसिकता हो जाती है। साथ ही रसना उनकी अधिक बलवती हो उठती है खाने के प्रति लालसा में वे अपने बच्चों का अपमान भी दूसरे लोगों के सामने करने लगते है। उनके अपने बच्चे जो उनके स्वास्थय संबंधी तकलीफों के कारण उन्हें कुछ खाने से परहेज के कारण उन्हें वे चीजें खाने को नहीं देना चाहते है। वे इसको गलत तरीके से दूसरों के सामने इस प्रकार प्रस्तुत करते है, जिसे दूसरों को उन पर तरस आ जाये और वे उन्हें

खाने की चीज उपलब्ध करवा दे।

'जंग' कहानी की नायिका की मां भी ऐसी ही वृद्धा है जो पड़ोसी गुप्ता जी के यहां बेटी द्वारा भूखा मारा जा रहा है कहकर खाने–पीने की चीजें के साथ रूपये भी मांग लाती है। नौकर रामू व उसकी पत्नी से कुछ–कुछ बनाने या बाजार से लाने को कहती रहती है। नहीं लाये तो उनके साथ गाली गलौज करती है।

2. उपेक्षा के शिकार :–

यह सही है कि वृद्धों की उपस्थिति भारतीय समाज में सदैव से रही ही उनके प्रति सम्मान व श्रृद्धा के भाव भी भारतीय संस्कृति के मूल्यों में से एक है। लेकिन वर्तमान में हमारी पीढ़ी भारतीय संस्कृति के मूल्यों को भूलती जा रही है। जिससे सबसे ज्यादा क्षरण वृद्धों के सम्मान संबंधी मूल्यों का हो रहा है। आज वृद्ध माता–पिता भोतिकता की अंधी दौड़ में दौड़ने व व्यस्त होने का जुमला बोलने वाले अपनी ही सन्तानों से शोषित हो रहे है। इन्हें मानसिक व शारीरिक प्रताड़ना देने में भी यह पीढ़ी पीछे नहीं है। वृद्ध माता–पिता के साथ अपने संबंधों को भी वे उपयोगितावाद के आधार पर तय करते है। वृद्ध माता–पिता का इस प्रकार उपेक्षा का शिकार होना हर समाज में देखने को मिल जाता है। यथार्थवादी व सचेतन कथाकार मिश्र जी इस समस्या को अपनी कहानियों में बहुत ही मार्मिकता के साथ व्यक्त करते है।

वर्तमान युवा पीढ़ी तकनीकी युग की पीढ़ी होने से अपने को अधिक बौद्धिक व ज्ञानवान मानकर वृद्धों के अनुभवों की खिल्ली उड़ा कर उन्हें हेय बनाने का प्रयास करती है इसे गोविन्द मिश्र ने कहानी ''अंश'' में पिता की मृत्यु पर विदेश में रहने वाले पुत्र के व्यवहार से मां को ठेस पहुंचने का जहां मार्मिक चित्रण है वहीं पुत्र की स्वार्थपरता, मूल्यहीनता का यथार्थ चित्रण है जब वह अपनी मां से कहता है टिकट के रूपये भेज दो उसके पास आने के लिए रूप्ये नहीं और साथ ही अपने से कई साल बड़ी विदेशी लड़की क्रिस जिससे वह विवाह करना चाहता है को भी अपने साथ लाने की बात करता है। और भारत आने के बाद जल्दी मचाते हुए कहता है–[2] ''उनके पास समय नहीं है, क्रिस भी जोब करती है, वे बहुत मुश्किल से आए है जो करता है जल्दी कराइए। ये क्या कि लड़के को ही सबकुछ करना है, यह सब ढकोसला है। हिन्दुस्तान इसलिए आज भी एक पिछड़ा देश है।'' इसी प्रकार विदेश में रहने वाले बच्चे अपने जीवन में व्यस्त होकर अपने आप को इतने संकुचित कर लेते है जहां पर उनके माता–पिता भी उनके लिए पराये हो जाते है। मिश्र जी की 'धुधला पीला' कहानी में विदेश में रहने वाले पुत्र व उसकी पत्नी द्वारा माता–पिता उपेक्षा के शिकार होते है को चित्रित किया है– वहीं विशाखापट्टनम में रहने वाले पुत्र से भी तिरस्कार मिलने पर माता–पिता अपमानित महसूस करते है। और अपने आप को सफल बनाने का श्रेय माता–पिता को न देकर वे ये कहते है कि – [3]''मां बाप ने पाल पोस दिया, शुरू में पढ़ाया लिखाया तो वह तो सभी करते है, न करते तो बच्चे पैदा क्यों किए थे? बाकी सब तो उनका अपना अर्जित किया हुआ है– उनकी प्रतिभा, उनकी लगन, उनकी मेहनत।''

3. अनुभवी, स्वाभिमानी व भावुक :–

वृद्धावस्था तक पहुचंता–पहुचंता मनुष्य का जीवन कई उतार–चढ़ाव वाले संघर्षों से गुजरता है और ये संघर्ष उसे जीवन के कई अनुभव प्रदान कर विभिन्न प्रकार की समस्या समाधान करने में पारंगत कर देता है जिसके कारण वह धैर्य के साथ समस्या का हल करता है जिसका आज की पीढ़ी में अभाव देखा जा सकता है। 'कहानी नहीं' में गोविन्द मिश्र ने एक अस्सी वर्षीय वृद्ध का मांडू के प्रति लगाव और उसे सुर्खियों में लाने

के लिये अपने अनुभवों का प्रयोग करने का निश्चय का चित्रण है –[4] ''उन्होंने अपने अन्दर नई शक्ति लहलहाती महसूस की.... अभी तो पता नहीं कितना काम पड़ा है– आज ही राष्ट्रपति को लिखेंगे..... आपके पहले सभी ने इस जगह को गौरान्वित किया है– आप कब? मांडू को हवाई जहाज के नक्शे पर लाने की कोशिश करनी है। इतिहास लिखना है। इस जगह की बेहतर देखभाल के लिए जदोहजद करनी है।'' वृद्ध व्यक्ति मूल्यों में बहुत विश्वास करते है। वे स्वाभिमानी होते है और वृद्धावस्था में तो यह स्वाभिमान और अधिक दृढ़ हो जाता है। कहानी 'यो ही खत्म? में बप्पा कलक्टर के घर अपनी गाय का दूध भेजते है और जब कलक्टर इस एहसान को किसी भी प्रकार से चुकाने के प्रयास में गाय खरीदने का प्रस्ताव रख देते है तो बप्पा का स्वाभिमान जाग उठता है।–[5]''बप्पा का मुंह तमतमा आया– ठीक है कि वे गरीब है पर भूखे नहीं मर रहे, दो रोटी दोनो जून मिलती ही है, वे ऐसे हो गए कि और जैसा ऐसे में होता था, बप्पा सिर से पैर तक खामोशी में लिपट गए। फिर किसने क्या कहा.... क्या किया उन्हें कुछ पता नही चला। थोड़ी देर में संभले तो उठे और बाहर को चल दिए। मुड़कर कलक्टर से सिर्फ इतना कहा– ''आपको यह तो पता होना चाहिए कि हमारे समाज में बेटियों को बेचा नही जाता'।

4. मनोवैज्ञानिक स्थिति :-

यथार्थवादी कहानीकार होने के कारण मिश्रजी ने वृद्धावस्था का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। इस अवस्था में पहुंचे वृद्ध अपने को असहाय, निर्बल, शोषित, उपेक्षा के शिकार तो समझते ही है। वे किस प्रकार से अपने आप को समाज में व्यर्थ समझने लगते है। कैसे अपनी संतानों द्वारा प्रताड़ित होकर अवसाद में जा कर गाली गलौज करने लगते है, चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते है। हर समय बड़बड़ाते रहते है, लोगों का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयास करते है, समाज उनको महत्व दे, इस प्रकार के कार्य वे करते रहते है। कई वृद्धों में तो स्त्री के प्रति भी कामुक दृष्टि देखी जा सकती है। उनमें कुण्ठा होती है जो इस रूप में प्रकट होती है। कहानी 'निरस्त' में वृद्ध अपने घर की नौकरानी के प्रति मन में कोमल भावनाऐं पनपाने लगे और उससे बातचीत करने लगे, उसके काम से हाथ बटांने लगे। वृद्ध के मन में उसके प्रति जो लगाव उत्पन्न हुआ। उसे इस प्रकार व्यक्त करते है–[6] ''एक कोना सा बनने लगा था। उसके लिए मन में प्यार उमड़ता, खुद ही लुकछिप कर रसोईघर से चीजे उठा कर उसे दे देते..... 'ले लड़के बच्चे को खिला देना' उसकी चाय में चुपचाप और दूध डाल देते।''

5. रूढिवादी विचार :-

वृद्ध लोग अपने समय में जिस परिवेश में जीते है। वे उसी में जीना चाहते है। उनके बाद की पीढ़ी व उनमें इसी वजह से विचारों में तालमेल नहीं हो जाता है। वर्तमान युग विज्ञान का युग है। आज की पीढ़ी मशीनों से खेलती है। मशीनों ने उनके जीवन को सुविधाजनक बना दिया है जबकि वृद्ध अपने उसी परिवेश को सही मानते हुए कभी धर्म, परम्परा, संस्कृति, खान–पान स्वास्थ्य आदि के नाम पर नयी पीढी के रहन–सहन खान–पान आदि को उचित नहीं बताते और बात–बात पर उन्हें टोकते रहते है। जिससे वे नई पीढ़ी को दकियानुसी सोच वाले लगने लगते है। 'कचकौध' कहानी में वृद्ध पिता अपने पुत्र को अपने अनुसार संस्कार पूर्ण जीवन बिताने को कहते है–[7]''बड़े को एक दिन कह आया कि झाड़े–जंगल के बाद साबुन नही मिट्टी इस्तेमाल करना चाहिए मृतिका का शास्त्रों में भी माहात्म्य कहा गया है। शुद्धता उसी से होती है। इसलिए कहते

है। हाथ मटिया लो। सो वह उबल पड़ा ये बाथरूम जो मोजेक है, गंदे न हो जाएंगे । यह सब वहां चलता है। यहा नही चल सकता कौन कहेगा, ये आचारी पिता के लड़के है। ससुरे अंधोरियो की संतान है उनका सारा इन संतानों में आ गया' छुआछुत ऊंच–नीच संबंधी भेदभाव वाले दृष्टिकोण पर आज की युवा पीढी विचार नही करती है।

आज इस पीढी में से ये सब समाप्त हो चुका है। जबकि वृद्ध जीवन में बहुत से लोगों द्वारा आज भी इन बातों का विशेष ध्यान रखा जाता है। कहानी 'यो ही खत्म' की पार्वती मौसी ऐसी ही एक वृद्धा है जो किसी निम्न जाति से टकरा गई तो छूत हुई समझ कर नहाती जैसे [8] ''सुंगरिया रास्ता काट गई या कोई निम्न जाति का बहुत पास से गुजर गया तो छुआछूत फिर हो गई और फिर वापस छावी तालाब या बजरंग कुण्ड कोई मौसम हो मौसी को दसियों बार नहाना पडता है।

निष्कर्षत यह स्पष्ट है कि गोविन्द मिश्र समकालीन यथार्थवादी कहानीकार है, इन्होंने वर्तमान समाज की जटिल व ज्वलन्त समस्या वृद् जीवन के यथार्थ विसंगतियां, त्रासदियों उपेक्षाओं, कुण्ठाओं, निराशाओं का गंभीरता व अनुभव के आधार पर बहुत ही वास्तविक चित्रण अपनी कहानियों में किया है।

निष्कर्ष :-

गोविन्द मिश्रजी वृद्‌ावस्था जीवन के यथार्थ को व्यक्त करते हुए इसे अपनी कहानियों का प्रमुख विषय बनाया है समाज में रहते हुए समाज की प्रमुख समस्या को व्यक्त करते हुए वे इस अवस्था की कमियों को भी नजर अन्दाज नही करते बल्कि उन्हें स्पष्ट रूप से व्यक्त करते है। जहां उनकी कहानियों में वृद्ध शोषित, उपेक्षा का शिकार अनुभवी है तो जीभ लोलुभ,गाली गलौच करने वाले व काम कुण्ठा से पीड़ित भी है इस प्रकार गोविन्द मिश्र जी अपनी कहानियों में वृद्ध जीवन के यथार्थ का वास्तविक व जीवन्त खाका प्रस्तुत करते नजर आते है।

संन्दर्भ :-

1. इन्द्रनाथ मदान, प्रेमचन्द की श्रेष्ठ कहानियां,नई दिल्ली, हिन्दी पॉकेट बुक्स
2. उषा प्रियमवंदा, जिंदगी और गुलाब के फुल, काशी, भारतीय ज्ञानपीठ
3. चन्द्रकिशोर जायसवाल, मानबोध बाबू, हंस
4. गोविन्द मिश्र, कहानी समग्र– भाग 3 'बेबस' पेज न. 45
5. गोविन्द मिश्र, कहानी समग्र–भाग 3 'अंश' पेज न. 131
6. गोविन्द मिश्र, कहानी समग्र–भाग 3 'धुंधला पीला' पेज न. 243
7. गोविन्द मिश्र, कहानी समग्र– भाग 2 'कहानी नही....' पेज न. 184
8. गोविन्द मिश्र, कहानी समग्र – भाग 2 'यो ही खत्म? पेज न. 425
9. गोविन्द मिश्र, कहानी समग्र–भाग 2 'निरस्त' पेज न. 159
10. गोविन्द मिश्र, कहानी समग्र –भाग 1 'कचकौध' पेज न. 363
11. गोविन्द मिश्र, कहानी समग्र – भाग 2 'यो ही खत्म? पेज न. 416

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 89-97

मूल्योन्मुख – उच्च शिक्षा की दिशाएँ

–डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप
सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र), शासकीय टी.सी.एल. स्नातकोत्तर महाविद्यालय जांजगीर (छ.ग.)

सारांश :–

भूमंडलीकरण और मुक्त अर्थव्यवस्था के इस दौर में सर्वसाधारण के लिए शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो न केवल व्यक्तिगत संभावनाओं और छिपी प्रतिभाओं को उजागर करे अपितु उसकी विषयवस्तु तथा प्रक्रिया समसामयिक कार्यजगत की आवश्यकताओं के प्रति भी संवेदनशील हो। केवल वही शिक्षा गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले छात्र–छात्राओं के लिए वरदान सिद्ध हो सकती है जो जीवन और जीविका दोनो के प्रति प्रासंगिक हो।

सा विद्या या शास्ति, सा विद्या या विमुक्तये। अर्थात् जो हमें अनुशासित करती है, वह विद्या है, जो हमें मुक्ति देती है, वह विद्या है। शिक्षा वह संजीवनी है, जो अज्ञानता रूपी मरूस्थल में भी ज्ञान की गंगा बहाती है। शिक्षा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की प्रगति के लिए आवश्यक है।

किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था कितनी उन्नत है? इस तथ्य का मूल्यांकन 3 मापदंडो के आधार पर किया जाता है – (1) उच्च शिक्षा तक कितने युवाओं की पहुँच है? (2) क्या उच्च शिक्षा न्याय संगत है? (3) उच्च शिक्षा की गुणवत्ता कैसी है?

मुल्योन्मुखी शिक्षा के दर्शन में नैतिकता और अध्यात्मिकता की अवधारणा को स्पष्ट किया जाना चाहिए। नैतिकता शब्द का अभिप्राय है, व्यक्ति द्वारा एक प्रकार की आंतरिक प्रेरणा और दिशा निर्देशन में अपनी इच्छाओं और मनावेशों पर नियंत्रण और पूर्वाधिकार प्राप्त करने का सतत् प्रयास करना। नैतिकता को आध्यात्मिकता की दिशा में प्रयास की तैयारी भी मान सकते है। आध्यात्मिकता किसी व्यक्ति द्वारा बिना किसी संशय के कल्पित परमपूर्ण की प्राप्ति के प्रयास के साथ शुरू होती है। जहॉ नैतिकता का संबंध कर्त्तव्य क्षेत्र से है वहीं आध यात्मिकता ऐसे ज्ञान की खोज है, जो सभी बंधनो से मुक्ति दिलाने वाला है। ''सा विद्या या विमुक्तये।'' भारतीय शिक्षा में आत्मबोध को सर्वोच्च आध्यत्मिक मूल्यों में सम्मिलित किया गया है।

वास्तव में कुछ ऐसे जीवन मूल्य है जो अद्वितीय रूप से भारतीय है। इन मूल्यों को भारत के साथ–साथ अन्य देशों में भी श्रेष्ठ माना जा सकता है। पर भारत में इन्हे विशेष उत्साह, समर्पण और पूर्णता तथा विशिष्टता के साथ अपनाया जाता है। सहिष्णुता भारत की विशिष्टता है। ऐसे कई भारतीय मूल्य है, जिन्हे हमारी शिक्षा प्रणाली में उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

मुख्य शब्द :– मूल्योन्मुख उच्च शिक्षा की दिशाएँ, चुनौतियाँ, भावी रणनीतियाँ, भारत में शिक्षा का विकास।

अध्ययन का उद्देश्य – मूल्योन्मुख उच्च शिक्षा की चुनौतियों का अध्ययन

अध्ययन विधि – द्वितीयक समंको पर आधारित

प्रस्तावना :-

''सा विद्या या विमुक्तये'' – अर्थात् असली शिक्षा वह है जो व्यक्ति को बंधन मुक्त करती हो। उसे धन, पद, मान प्रतिष्ठा के लोभ से ऊपर उठाती है।

शिक्षा के सबंध में हमारी पारंपरिक मान्यता इसी प्रकार की रही है। परन्तु आज धनोपार्जन शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बन गया है। नैतिकता एवं चरित्र निर्माण जैसे मुद्दों का तो मानो शिक्षा से कोई लेनदेन ही नहीं। आज मानवता एक नए समाज – विश्व समाज का रूप ले रही है, जानकारी बढ़ रही है, परन्तु समझदारी कम हो रही है। संघर्ष और प्रतियोगिता अपने चरम पर है। विकसित और विकासशील देशों के बीच खाई चौड़ी हो रही है। हमारी शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो इस हानिकारक एवं विभाजक विरासत को मिलन और सहयोग की एक नई संस्कृति में बदले। ऐसा तभी संभव है जब हम अपनी शैक्षणिक सोच में एक बार आध्यात्मिक तत्व को, नैतिकता और चरित्र निर्माण से जुड़े पहलू को अधिक महत्व दें। यह मूल्योन्मुख शिक्षा से संभव है।

शिक्षा समाज का दर्पण है। शिक्षा का क्रमिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि विश्व के लगभग सभी देशो में नीति निर्धारकों और शैक्षिक आयोजकों ने समय–समय पर शिक्षा व्यवस्था को क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिए परिवर्तन करने का प्रयास किया है कि उसकी विषयवस्तु समसामयिक, सामाजिक एवं आर्थिक वास्तविकताओं के अनुरूप हो, रोजगार की बदलती आवश्यकताओं के अनुकूल हो, साथ ही वंचित वर्ग के उत्थान में भी सहायक हो।

प्रगति पथ पर अग्रसर भारतीय समाज आज पाश्चात्य सभ्यता द्वारा प्रेरित भौतिकवाद के दौर से गुजर रहा है। समकालीन शिक्षा की अभिधारणा भी समाज की इस परिवर्तित मनोभाव से अछूती नहीं रह सकती। परिणामस्वरूप आज भारतीय शिक्षा ने भी पारम्परिक निर्माणात्मक भूमिका को त्याग कर समय की मांग के अनुकूल उपयोगितावादी भूमिका को आत्मसात करने की चेष्टा की है। इस प्रचेष्टा में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था केवल परीक्षा और प्राईवेट कोचिंग की 'चेरी' बनकर रह गई है। इन वास्तविकताओं के कारण आज शिक्षा और समाज के बीच एक नया संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

उच्च शिक्षा – विकास एवं विस्तार :-

भारत में आधुनिक उच्च शिक्षा की विधिवत शुरूआत सन् 1817 में राजा राम मोहन राय तथा डेविड हरे के संयुक्त प्रयासों से खोले गए डेविड हरे कॉलेज कलकत्ता से हुई। इसके पश्चात् तीनो प्रेसिडेन्सियों एवं अनेक प्रसिद्ध नगरों में अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत तथा साहित्य की शिक्षा के कॉलेज खुलने लगे। सन् 1854 में मैकाले द्वारा प्रतिपादित उच्च शिक्षा एवं सरकारी नौकरी के मध्य तारतम्यता के पश्चात् 1857 में कलकत्ता, बम्बई एवं मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई जो देश भर में महाविद्यालयों के लिए पाठ्यक्रम का निर्धारण परीक्षा आयोजन एवं डिग्री प्रदान करने का कार्य करते थे। सन् 1902 में प्रथम ''विश्वविद्यालय जांच आयोग' गठित हुआ। जिसकी अनुशंसा पर 1909 में भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित किया गया।

भारत में शिक्षा का विकास :-

भारत में शिक्षा के प्रति रूझान, प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है। प्राचीन काल में गुरूकुलों,

आश्रमों तथा बौद्ध मठो में शिक्षा ग्रहण करने की व्यवस्था होती थी। तत्कालीन शिक्षा केन्द्रो में नालन्दा, तक्षशिला एवं वल्लभी की गणना की जाती है। मध्यकालीन भारत में शिक्षा मदरसों में प्रदान की जाती थी। मुगल शासकों ने दिल्ली, अजमेर, लखनऊ एवं आगरा में मदरसों का निर्माण करावाया। भारत में आधुनिक व पाश्चात्य शिक्षा की शुरूआत ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल में हुई।

1781 में बंगाल के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने फारसी एवं अरबी भाषा के अध्ययन के लिए कलकत्ता में एक मदरसा खुलवाया। 1784 में सर विलियम जोन्स ने एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना की। जिसने प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किया। 1791 में ब्रिटिश रेजिडेन्ट डंकन ने बनारस में एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना की। लार्ड वेलेजली ने 1800 में गैर सैनिक अधिकारियों की शिक्षा हेतु फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की।

स्वतंत्रता से पूर्व उच्च शिक्षा जहाँ संभ्रांत वर्ग का विशेषाधिकार मानी जाती थी, आज वह सर्वजन सुलभ है। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास 1948 में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन करके किया गया। इसके प्रथम अध्यक्ष डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन थे। तत्पश्चात् 1952–53 में मुदलियार आयोग का गठन माध्यमिक शिक्षा के समुचित विकास हेतु किया गया। सुप्रसिद्ध शिक्षाविद डॉ. जी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में 1964–66 में गठित कोठारी आयोग (भारतीय शिक्षा आयोग) की सिफारिशों के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा नीति तैयार की गई। इसके अंतर्गत गरीबों के लिए आर्थिक सहायता, प्रौढ़ शिक्षा एवं स्त्री–पुरूष की समानता को प्रोत्साहन देने हेतु समस्त शिक्षा प्रणाली को पुनर्गठित करने हेतु प्रयास किया गया। परिणाम स्वरूप मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनो, दृष्टिकोण से विकास हुआ है।

स्वतंत्रता के समय 1947 में देश में केवल 19 विश्वविद्यालय 400 महाविद्यालय एवं 5000 माध्यमिक स्कूल थे। जबकि वर्तमान समय में देश में लगभग 15 लाख स्कूल है। विश्वविद्यालय की संख्या 903 एवं 39050 महाविद्यालय है।

भारतीय शिक्षा के उद्देश्य :-

(1) पवित्रता तथा जीवन की सद्भावना (2) चरित्र निर्माण (3) व्यक्तित्व का विकास (4) नागरिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों का विकास (5) सामाजिक कुशलता तथा सुख की उन्नति (6) संस्कृति का संरक्षण तथा विस्तार, विश्वविद्यालय आयोग के अनुसार – 1. विवेक का विस्तार करना। 2. नए ज्ञान के लिए इच्छा जागृत करना। 3. जीवन का अर्थ समझने के लिए प्रयत्न करना। 4. व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था करना।

राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान (RUSA) –

राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान ने देश के उच्च शिक्षा के क्षेत्र को फिर से जीवंत करने के लिए योजना बनाई। रूसा का लक्ष्य 2020 तक उच्च शिक्षा के क्षेत्र में 30 प्रतिशत ळम्त्को प्राप्त करने का है।

भारत शिक्षा की गुणवत्ता और मात्रा दोनों के मामले में अपने बराबर के देशों से पीछे है। 18 से 23 वर्ष के बीच कुल जनसंख्या में उच्च शिक्षा के लिए पंजीकृत लोगों का अनुपात 20 प्रतिशत है, चीन में यह 28 प्रतिशत, ब्राजील में 36 प्रतिशत, जापान में 55 प्रतिशत है। उच्च शिक्षा देने वाले वैश्विक संस्थानों की टाइम्स की ओर से जारी वरीयता सूची में शीर्ष 200 संस्थानों में भारत का एक भी संस्थान सम्मिलित नहीं है।

मूल्योन्मुख शिक्षा की अवधारणा :-

जब हम मूल्यों की बात पर विचार करते है तो शिक्षा प्रणाली के माध्यम से इसका अध्ययन और अनुसरण कराना चाहते है तो मूल्योन्मुख शिक्षा देना आवश्यक हो जाता है।

मूल्योन्मुख शिक्षा का उद्देश्य :– व्यक्ति में उन गुणों का विकास करना, जो उसे एक विकसित व्यक्तित्व प्रदान करते हों।

मूल्योन्मुख शिक्षा को सद्भावना का वातावरण बनाने की दिशा में बिना शर्त प्रयास को प्रोत्साहन देने वाली एक प्रगतिगामी और अन्वेषणात्मक विकास प्रक्रिया का प्रयास किया जा सकता है। यह शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को अच्छे और बुरे का निर्धारण करने की स्वतंत्रता देती है पर इसकी मान्यता है कि व्यक्ति सद्भावना चाहता है।

मूल्योन्मुख - उच्च शिक्षा की दिशाएँ :-

शिक्षा के दो उददेश्य होते है – एक तो वह व्यक्ति को शिष्ट, सभ्य, सामाजिक नागरिक बनने में मदद करती है एवं दूसरा वह आजीविका का साधन होती है। वर्तमान भारतीय समाज में जिस प्रकार के व्यक्ति केन्द्रित प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार, अपराध एवं एक दूसरे के प्रति द्वेष रखने और शिक्षितों के द्वारा अपराधों में वृद्धि के हालात बने हुए है, उससे इस उद्देश्य की पूर्ति की विफलता साफ जाहिर होती है।

भारतीय श्रम रिपोर्ट 2017 के अनुसार रोजगार के अवसर तो है पर उसके लिए काबिल लोगों की कमी है, रिपोर्ट में शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया गया। आज उपलब्ध रोजगार के अवसरों में 90 प्रतिशत व्यवसायिक कौशल की आवश्यकता होती है, जबकि 90 प्रतिशत कॉलेजों और स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा केवल किताबी है। छात्रों को यह ज्ञात नहीं होता कि उन्हें किस क्षेत्र में जाना चाहिए?

हैडिक एवं स्टलर्स और इकॉनामिस्ट इन्टेलीजेन्स यूनिट की विश्व प्रतिभा सूची के आंकड़ो के अनुसार आने वाले दिनो में भारत जनांकिकी के आधार पर दूसरे स्थान पर, श्रम गतिशीलता एवं खुलेपन के लिए 9वें स्थान पर और प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने के लिए 13वें स्थान पर रहेगा, पर शिक्षा के आधार पर वह 25वें स्थान पर होगा।

विश्व प्रतियोगी वार्षिकी 2019 के अनुसार भारत 50वें क्रम से 16वें स्थान ऊपर उठकर 34वें क्रम पर आ गया है। इस स्थिति का मुख्य कारण 4 में से 3 सूचकों में भारत का ऊपर होना है, भारतीय व्यवसाय की कार्य कुशलता, आर्थिक संचालन प्रशासनिक कुशलता। परन्तु भारतीय शिक्षा पद्वति अभी भी पिछड़ी हुई है, 2004 में 60 देशो में उसका स्थान 57वां था। शोध एवं विकास पर भारत अपनी राष्ट्रीय आय का सिर्फ 0.6 प्रतिशत ही व्यय करता है जबकि जापान और अमेरिका में 1996 में ही यह प्रतिशत 2.5 प्रतिशत था।

वर्तमान में देश के लगभग सभी बुद्धिजीवी इस बात पर सहमत है कि इस शिक्षा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है।

शिक्षा की गुणवत्ता प्राथमिक स्तर से ही सुधारी जा सकती है। उसे बाद में सुधारना कठिन है। शिक्षा के लिए मात्र शिक्षक ही जिम्मेदार नहीं है। स्वयं छात्र, परिवार और संपूर्ण वातावरण। ये तीनों समान रूप से शिक्षा में योगदान करते है।

जहां तक उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का प्रश्न है 1953 में भारत सरकार ने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की। हालांकि गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए जो अधिकार इस

आयोग को सौंपे जाने चाहिए थे वे नहीं दिए गए। परन्तु छत्तीसगढ़ सरकार ने एक अधिनियम पास कर राज्य में डीम्ड विश्वविद्यालय खोलने के नियमों में भारी ढील दे दी। जिसने शिक्षा की गुणवत्ता को काफी प्रभावित किया और ऐसी संस्थायें लाभ कमाने का संस्थान बन गयी।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अतिरिक्त एक दर्जन से अधिक व्यवसायिक परिषद् स्थापित हो गई। इनमें समन्वय न होने से समस्यायें खड़ी हुई। शिक्षा की गुणवत्ता को शुल्क के साथ जोड़ दिया गया।

शिक्षा की गुणवत्ता के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि हमारा सभ्य समाज शिक्षा क्षेत्र में अपनी रूचि कम कर लेता है और जन भागीदारी समितियों की स्थापना के बावजूद शिक्षा की गुणवत्ता पर कोई ध्यान नहीं देता। शिक्षा के निजीकरण ने एक ओर सरकार को उच्च शिक्षा के दायित्व के कुछ हद तक मुक्त दिया लेकिन दूसरी और निजी संस्थानों को शिक्षा को व्यवसाय बनाने की छूट भी दे दी।

शिक्षा आर्थिक और सामाजिक प्रणाली को व्यापक दृष्टि से संचालित करने के लिए बहुत आवश्यक है। इन्हे वाह्य प्रकृति के लाभ कहना चाहिए जिसका लाभ न केवल उस व्यक्ति को होता है जो शिक्षा पाता है, वरन समाज में अन्य सदस्य भी लाभान्वित होते है। शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होने के कारण इन समस्त लाभों से समाज वंचित हो रहा है।

शिक्षा के क्षेत्र में मुख्यतः 3 समस्यायें है :-

1. महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में प्रवेश की संख्या काफी अधिक होने के बावजूद उपस्थिति कम होना।
2. शिक्षा द्वारा पढ़ाने में रूचि न लेना और शिक्षा में परिवर्तन के प्रति उदासीनता।
3. परीक्षा संबंधी अनियमितातायें।

जब हम मूल्यों की बात पर विचार करते है और शिक्षा प्रणाली के माध्यम से इसका अध्ययन और अनुसरण कराना चाहते है, वांछित तथा अवांछित का पाठ पढ़ाने की बजाय उसकी अनुभूति कराना, आवश्यक हो जाता है।

शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में सम्मिलित मूल्यों का संबंध स्वास्थ्य, शारीरिक शक्ति, आभा और सुन्दरता से होता है। भावनात्मक शिक्षा या जीवन की शिक्षा के क्षेत्र में साध्य मूल्यों का संबंध कीर्ति, वीरता और संगीत से है। तार्किक विकास के क्षेत्र में जो मूल्य ग्रहणीय माने जाते है, उनका संबंध पूर्णतः निष्पक्षता, सत्य की खोज, शांति से है। सौन्दर्य बोध के विकास से संबंधित मूल्यों में सुन्दरता और गहनतम सौन्दर्य का अनुभूति और अभिव्यक्ति से जुड़े सृजनात्मक, आनंद की कल्पना सम्मिलित होती है।

चुनौतियाँ -

अब बाजार आधारित शिक्षा की तरफ उच्च शिक्षा बढ़ रहा है। जिससे समाज, छात्र, बाजार यह निर्धारित करेगा कि संस्थान की कितनी ग्रेडिंग है? और कहॉ पर कौशल तथा ज्ञानपरक शिक्षा मिल रही है, बदलती शिक्षा व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में हमारी नैतिकतापूर्ण, गुणवत्तापूर्ण व व्यक्तित्व निर्माण पर केन्द्रित उच्च शिक्षा पद्धति कहाँ तक अपनी अस्मिता को अक्षुण्ण बनाए रखने में समर्थ है, कि नहीं यह विचारणीय प्रश्न है। वैश्वीकरण के इस दौर में शैक्षणिक व्यवस्था के 3 घटक है – छात्र, अध्यापक और अभिभावक।

उच्च शिक्षा हेतु पंजीकरण कराने वालों का अनुपात भारत में सबसे कम 11 प्रतिशत है। जबकि अमेरिका में यह 83 प्रतिशत है।

नैक–मूल्यांकित संस्थानों को ही अनुदान देने की शर्त शैक्षिक संस्थानों की समस्याओं एवं कमियों के प्रकाश में समावेशी शिक्षा की अवधारणा के विपरीत है। शिक्षकों के खाली पद, संस्थानो के भौतिक संसाधन, प्रयोगशाला एवं पुस्तकालय की बदतर स्थिति आदि उनके सामने गहन चुनौती प्रस्तुत करता है। एक तरफ तो ये संस्थान इन चुनौतियों में फॅसे है, तो दूसरी ओर खराब नेक ग्रेड उन्हे अनुदान से वंचित करता है। कुछ संस्थान तो नैक के मूल्यांकन की आवश्यक अर्हता भी पूरी नहीं करते।

1991 के बाद भारत में लागू हुए आर्थिक सुधारों में उच्च शिक्षा को पूरी तरह से नजरअंदाज किया गया है। शिक्षित लोगों से जुड़े रोजगार परिदृश्य की निराशाजनक तस्वीर के बीच चिंता की एक और वजह सरकारी क्षेत्र में नौकरियों का लगातार कम होना है। उदारीकरण के बाद के दौर में निजीकरण के बढ़ते प्रचलन के परिणाम स्वरूप सरकारी नौकरियों का विस्तार नहीं हो रहा है। निजी क्षेत्र में किसी तरह का आरक्षण नहीं है।

15 मार्च 2020 से कोरोना के कारण सभी स्कूल महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों को बंद कर दिया गया। आदेश दिया गया कि ऑनलाईन शिक्षा के माध्यम से बाकी बचे पाठ्यक्रम को पूर्ण किया जाये। परन्तु यहाँ समस्या यह है कि हर विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम अलग है। इंटरनेट की स्पीड भी एक समस्या है। शिक्षकों और विद्यार्थियों को तकनीकी समस्या का सामना करना पड़ता है।

कुछ प्रमुख रणनीतियाँ –

उच्च शिक्षा के लिए आवश्यक बुनियादी ढॉचा तैयार किया जाये। ऐसे स्नातक तैयार किए जाए, जिनकी सार्थकता हो। अनुसंधान और शोध प्रकाशनों की ओर यथासंभव ध्यान दिया जाए। पाठ्यक्रमों के निर्माण और उनके प्रतिपादन के लिए कार्पोरेट और उद्यमियों को भी सम्मिलित किया जाए। जिस देश में उद्यमिता और शिक्षा का उचित समन्वय होगा, वह निश्चित रूप से सफल होगा। संसाधनों के वितरण में समानता का व्यवहार किया जाए। शिक्षा एवं अनुसंधान का बेहतर संयोग बनाना होगा। उच्च शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए स्कूली स्तर पर भी प्रयास करने होगें।

सर्वप्रथम उपस्थिति पर ध्यान देना जरूरी है। विद्यार्थी जानते है कि बाजार में दो चीजों की मांग है प्रथम विषय से संबंधित डिग्री, जो पासपोर्ट का कार्य करती है, द्वितीय उस विषय का ज्ञान जो उसे डिग्री पाने के बाद करना पड़ता है। पारंपरिक पाठ्यक्रम का व्यवहारिक जीवन में कोई भी उपयोग दिखाई नहीं देता। आवश्यकता इस बात की है कि पढ़ाई और पाठ्यक्रम दोनों में परिवर्तन लाया जाए। संस्थानों में मुख्य रूप से दो प्रकार के पाठ्यक्रम होने चाहिए –

1. पारंपरिक पद्धति पर आधारित :–

इसमें केवल उन्ही विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाए जो शिक्षक बनना चाहते है या शोध कार्यों में जाना चाहते है।

2. पूर्णतः व्यवहारिक :–

ऐसे पाठ्यक्रम चलाए जाए जिनकी बाजर में मांग है। विद्यार्थी को जैक ऑफ आल बनाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

संस्थानों में पाठ्यक्रम बनाने का दायित्व विशेषज्ञों को दिया जाना चाहिए जो किसी उत्कृष्ट विश्वविद्यालयों से जुड़ा है। मूल्योन्मुख शिक्षा में सिखाने के बजाए सीखने की प्रक्रिया पर अधिक बल दिया जाता है। उससे भी

अधिक जरूरी यह है कि वह सीखने की अनुभवात्मक प्रक्रिया से संबंधित है।

निष्कर्ष :-

उच्च शिक्षा की अकादमिक क्रियाओं एवं उनमें अपनाई जाने वाली आधुनिक तकनीकों के उचित समन्वय से शिक्षा के मूल उद्देश्यों को प्रभावपूर्ण तरीके से प्राप्त किया जा सकता है और साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में आ रही चुनौतियों का युक्तियुक्त समाधान किया जा सकता है।

आज हम वर्तमान की चुनौतियों और परिवर्तनों का सामना करने में स्वयं को असहाय पा रहे है। हमें उस मार्ग को अपनाना चाहिए जो प्रतियोगिता की ओर नहीं, सहयोग की ओर ले जाता है। अनबन की ओर नहीं सामंजस्य की ओर ले जाता हो, भोगवाद की ओर नहीं, संयम की ओर ले जाता हो। केवल शिक्षा ही यह कार्य कर सकती है।

सामाजिक सभ्यता की दिशा समाज में प्रचलित मूल्यों द्वारा तय होती है। इसलिए शिक्षा प्रणाली में मूल्यों पर बल देने की आवश्यकता है।

वर्तमान समय में शिक्षक को चाहिए कि सामाजिक परिवर्तन को देखते हुए उच्च शिक्षा में गुणवत्ता बनाए रखने के लिए केवल पुस्तक ज्ञान का माध्यम न बनाकर, नैतिक मूल्यों से अनुप्राणित कर आत्मसंयम, इन्द्रियनिग्रह का साधन बनाया जाए। ऐसी शिक्षा कामधेनु बनकर सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली और सुख समृद्धि तथा शांति का संचार करने वाली होगी।

छात्र–छात्राओं की वर्तमान पीढ़ी विद्यालय की चार दीवारी को पार कर एक ऐसे समाज से उन्मुख होगी, जो उन्मुक्त सामाजिक संबंधो, आर्थिक उदारीकरण, बदलते राजनीतिक समीकरणों, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय अनिवार्यताओं के कारण पूर्णतया रूपान्तरित हो चुका होगा। गरीब और वंचित वर्ग के सामान्य छात्र इन अवसरों का लाभ तब ही उठा सकते है जब समुचित शिक्षण प्रशिक्षण द्वारा उनकी नियोजनीयता बढ़ाई जाए। उनमें रोजगार संबंधी ऐसे आधारभूत कौशलों का विकास किया जाए जिनका प्रयोग कर वेतनभोगी रोजगार या स्वरोजगार में अपनी क्षमताओं एवं योग्यताओं के बल पर लाभ पूर्वक समायोजित हो सके।

विवेकानंद के अनुसार – सभी शिक्षाओं का अंतिम उद्देश्य मनुष्य का विकास करना है।

संदर्भ :-

From Internet –

1. वर्तमान में उच्च शिक्षा के सामने तमाम चुनौतियाँ – प्रो. कुमार
2. भारतीय उच्च शिक्षा के लिए चुनौतियाँ
3. समावेशी शिक्षा – वक्त की यही माँग – डॉ. ललित कुमार
4. भारत में शिक्षा का विकास
5. भारत की शिक्षा प्रणाली
6. भारतीय उच्च शिक्षा – एक कदम आगे
7. शिक्षा की दशा – दिशा बदलने का वक्त
8. उच्च शिक्षा के जरिए महिला पुरूष समानता संभव
9. इक्कीसवीं सदी – उच्च शिक्षा के बदलते आयाम

10. नैतिक मूल्य और वर्तमान शिक्षा
11. क्या उच्च शिक्षा में होगा सुधार?
12. कम चुनौतियाँ नहीं है ऑनलाईन शिक्षा में
13. शिक्षा व्यवस्था के सुधार के लिए आवश्यक है धन से अधिक धुन
14. भारत की उच्च शिक्षा व्यवस्था में सुधार संभव है
15. वर्तमान भारत में शिक्षा की दशा और दिशा
16. उच्च शिक्षा में गुणवत्ता और स्वायत्तता
17. भारतीय उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ
18. भारत में शिक्षा के उद्देश्यों का महत्व
19. भारतीय उच्च शिक्षा में मूल्य एवं गुणवत्ता – डॉ. नरेन्द्र पाल सिंह
20. उच्च शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लिए अभी बहुत कुछ और करना है।
21. भारत में उच्च शिक्षा – मुद्दें और चुनौतियाँ
22. उच्च शिक्षा में सुधार – चुनौतियाँ और समाधान – डॉ. उर्मिला पोरवाल
23. भारत में शिक्षा गुणवत्ता – चुनौतियाँ और समाधान
24. उच्च शिक्षा

A) **कुरूक्षेत्र** –

1. सितम्बर 2004– भारत में उच्च शिक्षा पर व्यय– एक दृष्टि– डॉ. विजय सिंह राघव, पृ. क्र. 15
2. सितम्बर 2006– भारतीय आधुनिक शिक्षा के बदलते आयाम– उमेश चन्द्र अग्रवाल, पृ. क्र. 7
3. मार्च 2017– समावेशी शिक्षा की दिशा में प्रयास –प्रमोद जोशी, पृ. क्र. 30

B) **योजना** –

1. जुलाई 1999– उच्च शिक्षा की समस्यायें– नवीन पंत, पृ. क्र. 15
2. मई 2001– 21वीं सदी में उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ –अधिकेश राय, पृ. क्र. 17
3. सितम्बर 2002 –
   i) मूल्योन्मुख शिक्षा का दर्शन – किरीट जोशी, पृ. क्र. 9
   ii) मूल्योन्मुख शिक्षा – शिक्षकों की भूमिका – स्वामी गोकुलानंद, पृ. क्र. 13
   iii) मूल्योन्मुख शिक्षा कैसी हो?, पृ. क्र. 16
   iv) मूल्योन्मुख शिक्षा – अनिल विल्सन, पृ. क्र. 17
   v) निजीकरण की ओर अग्रसर उच्च शिक्षा – उमेश चंद्र अग्रवाल, पृ. क्र. 20
4. सितम्बर 2004– भारत में शिक्षा का विस्तार– मधु शुक्ला, पृ. क्र. 13
5. सितम्बर 2009– भारत में उच्च शिक्षा– समस्यायें एवं समाधान– मुकेश चौरसिया, पृ. क्र. 27
6. जनवरी 2016– भारतीय शिक्षा– अतीत, वर्तमान और भविष्य– पवन कुमार शर्मा, पृ. क्र. 19

C) **पुस्तकें –**

1. डॉ. सतनाम सिंह (2008) – शिक्षा के मूल सिद्धांत और प्रमुख शिक्षा नीति, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
2. केदारनाथ सिंह यादव, रामजी यादव (2014) – भारत में आधुनिक शिक्षा का विकास, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
3. केदारनाथ सिंह यादव, रामजी यादव (2014) – भारतीय शिक्षा – इतिहास एवं समस्याएं, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
4. डॉ. सत्यप्रकाश पचौली (2014) – शिक्षा के आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

मो.नं. 9584895167

Email – kashyapmanju6@gmail.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 98-101

हिंदी साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति

–डॉ. माया पारस
सहायक प्राध्यापक (हिंदी), शासकीय महाविद्यालय राजनगर, जिला–अनूपपुर (मध्य प्रदेश)

प्रस्तावना :–

साहित्य 'सहित' शब्द से बना है। जीवन में साहित्य की पग–पग पर आवश्यकता पड़ती हैं, क्योंकि मानव का हित और जनकल्याण ही साहित्य का एकमात्र लक्ष्य है ,जिसमें साथ लेकर चलने की भावना निहित है।

टैगोर के अनुसार :– 'जहां वर्ण–वर्ण का, शब्द–शब्द का, भाषा–भाषा का, भाव–भाव का, अतीत एवं वर्तमान का समन्वय हो उसे साहित्य कहते हैं।'

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार :– 'ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है।'

प्रेमचंद ने तो साहित्य को 'जीवन की आलोचना और व्याख्या कहा है।'

जहां तक साहित्य का प्रश्न है उसका संबंध मानव हृदय के उन स्थाई भावों से हैं जो अनादि है। साहित्य, शिक्षा और संस्कृति यह तीनों व्यापक विषय हैं, इनमें जाति, धर्म और देश समाहित है। साहित्य सभ्यता का घोतक है। समाज को बदलने में शिक्षा व साहिसमाज को बदलने में शिक्षा व साहित्य का योग होता है। साहित्य संस्कृति कर्म, सांस्कृतिक कर्म, का संयोग होता है। किसी भी देश की उन्नति और उसका गौरव इन्हीं पर निर्भर करता है। साहित्य की ओट में ही काल विशेष की विशेषता छिपी रहती है। साहित्य कल्पना सर्जन का आधार है। साहित्य समाज का व्यवहार है। साहित्य अस्मिता की पहचान कराता है। साहित्य एक ऐसा दर्पण है जो हमारे संस्कृति और उसकी परंपराओं को जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसकी भाषाओं के क्रमिक विकास और साहित्य के प्रत्येक विधाओं को समझने में सहायता कराता है, जिसे समय–समय पर उद्घाटित भी करता है। सामूहिक, सामाजिक, व्यक्तिगत आधान कराता है। संस्कृतियाँ और समाज लगातार बदलते हैं।

शिक्षा जीवन में व्याप्त अंधकार को भी दूर कर समस्त चेतन प्राणी के जीवन में ज्ञान भंडार विकसित करते हुए उनके जीवनात्मक वातावरण में सामंजस्य स्थापित करती है। साहित्य इतना ही नहीं, बल्कि वह तो हमें आत्मनिर्भर करने में स्तंभ का काम करती है। शिक्षा और साहित्य के अनुसार ही हम चलते हैं। परिवर्तन की कामना, योग्यता शिक्षा का आधार है। साहित्य की आत्म चेतना का सहज व्यवहार है। जहां साहित्य विद्यमान है वहां की समाज शिक्षित होकर प्रगति के पथ पर सदैव अग्रसर होते रहता है। जिस प्रकार हमारे भारत की संस्कृति ही सबसे निराली है, अनोखी है। उसी प्रकार हमारे देश की साहित्य भी सबसे शक्तिशाली है। जहां पर व्यक्तिगत अथवा मानसिक स्वतंत्रता सदैव अबाधित रही है। मानव संस्कृति और मानव समाज की परिकल्पनाएँ।

संवेदनाएँ और संप्रेषण की असीमित संभावनाएँ। साहित्य सर्जन का, एक कालातीत आयाम होता है। सच्चे रचनात्मक साहित्य का यही पयाम होता है। हमारे देश के वर्तमान संस्कृति पर विभिन्न प्रकार के वादों का प्रभाव तो दिखाई देता ही है, परंतु इतना कुछ होते हुए भी हमारे भारत में एक सूत्रता का मंत्र अभी भी विद्वान है। साहित्य समाज को और संस्कृति को बदलता है इसलिए वह नए और अपूर्व– कल्पित जीवन में ढलता है। शिक्षा उन्मेष और आविष्कार समाज है। शिक्षा, साहित्य की शंखघोष आवाज है। साहित्य शिक्षा और संस्कृति समाज के तीन महत्वपूर्ण अंग ओजपूर्ण एवं विचारणीय है। भारत की समृद्ध साहित्यिक विरासत, साहित्य की विविधता ही ऐसे धरोहर है जिसके द्वारा हम अपने विचारों को प्रकट करते हैं। श्रेष्ठ साहित्य, समाज को बदलता नहीं, उसे मुक्त करता है, देश काल और मानवीय कृतियों को संस्कार युक्त करता है।

शिक्षा :–

हमारी संस्कृति का महत्वपूर्ण पहलू है 'शिक्षा' पर शिक्षा का वास्तविक अर्थ क्या है? अधिकांश विद्वानों का मानना है कि किताबें पढ़कर या विद्यालय जाकर कुछ सीखना ही शिक्षा है। पर शिक्षा क्या इतने तक ही सीमित है, नहीं।

'सीखने के अनुभव का नाम ही शिक्षा है।' प्रत्येक चेतन प्राणी जीवन के हर पल में कुछ न कुछ सीखते ही रहता है, और सीखने के उपरांत हमारे दिमाग में जो ज्ञान की रेखाएं खींचती हैं वहीं अनुभव तो शिक्षा है। लेकिन पढ़ाई–लिखाई का अनुभव, प्रयास और पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के तहत होता है, जिसका उद्देश्य किसी भी व्यक्ति के व्यवहार की पूर्व नियोजित अवधारणाओं में बदलाव लाना है। सामूहिक रूप से शिक्षा के लिए अपनाए गए विभिन्न आयाम, अनुभवों और उपलब्धियों को आगे बढ़ाने की व्यवस्थित प्रक्रिया को ही हम शिक्षा कह सकते हैं। वैदिक युग में मुख्य रूप से शिक्षा उच्च जाति का विशेष अधिकार थी। तथा गुरु और शिष्य के बीच अध्ययन एक आत्मीय रिश्ता या जिसे गुरु शिष्य परंपरा भी कहा जाता है। आमतौर पर शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी। नालंदा विश्वविद्यालय संपूर्ण एशिया में विद्वत्ता के उच्च स्तर के लिए प्रसिद्ध था। कला और शिक्षा के क्षेत्र में हर्ष के समय बहुत उन्नति हुई उन्होंने सभी स्तरों पर शिक्षा को बढ़ावा दिया।

शिक्षा मंदिरों और मठों में दी जाती थी, और उस समय उच्च शिक्षा तक्षशिला, उज्जैन, गया और नालंदा के विश्वविद्यालयों में दी जाती थी। परंतु इन संस्थाओं की शिक्षा का माध्यम हिंदी ना होकर संस्कृत थी। तथा इनमें प्रवेश भी मात्र उच्च जाति वालों को ही मिलती थी, जिसके कारण आम जनता धीरे–धीरे शिक्षा से ही वंचित होते गयी। पूर्व में शिक्षा एक व्यक्तिगत रुचि को दर्शाता था। इसका उद्देश्य सिर्फ शिष्य के व्यक्तित्व को विकसित करना था। परंतु आगे चलकर इसमें छात्र की संपूर्ण आत्मोउन्नति एवं स्वयं की पूर्ति हेतु शिक्षा के इस दृष्टिकोण को ही बदल दिया गया। जिसके तहत नये–नये तकनीक, नियम और कई तरह की प्रणाली अपनाई गई। जिसके आधार पर यह व्यक्ति की विकास का अर्थ उसके मन को प्रशिक्षित करना होता था जो कि ज्ञान को प्राप्त करने का यंत्र है। यही सिद्धांत चेतन प्राणी की रचनात्मक क्षमता को विकसित तथा समृद्ध बनाता है, इस प्रकार शिक्षा का मूल विषय मन ही था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की शिक्षा में आमूल–चूल परिवर्तन हुआ। व्यक्तिगत, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए तथा शिक्षा के एकीकृत कार्यक्रमों के लिए विभिन्न उपाय निर्धारित करना आवश्यक हो गया। शिक्षा के प्रसार के लिए यथोचित कदम उठाया गया। आर्थिक विभेदो

के खाई, क्षेत्रीय असंतुलन तथा सामाजिक अन्याय कहीं बढ़ता ना जाये इसी विचार से 'कोठारी शिक्षा आयोग' (सन 1964–66) लागू किया गया। जिसका मूल मंत्र था– सामाजिक परिवर्तन का एकमात्र साधन शिक्षा है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम 8 वर्षों की प्रारंभिक स्कूली शिक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था है इसी को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान के आर्टिकल 45 के तहत राज्यों को 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए अनिवार्य तथा निशुल्क शिक्षा प्रदान किए जाने के निर्देश दिया गया है।

माध्यमिक शिक्षा एक अत्यधिक शारीरिक परिवर्तन और पहचान के लिए उपयोगी है। माध्यमिक शिक्षा विशिष्ट अभिव्यक्ति और शक्ति के समय का घोतक है। साथ ही व्यावसायिक शिक्षा वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर एक अलग तरह की शिक्षा है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों को एक विशिष्ट रोजगार के लिए तैयार करना है जिसमें विभिन्न प्रकार की गतिविधियां शामिल है स्वतंत्रता के पश्चात देश के संसाधनों का एक बड़ा भाग शिक्षा में लगाया गया है अतः शैक्षणिक संस्थानों से कुशलता पूर्वक कार्य करने की अपेक्षा की जाती है स्वतंत्रता पश्चात भारत में शिक्षा की दिशा में सन 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक महत्वपूर्ण कदम थी।

संस्कृति :-

अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' लेटिन भाषा के श्कल्ट या कल्टस से लिया गया है, जिसका अर्थ है– जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना और पूजा करना। दूसरे शब्दों में कहें तो– किसी वस्तु को यहां तक संस्कारित और परिष्कृत करना कि इसका अंतिम उत्पाद हमारी प्रशंसा और सम्मान प्राप्त कर सकें। संस्कृति एक लगातार चलने व कभी न खत्म होने वाली प्रक्रिया है। प्रत्येक मनुष्य के पास शुरुआत से ही यह अनोखा गुण विद्यमान है, जिसे संस्कृति के नाम से जाना जाता है। क्योंकि संस्कृति जीवन जीने का एक तरीका है, इसलिए यह प्रत्येक जीवधारी की एक संस्कृति है, हर किसी के परिवार की एक संस्कृति है। और प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक देश की भी अपनी–अपनी एक संस्कृति होती है, हर भारतीय संस्कृति के इस अनोखेपन एवं इसके लक्षणों से परिचित होता है। संसार के विभिन्न देशों और क्षेत्रों में अनेक महान संस्कृतियों का विकास हुआ है। इनमें से बहुत से संस्कृति या तो लुप्त हो गई या उनका स्थान अन्य संस्कृतियों ने ले लिया है।

'भारत की संस्कृति उसकी जनता की सरलता और विद्वता की जीवित अभिव्यक्ति है।' संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है। यह हमारे साहित्य में, धार्मिक कार्यों में, मनोरंजन और आनंद प्राप्त करने के तरीकों में भी देखी जा सकती है। संस्कृति एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक देश से दूसरे देश में बदलती रहती है। इसका विकास एक स्थानीय क्षेत्रीय अथवा राष्ट्रीय संदर्भ में विद्यमान ऐतिहासिक प्रक्रिया पर आधारित होता है।

उपसंहार :-

'साहित्य समाज का दर्पण होता है' वही संस्कृति भी किसी समाज की पहचान होती है। यह उसके रहन–सहन एवं खानपान की विधियों, व्यवहार प्रतिमानों, रीति–रिवाज, आदर्श–विश्वास और मूल्यों की विशिष्ट रूप में जीवित रहती है। तब किसी समाज की शिक्षा पर उसकी संस्कृति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। शिक्षा स्कूल की अपेक्षा सूक्ष्म प्राप्ति की ओर अधिक झुकी हुई होती है। और जिस समाज की संस्कृति भौतिकवादी होती है, उसकी शिक्षा प्रतियोगिता पर आधारित होती है। समाजशास्त्री आधारों में सबसे अधिक प्रभावशाली तत्व समाज विशेष की संस्कृति होती है। संस्कृति एक बहुत व्यापक संप्रत्य है यह किसी समाज की साहित्य का संपूर्ण जीवन

शैली की घोतक है। इसमें समाज विशेष समाहित होते हैं और प्रत्येक समाज अपने आने वाली पीढ़ी को इन सब में प्रशिक्षित कर देना चाहता है। और तदुपरांत शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करता है इस प्रकार स्पष्ट है कि –किसी समाज की साहित्य, किसी समाज की संस्कृति उस समाज की शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित करती है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. हिंदी पाथेय प्र. क्र. 54
2. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां, 'जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल' पृ. क्र. 03
3. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, 'डॉ. गणपति चंद्रगुप्त' प्र. क्र. 35
4. इंटरनेट माध्यम।
5. स्वयं विवेक पर आधारित।

मो. नं. 9111445268

ईमेल –mayaparas40@gmail.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 102-104

बाल साहित्य और शिक्षा पद्धति

–मीनाक्षी आहुजा
शोधार्थी, विभाग – हिन्दी, टांटिया यूनिवर्सिटी, श्रीगंगानगर (राज.), पिन कोड – 335001

आज चकाचौंध के युग में, आधुनिकता की होड़ में बालक मोबाइल के समीप हो गया है और साहित्य से उसका दूरी का नाता भी नहीं रहा। इसका कारण कोई एक नहीं है, बल्कि इसके पीछे कारणों की एक लम्बी सूची है। यदि उन पर विस्तार से मंथन करें तो सबसे बड़ा कारण बाजारवाद, माता–पिता की व्यस्तता, एकल परिवार और मोबाइल या गैजेटस की उपलब्धता है। एक और कारण हमारी भारतीय शिक्षा पद्धति में बदलाव आना भी है। पिछले 25–30 वर्षों में शिक्षा और समाज बहुत बड़े बदलाव से गुजरे हैं। सवाल यह उठता है कि क्या यह बदलाव बाल साहित्य के लिये हितकर सिद्ध हुए हैं या घातक ? इस बिन्दू को दोनों नजरियों से देखने का प्रयास करते हैं।

शिक्षा और समाज में बदलाव के कारण बच्चा साहित्य से दूर हो गया है। उसका सारा समय मोबाइल, लैपटॉप, कम्प्यूटर पर बीत रहा है। वह बाल–साहित्य से तो कट ही गया है, साथ ही साथ वह खेल–कूद, सामाजिक रिश्तों, मेल–जोल व नैतिक मूल्यों से भी दूर हो रहा है। यह दूरी उसके बाल–मन को समय से पहले परिपक्व बना रही है। वह सामाजिक रूप से आभासी दुनिया में व्यस्त रहने लगा है। वह शारीरिक रूप से शिथिल व कमजोर हो रहा है। वह एकल परिवारों में रहने के कारण नैतिक मूल्यों व संस्कारों से भी पोषित नहीं हो पा रहा है। उसकी वृद्धि व विकास सकारात्मक दिशा की ओर अग्रसर है, इस बात में संशय है।

बालक कोमल मन का स्वामी होता है। शब्दों का प्रभाव उसके मन पर बहुत गहरा पड़ता है। भाषा उसके शब्द–ज्ञान को ही नहीं वरन् उसकी अभिव्यक्ति को भी समृद्ध करती है। यह कटु सत्य है कि वह आज आभासी दुनियां की खिचड़ी भाषा सुन रहा है, उसी में अभिव्यक्ति भी दे रहा है। ज्यादातर कार्य तो चित्र, इमोजी या कार्टून चरित्रों के माध्यम से संदेश भेजकर किये जाते हैं। बालक में भाषा का विकास बाल–साहित्य द्वारा जितनी कुशलता से हो सकता है, उतना किसी और माध्यम से नहीं हो सकता। इसके विपरीत आज की शिक्षा ऑडियो–वीडियो या स्मार्ट टी.वी. या स्मार्ट क्लास रूम की तर्ज पर पढ़ने–पढ़ाने और सिखाने पर जोर देती है। बच्चा सीख तो लेगा लेकिन अभिव्यक्ति कैसे करेगा? बालक अभिव्यक्ति या तो लिखकर कर सकता है या बोलकर। हमारी शिक्षा पद्धति परीक्षा आधारित पद्धति है, जिसमें लिखने से अंक मिलते हैं। यहां गम्भीर समस्या यह देखने में आ रही है कि बालक समझ तो चुका, लेकिन उस ज्ञान को लिखे कैसे? अभिव्यक्त कैसे करे? यह चुनौती आज सभी बच्चों के सामने है। यह विकराल रूप इसलिये ले चुकी है कि बच्चे बाल–साहित्य से दूर हो चुके हैं। उनकी भाषा पर पकड़ कमजोर पड़ने लगी है। अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा मार्ग लेखन है, जिससे आज

की शिक्षा पद्धति बालक को दूर कर रही है।

जहां तक बाल–साहित्य का सवाल है, बहुत बड़ी मात्रा में बाल–साहित्य का प्रकाशन, बाल–साहित्य का प्रसार और उस पर चिंतन हो रहा है। बाल–साहित्य ने बालकों के सर्वांगीण विकास में अग्रणी भूमिका निभाई है। आज की आभासी दुनिया और बाल–साहित्य रचने वालों में एक अदृश्य संघर्ष निरन्तर चल रहा है। बाल–साहित्य एक सुंदर सरल विषय है, लेकिन जटिल भी है। वह इसलिये कि बाल मनोविज्ञान को समझ कर लेखन करना उतना भी सरल नहीं जितना दिखता है। विशेषकर तब जब इसके लिए पाठक जुटाना एक संघर्षमय कार्य बन गया हो। संघर्ष यह है कि बालक पाठ्यपुस्तकों के अलावा कुछ भी पढ़ना नहीं चाहता। हालांकि पाठ्य पुस्तकें पढ़ना भी उसका शौक नहीं, मजबूरी बन गया है। शिक्षा व्यवस्था पाठ्यपुस्तक केन्द्रित है और अध्यापक व अभिभावकों का सारा प्रयास उसी के इर्द–गिर्द ही होता है। असल में पाठ्यपुस्तक को शिक्षा व्यवस्था की रीढ़ बना दिया गया है। यह वह चीज होती है, जिसे पढ़ने का मन नहीं कर रहा, तो भी पढ़नी ही पढ़ेगी क्योंकि परीक्षा में प्रश्न इसी में से आने हैं।

अब दूसरी तरफ दुनिया भर में फैला हुआ अनुभव–जगत, ज्ञान, खेलकूद और नानी–दादी की कहानियाँ, इन सबका कोई औचित्य नहीं रहा। क्या साहित्य, अनुभव और समाज का कोई अस्तित्व बचा है या यह सब बीते जमाने की बातें बनकर रह गई हैं? बच्चों के लिए ही नहीं, बड़ों के लिए भी पुस्तक पढ़ने का समय निकालना दूभर हो गया है। तब यह बाल–साहित्य कैसा और क्यों रचा जाए, जब यह किसी सार्थक उर्वरा भूमि का कार्य न कर सके, जिसमें बालमन में संस्कार और संस्कृति के बीज बोये जा सकें।

1984–85 के बाद से तो यह कतई मानने लायक बात नहीं कि सरकार ने बाल साहित्य की उपेक्षा की है। बाल–साहित्य की खरीद आज हर विद्यालय में अनिवार्य है, जिसका एक निर्धारित बजट हर वर्ष आता है। यह खरीद की भी जाती है। यथार्थ में, भले ही यह चन्द अलमारियों में बन्द है या कहीं–कहीं खुलकर प्रयोग भी किया जा रहा है। यह एक बहुत बड़े परिवर्तन का संकेत है। बाल साहित्य का उद्देश्य आनंद देना ही नहीं, बल्कि बालक की भाषा पर पकड़ बनाना भी है। साथ ही साथ यह बालक में अच्छी आदतों, नैतिकता के बीज बोने का कार्य भी करती है। अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम लिखना, वह इनसे सुधरता है। वास्तव में बाल–साहित्य से भाषा का स्वास्थ्य जाँचना आसान हो जाता है। साहित्य बालकों के लिए कल्पना के द्वार खोलता है। मौलिक सृजन की सीढ़ी बनता है – बाल साहित्य पढ़ने की यह आदत छात्र जीवन से शुरु होकर जीवन पर्यन्त बनी रहती है तो व्यक्ति अनुभव के धरातल पर नित नवीन अवधारणाओं, विचारों और चेतना से पोषित होता है। वह ज्ञान का संचय ही नहीं करता, बल्कि धीरे–धीरे श्रेष्ठ आचरण की ओर अग्रसर भी होने लगता है। बाल–साहित्य वह कार्य करता है, जो शिक्षा के सहयोगी बनकर उन लक्ष्यों की प्राप्ति करवाता है, जिन्हें प्राप्त करने के लिये अभिभावक, बालक और अध्यापक दिन–रात मेहनत कर रहे हैं। बाल साहित्य की भूमिका इतनी दृढ़ और सूक्ष्म है कि बाल मन की नींव को सुविचारों और मौलिकता से पुष्ट करती है और बालक को सृजनात्मकता की ओर मोड़ती है।

अन्ततः यह कहना कि शिक्षा और बाल साहित्य दो अलग–अलग धाराओं में बह रही हैं, सर्वथा अनुचित होगा, लेकिन अभी इनमें संघर्ष जारी है। यह संघर्ष इनके सामंजस्य में निरन्तरता का द्योतक है। इस विषय में अभी शोध की आवश्यकता बनी हुई है। मेरे शोध का विषय भी बाल साहित्य से जुड़ा है। बाल साहित्य में बच्चों

की अभिरूचि जागृत करने का बीड़ा अभिभावकों, शिक्षकों और शिक्षा जगत को उठाना होगा, तभी जाकर बच्चे वास्तविक दुनिया में फिर से लौट पाऐंगें। उनकी अनुभूति का, सृजन का, मौलिकता का, सामाजिकता का स्तर उन्नत व विस्तृत होगा। यह प्रयास शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करेंगें और बालक का भी सर्वांगीण विकास होगा।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. एकलव्य प्रकाशन 'चकमक', फरवरी 2008
2. शिक्षा में बच्चों का साहित्य, 2020 जर्नल प्रशस्ति पत्र रिपोर्ट

E-mail : meenakshi.ahuja76@gmail.com

मो. : 9413372488

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 105-109

तुलनात्मक साहित्य का अर्थ परिभाषा एवं स्वरूप

–मेहराजबेगम सैय्यद
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कर्नाटक राज्य अक्कमहादेवी महिला विश्वविद्यालय, विजयपुर–586108 .

सारांश :–
तुलनात्मक साहित्य नाम से ही स्पष्ट होता है– साहित्य का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करना। तुलनात्मक साहित्य शैक्षणिक जगत् की बहु प्रचलित पद्धति है। तुलना के माध्यम से अनेक भाषाओं में लिखे साहित्य को जानना, समझना तथा उसका समन्वय करना ही तुलनात्मक अध्ययन है। इतना ही नहीं, दो या दो से अधिक वस्तुओं के सामान्य एवं असमान तत्वों को साथ रखकर परीक्षित करना। आज विश्व स्तर पर अपने विकसित रूप में उपस्थित है। ऐसी सैद्धान्तिकी विश्व की तमाम भाषाओं के साथ ही स्थानीय भाषाओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के दौरान आने वाले कठिनाइयों का प्रयास किया जा रहा है। इस कारण उसका सदा विकासशील होना अनिवार्य है। आज का दौर तुलनात्मक साहित्य का है। पूरा विश्व एक भाषा से दूसरे भाषा को समझने का प्रयास कर रहा है। ऐसे ही हिन्दी साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन पर काफी महत्व दिया जा रहा है। भारत बहु भाषा, बहु संस्कृतियों का देश है। इसलिए 'विविधता में एकता' इस देश की खूबी है।

संकेताक्षर :– तुलनात्मक साहित्य, अर्थ, परिभाषा, स्वरूप।

तुलनात्मक साहित्य का अर्थ :–

तुलना करना मानव की सहज प्रवृत्ति है। तुलना विकसित मस्तिष्क की पिपासा से परिनीत ज्ञान–यात्रा है। मानक हिंदी कोश में 'तुलना' शब्द के अर्थ दिए हैं– "1) काँटे, तराजू आदि पर रखकर तोला जाना। 2) दो या अधिक वस्तुओं के गुण, मान आदि के एक– दूसरे से घटा या बढ़कर होने का विचार। 3) तारतत्म, क बराबरी, समता, उपमा या गिनती।" अंग्रेजी में तुलना शब्द के लिए 'ब्वउचंतम' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'तुलनात्मक साहित्य' को अंग्रेजी में 'Comparative Literature' शाब्दिक अनुवाद है। 'तुलनात्मक' शब्द का अर्थ है कि जिसमें दो या कई चीजों के गुणों की समानता और असमानता दिखलाना हो या किसी के साथ तुलना करते हुए विचार किया गया हो।

विश्वकोशात्मक ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में तुलना शब्द को विश्लेषित करते हुए लिखा है–"To compare, to match, to represent, as similar, to mark the differences of, to bringing together for the purpose of nothing these-comparison-compareble conditions or character the action or an act of nothing similarities and differences-comparisons may sometimes illustrate but prove nothing." (तुलना किन्ही दो वस्तुओं में अर्थ सामान गुणों एवं अंतरों का उद्घाटन या प्रस्तुतीकरण, अथवा इन्हीं विशेषताओं का संयोजना।

तुलना कभी कभी आरंभ में संभावनापूर्ण लग सकती है पर अंततः उससे कुछ भी सिद्ध न हो सके यह भी होता है।) भाषा शब्दकोश में तुलना शब्द का अर्थ दिया है,"समानता या तुल्य तुल्यता करना, बराबरी करना, तौल होना, समता करना, मिलन करना।" तुलना करते समय किन्हीं दो वस्तुओं में शत–प्रतिशत समानता संभव नहीं है, अतः तुलना में कुछ विषमता, असमानता एवं विपरीतता भी सहज आती है। वैषम्यमूलक अध्ययन भी तुलनात्मक अध्ययन का एक अंग है। तुलनात्मक अध्ययन के अंतर्गत किन्ही दो समकालीन या विषमकालीन समान गुणात्मक प्रतीत होनेवाले कृतीयों का अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन दो युगों, दो भाषाओं एवं दो व्यक्तियों का हो सकता है। यह अध्ययन गंभीर, तटस्थ, वैज्ञानिक, सांगोपांग एवं निष्कर्ष मूलक होना चाहिए। प्रकृति का नियम है कि पृथ्वी पर जितने भी वस्तुएँ है, एक–दूसरे जैसे समान नहीं होते है। किंतु वह एक–दूसरे से इतने भी भिन्न नहीं होती है। उस वस्तु का एक न एक गुण समान जरूर होता है। इन समान गुणों का तलाश ही तुलना के माध्यम से होता है।

तुलनात्मक साहित्य की परिभाषा :–

तुलना मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यही स्वाभाविक प्रकृति जब साहित्य के अध्ययन में प्रयुक्त की जाती है, तब साहित्य के अध्ययन की तुलनात्मक पद्धति का आरंभ होता है। किंतु, साहित्य का अध्ययन मानव समाज की चेतना एवं संवेदनाओं का अध्ययन भी होता है। तुलनात्मक साहित्य को व्याख्यायित करने का प्रत्येक पीढ़ी अपने ढंग से प्रयास करती है, इसी कारण यूरोप से लेकर आफ्रिका तक और एशिया से लेकर भारत की क्षेत्रीय भाषाओं तक के विद्वानों ने विभिन्न समयों में तुलनात्मक साहित्य की कई बार एक ही समय में विभिन्न व्याख्याएँ की है, जिन्हें आलोचनात्मक ढंग से निम्न रूप में देखा जा सकता है।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित तुलनात्मक साहित्य की परिभाषाएँ :–

1) प्रसिद्ध विश्वकोशकार वेबस्टर :–

प्रसिद्ध विश्वकोशकार वेबस्टर ने तुलना के अर्थ और आशय को बहुत विश्वसनिय ढंग से स्पष्ट किया है–""दो या दो से अधिक वस्तुओं के समान एवं असमान तत्वों को ज्ञात करने के लिए उन्हें साथ रखकर परीक्षित करना। दो वस्तुओं की असमानता की मात्रा का पता लगाने के लिए भी तुलना की जाती है। दो वस्तुओं के साम्य–वैषम्य की निष्पक्ष जाँच के लिए तथा निष्कर्ष प्राप्ति के लिएभी तुलना की जाती है।"" प्रस्तुत परिभाषा तुलनात्मक तुलना के यथार्थ परीक्षण एवं निष्पक्ष जाँच को महत्व देती है तथा तुलना को पक्ष की ओर इंगित करती है।

2) विश्वकोशात्मक ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी :–

विश्वकोशात्मक ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में तुलना के विषय में लिखा है– "तुलना, "कीन्हीं दो वस्तुओं में समान गुणों एवं अंतरों का उद्‌घाटन या प्रस्तुतीकरण अथवा इन्हीं विशेषताओं का संयोजन है। तुलना कभी–कभी आरंभ में संभावनापूर्ण लग सकती है। पर अंततः उसमें कुछ भी सिद्ध न हो सके यह भी होता है।"" उपर्युक्त परिभाषा तुलना–प्रक्रिया को स्पष्ट करती है। तुलना में वस्तुओं का साम्य–वैषम्य मिलना निश्चित नहीं है।

भारतीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित तुलनात्मक साहित्य की परिभाषाएँ :–

1) डॉ. नगेंद्र :–

डॉ नगेंद्र तुलनात्मक साहित्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "तुलनात्मक साहित्य जैसे नाम से ही स्पष्ट

है साहित्य का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करना है। तुलनात्मक साहित्य एक प्रकार का साहित्यिक अध्ययन है जो अनेक भाषाओं को आधार मानकर चलना है और जिसका उद्देश्य होता है, अनेकता में एकता का संधान।"" प्रस्तुत परिभाषा परिवेश की विविधता में एकता पर प्रकाश डालती है अतः साहित्य में समन्वय की भावना निहित है।

उपर्युक्त तुलनात्मक साहित्य की परिभाषाओं को देखने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलनात्मक साहित्य देश–काल की सीमाओं से मुक्त विश्व साहित्य की अवधारणा को प्रबल बनाने का कार्य करता है। तुलनात्मक साहित्य राजनीतिक, भौगोलिक सीमाओं से मुक्त है। तुलनात्मक साहित्य में भिन्न साहित्यिक भाषाओं के साहित्य का अध्ययन कर किस काल में उस भिन्न भाषिक साहित्य की प्रवृत्तियों में किस प्रकार का बदलाव एक–दूसरे के प्रभाव से आ रहा था, यह भी स्पष्ट होता है।

तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप :-

तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में प्रत्येक अध्याय पृष्ठ में तुलनात्मक होने की आवश्यकता नहीं पर उसकी दृष्टि, उद्देश्य तथा कार्यान्वयन को तुलनात्मक होना चाहिए। यहां एक से अधिक से तात्पर्य एक से अधिक से भाषाओं, रचनाकारों, कृतियों, युगों, प्रवृत्तियों से है। भाषा, देश, युग, रचनाकार, कृति, प्रवृत्ति के अनुसार तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन के व्यापक तथा सीमित स्वरूप में अंतर आता है। तुलना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. सावित्री सिन्हा ने लिखा है, "किन्ही दो वस्तुओं में शत–प्रतिशत तुलना–समानता सहज नहीं है। अतः उसमें कुछ विषमता असमानता एवं विपरितता भी सहज हो जाती है। वैषम्यमूलक अध्ययन भी तुलनात्मक शोध का एक अंग है। परंतु इससे साम्यमूलक ज्ञानवर्धन न होकर वैषम्यमूलक ज्ञानवर्धन ही होता है।"" तुलनात्मक साहित्य का अर्थ न तो केवल वैश्विक होकर रह जाना है और न ही स्थानीयता को हिकारता की दृष्टि से देखना है, अपितु राष्ट्रीयता, अंतर्राष्ट्रीयता एवं स्थानीयता के बीच की कड़ी के रूप में तुलनात्मक साहित्य का स्वरूप स्थित है। यह न तो साहित्य अध्ययन की कई विधाओं के बेअनुपात मिश्रण से बना है और ना यह सिद्धांतविहीन पद्धति है। यह न तो सिद्धांतरहित व्यावहारिक आलोचना है और न व्यवहार रहित सैद्धांतिक आलोचना, अपितु विश्व एवं राष्ट्रीय स्तर पर इसके सैद्धांतिकी का विकास हो रहा है और कुछ अर्थों में हो चुका है।

तुलनात्मक साहित्य के स्वरूप को लेकर विभिन्न दृष्टिकोण सामने आए, जिन्हें सुचारू विचार शाखा के रूप में 'अमेरिकी शाखा', 'पेरिस–जर्मन शाखा' और 'रूसी शाखा' कहा जाता है। तुलनात्मक साहित्य की यह तीन शाखाएँ अपने विचारों के कारण वैश्विक स्तर पर अपनी विचारधारा के रूप में सामने आकर तुलनात्मक साहित्य की वैचारिकी को पुष्ट करने का कार्य किया, इनके द्वारा स्थापित मान्यताओं को सार यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

इनमें सर्वप्रथम तुलनात्मक साहित्य की अमेरिकी शाखा आती है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद इसका उदय हुआ, जिसमें जर्मनी से गए विद्वान सम्मिलित थे। इनके मान्यताओं के अनुसार तुलनात्मक साहित्य एक स्वतंत्र ज्ञान शाखा है, शाखाओं से साहित्य के संबंधों स्वीकार करना एवं दर्शनीय है। इस प्रक्रिया को वे साहित्यालोचना का प्रमुख अंग मानते हुए इसके अंतर्गत साहित्य की सादृश्यता, शैली पक्ष, विधा की विकास प्रक्रिया, साहित्य के उद्देश्य, साहित्यिक आंदोलन तथा उनकी परंपरा पर विचार करते हैं। इसे वे तुलनात्मक आलोचना से भी जोड़कर

देखते हैं, जिसमें साहित्य की आलोचना को एक महत्वपूर्ण अंग मात्र मानते हैं। तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन को वे साहित्योंतिहास की संपूर्ण विकास प्रक्रिया का अंग मानते हुए अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करने के पक्ष में हैं, किंतु वे आलोचना भाँति निर्णयात्मक आलोचना से सख्त विरोध है। इसी प्रकार अमरिकी शाखा सौंदर्यशास्त्र को दर्शन का विषय मानते हुए उसका तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में उपयोग करने से परहेज करती है, यह इसकी विशेषता और सीमा दोनों है।

'जर्मनी–फ्रांसीसी शाखा' अमरिकी शाखा की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक थी, क्योंकि इसमें सिद्धांत से अधिक व्यावहारिक पक्ष पर बल देते हुए तुलनात्मक साहित्य को विविध साहित्यों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन माना गया, अथवा अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक संबंधों का अंग बना। यह अधिक व्यापक दृष्टिकोण है। जर्मन–फ्रांसीसी शाखा तुलनात्मक साहित्य को पारंपरिक ढंग से स्थानांतरण की प्रणाली, अधिग्रहण, सफलता तथा प्रभाव और आधारभूत सूत्रों की खोज करता है। इसके साथ ही वह एक साहित्यिक वस्तु और रूप एक देश या भाषा से दूसरे देश या भाषा से कैसे यात्रा करते हैं, इसकी खोजबीन करने पर विश्वास करता है। यह प्रक्रिया इसे न केवल दो भाषाओं के साहित्य तक सीमित करती है, अपितु उसे विश्व साहित्यिक पटल पर अध्ययन करने के लिए प्रेरित करती है। आरंभिक दौर में तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन में आलोचना को बदलकर केवल दस्तावेजी विश्लेषण पर बल दिया जाता था, जिसमें तथ्यों पर अधिक ध्यान देने पर जोर था। बाद के समय में इस प्रवृत्ति को दूर कर साम्य या वैषम्यमूलक तुलना तथा प्रभाव सूत्रों के अध्ययन में अध्ययन का उपयोग करते हुए नये प्रतिमान का विकास करने का प्रयास किया।

इस अध्ययन में उन्होंने सौंदर्यशास्त्रीय प्रतिमानों को भी समाविष्ट किया। संश्लेषणत्मक अध्ययन को भी इस शाखा में काफी विवाद के बाद स्वीकार किया गया, जो बाद में इस शाखा की अदिव्तीय विश्लेषण के रूप में उभरकर आयी, जिसका विकास द्वि–आधारी भारत जैसे बहुभाषिक देश के लिए अत्यंत उपयोगी पद्धति है। जर्मन–फ्रांसीसी शाखा साहित्य तथा ज्ञान की दूसरी शाखाओं के संबंधों को कोई महत्व नहीं देती, किंतु द्वि–आधारी पद्धति में साहित्य के संबंधों पर अधिक बल दिया जाता है, जो इस पद्धति को स्वतंत्र ज्ञान शाखा के रूप में स्थापित करने का ही एक प्रयास है।

एक समय तक तुलनात्मक साहित्य को दो कृतियों के साहित्य में निहित साम्य–वैषम्य को दिखानेवाला अध्ययन मात्र माना जाता था, जो संकुचित दृष्टि का परिचायक है। सैद्धान्तिक स्तर पर विचार किया जाए तो तुलनात्मक साहित्य अध्ययन का संबंध आंतरिक परिपेक्ष को उजागर करना भी होता है। आवश्यक नहीं कि यह दो भाषाओं के साहित्य को ही लेकर की जाए, एक ही भाषा की दो कृतियों या दो से अधिक भाषा की कृतियों के संदर्भ भी इसमें आ सकते हैं। इसकी परिधि तय कर पाना असंभव कार्य है।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार से तुलनात्मक साहित्य अध्ययन पद्धति अपने स्वरूप में अत्यंत व्यापक होने के साथ ही विकासशील पद्धति भी है। इसके स्वरूप में युगानुरूप व्यापकता आती गई और आ रही है। वर्तमान समय में समाज विज्ञान आदि का आधार लेने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, जिसमें रचनाओं की ऐतिहासिकता, सामाजिक संबंध्दता आदि को अधिक सफलतापूर्वक व्याख्यायित करने में सहायता मिल रही है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. मानक हिन्दी कोश (खंड–2) –संपादक – रामचन्द्र वर्मा – पृष्ठ संख्या–565
2. The Oxford English Dictionry, Second Edition, Volume -3rd Page No-592.
3. सं. डॉ. रामशरण शुक्ल 'रसल', भाषा शब्दकोश, पृष्ठ संख्या–749.
4. इंद्रनाथ चौधरी, 'तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिपेक्ष', पृष्ठ संख्या–20.
5. डॉ. रविन्द्रकुमार जैन, 'साहित्यिक अनुसंधान के आयाम', पृष्ठ संख्या–17.
6. सं. नगेन्द्र, 'तुलनात्मक साहित्य', पृष्ठ संख्या 81.
7. डॉ. सावित्री सिन्हा, 'साहित्यिक अनुसंधान के आयाम', पृष्ठ संख्या 47.

सम्पर्क 9663626625

Email&meharajsaiyyad93@gmail.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 110-113

हिन्दी और उर्दू ग़ज़ल में समाजिक और राजनैतिक परिदृश्य

(फैज़ अहमद फैज़ और दुष्यंतकुमार की गज़ल के विशेष संदर्भ में)

–मेराज अहमद खाँ
शोधछात्र, हिन्दी विभाग टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान

Abstract :-

फैज़ अहमद फैज़ और दुष्यंत कुमार हिन्दी और उर्दू के न सिर्फ मशहूर बल्कि हिन्दी और उर्दू गज़ल को एक नयी दिशा और दशा देने वाले अदभुत ग़ज़ल विधा में लेखन कर के इन्होने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनायी है। दोनो कवि न केवल भारत–पाक के प्रसिद्ध कवि है बल्कि दुनिया भर के साहित्य प्रेमियों में इनका नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। ग़ज़ल विद्या के मध्यम से इन दोनो ने सामाजिक राजनैतिक परिदृश्य की सशक्त आभिव्यक्ति कि है दोनो ने आम जनता के लिये लिखा है। सामाजिक, राजनैतिक, प्रेम, कुण्डा, भ्रष्टाचार, देश प्रेम आपातकालीन परिस्थिति आदि कई विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है।

भूमिका :–

फैज़ अहमद फैज़ सेसी प्रतिभा के शायर थे जो जीवन की वास्तविकता को वास्तविक नजरिये से देखते थे उन्होने अपने समय में सामाजिक बुराइयो का खुले आम विरोध किया। फैज़ ने अपनी ग़ज़लो और नज्मों के माध्यम से राजनैतिक भ्रष्टाचार की बुनियादे हिला दी। फैज़ ने आधुनिक उर्दू ग़ज़ल को एक नई ऊचाई दी। 1951–1955 की जेल में कैद के दौरान लिखी हुयी उनकी कविताए व ग़ज़ले बाद में बहुत लाकप्रिय हुयी। इन रचनाओ को ''दस्तेसबा'' (हवा का हाथ) तथा ''जिन्दाननामा'' (कारावास का व्योरा) नाम से प्रकाशित किया गया इनमे उस समय के शासक के विरोध में काफी रचनाए सम्मिलित है। पिछले दिनों फ़ैज की ''लाजिम है हम भी देखेगे'' नज्म का देश भर में काफी चर्चा रहा। ऐसा पहली बार हुआ है कि जब किसी कवि की किसी रचना के लिए IIT कानपुर जैसी संस्कृति ने एक कमेटी बनाई हो। एक इंकलाबी शायर की हैसियत से फैज़ कहते है।

बोल की लब आज़ाद है तेरे,
बेल ज़बा अब तक है तेरे।
तेरा सुतवा जिस्म है तेरा,
बोल कि जा अब तक है तेरी।।

वैसे तो किसी रचनाकार को उसकी रचनाओ के लिए याद किया जाता है। परन्तु फैज़ शायरी और अपने व्याक्तित्व दोनो के लिए याद किये जाते है। आज आजादी को भले ही सात दशक से अधिक समय हो गया

है परन्तु फैज़ का ये शेर उतना ही नया लगता है जितना देश से अंग्रेजों के जाने के कुछ सालों बाद लगता था। जिस सवेरे की प्रतीक्षा देशवासियों को आजादी के बाद बरासों से है वो नही आती दिखती तो फैज़ याद आते है।

ये दाग़ दाग़ उजाला ये शब गज़ीदा सहर,
वे इन्तिजार थ जिसका ये वो सुबह तो नहीं।

फैज़ की गज़ल व शायरी के मशहूर होने की वजह उनकी लेखनी में जीवन के उतार चढ़ाव नाइन्साफी के खिलाफ विद्रोह, एक क्राति एक आग। फैज़ के शेर हर भूख से मरते इन्सान की मौत के बाद याद आते है। हर किसान की आत्म हत्या के बाद याद आते है।

ळर रग–ए खूं के फिर चराग़ां हो,
समने फिर वो बेनकाब आए।
कर रह था गम ए जहाँ का हिसाब,
आज तुम याद बे हिसाब आए।

फैज़ की रचनाएँ में वो विद्रोह है, जो बंदिशो को तोडने इच्छा शक्ति है भ्रष्ट शासन पर जो कटाक्ष है वो सत्ताधारियों को भले बुरा लगे परन्तु आम जनता को जरुर अपनी लगती है।

निसार मै तेरी गलियों पे ए वतन के जहाँ
चली है रस्म कि कोई ना सर उठा के चले।
जो कोई चाहने वाला तवाफ को निकले
नजर चुरा के चले, जिस्मों जाँ बचा के चले।

फैज़ अहमद फैज़ न केवल इनकिलाबी शायर ळो न केवल जमाजियाती (सौन्दर्य के शयार थे फैज़ एक ऐसे कलमकार थे जो जीवन के हर रंग की अक्कासी करते है।

और भी ग़म है जमाने में मोहब्बत के सिवा।
राहते और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा।।

फैज़ के यहाँ हुस्न इष्क, है तो एक क्रान्तिकारी सोच भी है उनकी कविताओं में, गरीबो, मजदूरों की दबी कुचाली आवाजे भी है।

कही कही फैज़ एक ''रुमानी शायार'' की भूमिका मे नज़र आते है।

दोनो जहान तेरी मोहब्बत में हार के,
वो जा रहा है कोई शबे ग़म गुजार के।
वीराँ है मयकदा खुम ओ सागर उदास हैं,
तुम क्या गए कि रुठ गए दिन बहार के।

फैज़ के निर्भीक कलमकार रहे हैं उनका निडर रवैया उन्हे अन्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करता है लेकिन उनके अपने मुल्क पाकिस्तान में उनके इस बेबाक व्यक्तित्व के लिए कोई जगह नही थी। परिणाम स्वरुप उन्हे जेल भ जाना पड़ा निर्वासन का दंष भी झेलना पड़ा जेल की काल कोठरी निर्वासन की पीड़ा भी फैज़ को तोड़ नही सकी। इसके बाद वे अपनी अभिव्यक्तियों में और मुखर होते गये। फैज़ अपने प्रगतीशील और वामपंथी

विचारों के साथ चलते रहे। एक अन्तराष्ट्रीय पत्रिका लोटस के साथ फैज़ बहुत लम्बे समय तक जुड़े रहे।

आजादी के बाद विभाजन के समय वे लाहौर चले गए वहाँ लियाकत अली खाँ के तख्तापलट का इन पर आरोप लगा और जेल भी गए।

उसके बाद फैज़ 1955 मे रिहा हुए 1984 में उनका देहान्त हुआ और उनका आखरी संग्रह ''गुबार–ए–अययाम'' था जो उनकी मृत्यु के पश्चात प्रकाशित हो सका।

गाह जलती रही गाह बुझती रही।
शम–ए–ग़म झिलमिलाती रही रात भर।।
कोई खुशबू बदलती रही पैरेहन।
कोई तस्वीर गाती रही रात भर।।

बहुमुखी संपन्न व्यक्तित्व के धनी दुष्यंतकुमार महत्वपूर्ण कवि ओर गलकार के रुप में हिंदी साहित्य के जगत में जाने जाते है दुष्यंत कुमार हिंदी गजल के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा अपने व्यक्तित्व का परिचय दिसया है। उनके साहित्य में जीवन के विविध अनुभवों की सशक्त अभिव्यक्ति दिखायी देती है। स्वयं दुष्यंत कुमार कहते हैं, मै एक साधारण आदमी हूँ। इतिहास और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में साधारण आदमी की पीड़ा उत्तेजना, दबाव, अभाव और उसके संबंधो की उलझन को जीता ओर व्यक्त करता हूँ। मेरे लिए मनुष्य की अवमानना सबसे कष्टप्रद है। उस पर मेरी प्रतिक्रिया नितांत व्यक्तिगत ढंग से होती है। इसी दुष्यांतकुमार ने अपनी सषक्त अभिव्यक्ति के लिये गजल विधा में लेखन कि है।

''इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछी है।
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।''

कुछ चंद लोग ही अपना जीवन अपनी मर्जी से जी पाते हैं। मृतप्राय समाज और अपनी मर्जी से जीवन जीने वाले लोगो के बारे में वो कहते है।

यहाँ तो सिर्फ गूँगे और बहरे लोग बसते है –

खुदा जाने यहाँ पर किसतरह जलसा हुआ होगा ।

एक स्थान पर वे कहते है

कहा तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए
कहाँ चिराग मे मयस्सर नहीं शहर के लिए।

दुष्यंतकुमार जो भ्रष्ट है उसे तोड़ कर नष्ट करना चाहते है और नई समाज की व्यवस्था की स्थापना करना चाहते हे।

''सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नही
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नही ंतो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।''

गाँवो में बिजली, पानी, पक्की सड़के बनवाने के झूठे वायदे देकर वोट की राजनीति का चक्कर चलाने वाले राजनैतिक लोग दिखाई देते हैं। अब तो लोग इतने अब तो लोग इतने असुरक्षित है कि अपने घरों के बाहर

नही आते खुलकर बाते भी नही करते–

''इस शहर मे हो कोई बारात, हो या वारदातें
अब किसी भी बात पर खुलती नहीं है खिड़कियाँ।''

निष्कर्ष :–

हिन्दी उर्दू भाषा के गजल कार दुष्यंतकुमार और फैज़ अहमद फैज़ ने अपनी गजल में समाजिक और राजनैतिक परिदृश्य दर्शाया है। अपने देश प्रेम को अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार दोनो ने समस्त जनता और देष के भविष्य को लेकर चिंता व्यक्त की है, वे आज भी प्रासंगिक लगती है।

संदर्भ :–

1. कुमार दुष्यंत (1999) साये में धूप राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली पृ 93 98
2. दुष्यंतकुमार व्यक्तित्व और कृतीत्व, शांति प्रकाशन, दिल्ली
3. फैज़ अहमद फैज़ (1999) आज कल पत्रिका दिल्ली
4. फैज़ अहमद फैज़ अनदाजे गजल (1955) लखनऊ

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 114-118

समकालीन हिंदी ग़ज़ल में व्यक्त सामाजिक यथार्थ

–मो० आसिफ अली
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, एएमयू, अलीगढ़

ग़ज़ल आधुनिक युग में साहित्य की एक ऐसी सशक्त विधा है, जो श्रोताओं और पाठकों को बांध कर रखती है। इसका एक–एक शेर सुनकर श्रोता और पाठक आनंदित होते हैं। ग़ज़ल दिखने में जितनी आसान दिखाई देती है असल में उतनी ही कठिन है। ग़ज़ल कहने के कुछ अपने नियम और छंद हैं। उन्हीं के अनुसार ग़ज़ल की रचना की जाती है। असल में फारसी छंदों को अपनाया जाता है जिन्हें बह्र कहा जाता है। इसके बिना ग़ज़ल अशुद्ध या लंगडी ग़ज़ल कही जाती है, जो साहित्यिक दृष्टि से अस्वीकार भी है। ऐसी ग़ज़लों को साहित्य में कोई भी स्थान नहीं मिलता है। ग़ज़ल का आरंभ अरब में और फारसी में इसका विकास हुआ। फारसी से ग़ज़ल उर्दू में आई और उर्दू से हिंदी में। प्रो० रोहितास्व अस्थाना के अनुसार– "दसवीं शताब्दी में ईरान में रौदकी नामक एक अंधा कवि पैदा हुआ, जिसने सर्वप्रथम इस विधा को जन्म दिया।"[1] इस प्रकार प्रो० रोहितास्व अस्थाना ने ग़ज़ल का उद्भव फारसी से माना है। पर डॉ नरेश, सरदार मुजावर और सुल्तान अहमद आदि विद्वान इस का उद्भव अरबी के कसीदे से मानते हैं। ग़ज़ल का उद्भव ही प्रेम से हुआ है और उर्दू–फारसी उर्दू में प्रेम की अभिव्यक्ति एक लंबे समय से होती रही है।

समकालीन ग़ज़ल के संदर्भ में डॉ० सरदार मुजावर कहते हैं– "वर्तमान दशक की हिंदी ग़ज़ल की विषय–वस्तु की जांच पड़ताल करने पर एक साथ कई सारी बातें उभर कर सामने आती हैं। वर्तमान दशक में उन विषयों को चुना गया है, जो हमारी जिंदगी से जुड़े हुए हैं। बेकारी, महंगाई, धोखाघड़ी, अन्याय, मानवीयता, अजनबी, खूनखराबा, एकता, सद्भावना आदि।"[2] इसी प्रकार समकालीन हिंदी ग़ज़ल की चर्चा करते हुए रामकुमार कृषक जी कहते हैं कि हिंदी ग़ज़ल आज प्रतिपक्ष की भूमिका में अपने समय के सभी खतरे उठाने के लिए तैयार है अर्थात हम कह सकते हैं कि भगतसिंह हिंदी ग़ज़ल की इसी चेतना में मौजूद हैं। विकास के बीच गांवों का जो क्षय हुआ है वहां बच्चे शहर आकर यहां झुग्गियों में रह रहे हैं, स्त्रियों पर अत्याचार और बाजारीकरण आज ग़ज़ल के विषय बने हैं। राष्ट्रवाद का जो बाजारीकरण हुआ है, वह भी ग़ज़ल का विषय है।

1950 के बाद का युग भारत में स्वतंत्रत चेतना के उदय का युग है। निरक्षरता के अंधकार में डूबे रहने वाले ग्रामीण जन भी साक्षर होकर साहित्य का आस्वादन करने लगे। हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं में ग़ज़ल विधा सर्वाधिक लोकप्रिय हुई। एक ओर ग़ज़ल के पाठकों की संख्या सौगुनी नहीं तो दस–बीसगुनी अवश्य हो गई। दूसरी ओर ग़ज़ल के पाठकों का स्तर भी बदल गया। अब हिंदी ग़ज़ल मात्र मनोरंजन का साधन नहीं रह गई, बल्कि नगर से ग्राम की ओर गई। जीवन की अभिव्यक्ति और आस्वादन का माध्यम बनी। इस प्रकार से

ग़ज़ल का जनतंत्रीकरण हो गया। ग़ज़ल वास्तविक जीवन के बीच आकर खड़ी हो गई। समकालीन हिंदी ग़ज़ल का एक तेवर यह भी है कि उसमें न तो राजनीतिक उठापटक तथा पैंतरेबाजी की चिंता है और न ही रसवर्षण की कामना, और न अभिव्यक्ति को उबाऊ बना कर पेश करने का प्रयास। इस प्रकार से ग़ज़ल में मात्र मानवीय भावना है, मानव जीवन की जटिलता के बयान की ललक है और इस से दो–चार होने की चाह।

वर्तमान समाज बहुत तेजी से परिवर्तित हो रहा है। आज संबंध खत्म होते जा रहे हैं। हर व्यक्ति अपने आप में लगा हुआ है। उसे अपने अलावा कुछ और दिखाई नहीं दे रहा है। गांव खत्म होते जा रहे हैं और नगरों का विकास हो रहा है। नगरीय जीवन के कारण जीवन मूल्यों में भी परिवर्तन आ रहे हैं। साहित्य समाज का दर्पण कहा जाता है इसीलिए समाज में तेजी से होता हुआ परिवर्तन साहित्य में देखने को मिल रहा है। साहित्य में संकुचित होते हुए संबंध, गिरते मूल्य और मानवीयता पर गहराई से चिंतन हो रहा है। साहित्य की सभी विधाओं में यह चिंतन देखने को मिल रहा है। ग़ज़ल साहित्य की लोकप्रिय विधा और समाज से अधिक जुड़ी होने के कारण बदलते सामाजिक परिवेश की अधिक अभिव्यक्ति कर रही है।

दिनेश मिश्र के अनुसार– "जनता के दुख–दर्द की अभिव्यक्ति के साथ–साथ उस जनता तक पहुँचने की चिंता ही हिन्दी ग़ज़ल के मूल में है। हिंदी ग़ज़ल का मूल स्वर यथार्थवादी है"[3] इस प्रकार ग़ज़ल समाज में होने वाले परिवर्तनों से चाहकर भी अलग नहीं रह सकती। क्योंकि इसकी जमीन ही यथार्थ की अभिव्यक्ति है। डॉ० अविनाश वसंतराव कासांडे समकालीन परिवर्तन के बारे में कहते हैं कि– "समाज व्यवस्था में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। आज की सामाजिक व्यवस्था भी इस निरंतर परिवर्तन की अपवाद नहीं है। किंतु चिंता की यह बात है कि यह पतन की ओर अग्रसर हो रही है। फिर भी समाज इसे भरी नजरों से देख और भोग रहा है। दुख इस बात का है कि आज का समाज सामाजिक समस्याओं का डटकर मुकाबला करने की बजाय उसी में जीने का प्रयास कर रहा है। स्थिति में परिवर्तन लाने में विवश है। समाज की इस सहनशीलता की परिसीमा को ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल का विषय बनाया है।"[4]

आज के युग में जब मनुष्य विविध प्रकार की चिंताओं, समस्याओं, विचारों तथा दैनिक क्रियाओं से घिरा हुआ है तब मात्र प्रेमाभिव्यक्ति मनुष्य के लिए हितकारी नहीं और न ही साहित्य के उद्देश्य को पूरा कर सकती है। इसीलिए इकबाल, हाली, फैज, अहमद फैज दुष्यंत अदम गोंडवी और खलिल धनतेजवी जैसे शायरों ने ग़ज़ल को प्रेम की वस्तु से ऊपर उठाकर समाज से जोड़ दिया। अब महबूबा की जुल्फों की जगह खेतों में काम करने वाली स्त्री के बिखरे हुए बाल आ गए, बहारों के मौसम में महबूबा से इश्क करने की जगह खेतों के उजड़ने की चिंता सताने लगी। हिंदी ग़ज़ल भी प्रेम से अछूती नहीं है। दुष्यंत कुमार, अदम गोंडवी, कुंवर बेचौन, रामकुमार कृषक आदि शायरों ने इसे प्रेम और धर्म से अलग करके समाज से जोड़ है। इन सभी ने समाज की स्थिति को देखा और ग़ज़ल के माध्यम से उसे अभिव्यक्त किया है। समाज में आज मानवता का ह्रास हुआ है, आदमी मानवता विहीन समझा जाने लगा है। हर कोई स्वार्थ के लिए एक दूसरे को मरने–मारने पर तुला है। इसीको माधव कौशिक अपने एक शेर में कहते हैं–

"दुश्मनों से तो चलो बच के निकल भी आये
दोस्तों की पर हमें न घात समझ में आयी।"[5]

आज बाजारवाद का समय है। समाज में बाजारों का बोलबाला है। हमें जो चीज चाहिए वह बाजार से

लेनी पड़ेगी। उसके भाव भी बाजार के द्वारा ही लगाए जाते हैं। आज हम अपनी कोई चीज बेचना चाहें तो भी उसके भाव बाजार तय करता है, जिसका सबसे बड़ा उदाहरण कृषि है। किसान मात्र फसल को उगा सकता है पर उसके भाव तय नहीं कर सकता। उसे फसल बेचनी है तो बाजार द्वारा तय किए गए मूल्यों पर ही बेचनी है। बाज़ार में जाकर वह चीज इतनी मंहगी हो जाती है कि निम्न वर्ग उसे खरीदने में असमर्थ होता है। इसी को खलील धनतेजवी अपने शेर में कहते हैं–

"इतनी महंगाई के बाजार से कुछ लाता हूं
अपने बच्चों में उसे बांटकर शर्माता हूं।"[6]

समकालीन समाज पूंजीवाद से ग्रस्त है। आज पूंजीवाद ने हर क्षेत्र पर कब्जा कर लिया है। शिक्षा संस्थान, राजनीति, बाजार आदि कोई भी क्षेत्र हो पूंजीवाद का वर्चस्व दिखाई देता है। पूंजीपतियों का संबंध राजनीति से होने के कारण आज जंगलों और खेती की जमीनों पर पूंजीपतियों का कब्जा होता जा रहा है। किसान और आदिवासी इधर–उधर भटकने को मजबूर हैं। जो किसान कल तक खुद खेती करके खाता था आज जमीन न होने के कारण दुकान से खरीद कर खा रहा है। इसी को खलिल धनतेजवी ने अपनी ग़ज़ल में अभिव्यक्त किया है–

"अब मैं राशन की कतारों में नज़र आता हूं
अपने खेतों से बिछड़ने की सजा पाता हूं।"[7]

आज पूंजीपतियों के प्रभाव के कारण झोपड़पट्टी को तोड़ दिया जाता है और वहां पर पूंजीपतियों की इमारतें खड़ी की जाती हैं। इसी की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं–

"कल तलक यह झोपड़ा जल जाएगा
इस जगह उनको इमारत चाहिए।"[8]

आज का वातावरण एक रेगिस्तान सा बन गया है। ऐसे में पानी (अपनापन) की उम्मीद करना व्यर्थ है। व्यक्ति के व्यक्ति से संबंध, प्रेम के मीठे पानी की कमी से सूख गए हैं। आज हर व्यक्ति हजारों की भीड़ में अकेला है और हर व्यक्ति के कई मुखौटे हैं। इसीको हरेराम समीप कहते हैं–

"दोस्ती किससे निभाऊँ और किससे दुश्मनी
चेहरे अपने मुखौटों में छुपाए हैं सभी।"[9]

समाज में फैली हुई हजारों विसंगतियों के बावजूद आज हिंदी ग़ज़ल आशावान दिखाई देती है। हिंदी ग़ज़लकारों का मानना है कि निराशा, दहशत, उदासी, अजनबीपन आदि के बावजूद इंसान एक दिन इंसानियत को पहचानेगा। भले ही आज विसंगतियों के शोर के कारण कोई भी कुछ सुनने को तैयार नहीं है पर एकदिन ऐसा भी आएगा जब लोग खामोश सदाओं को भी सुनेंगे। इसीलिए हमें लोगों को जगाने का प्रयास करते रहना चाहिए। वैसे भी कवि आशावादी होता है और यही आशा का सूरज हिंदी ग़ज़लकारों में देखने को मिलता है–

"कैसे आकाश में सुराख नहीं हो सकता
एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारों।"[10]

आज के समय की सबसे बड़ी समस्या है सांप्रदायिकता, इसने हर व्यक्ति को हिला कर रख दिया है। आज व्यक्ति कहीं जाने से घबराता है, आज समाज विभिन्न जातियों, धर्मों और क्षेत्रवाद में बटा हुआ है। इस के

टकराव से ही समाज में दहशत फैलती है। एक समय था जब लोग धर्म और जाति को भुलाकर एक दूसरे के सुख–दुख में शामिल होते थे पर आज सब खत्म हो गया है। आज राजनीतिक षड्यंत्र के द्वारा कब–कहां दंगे हो जायें कुछ पता नहीं। इसी बात को अभिव्यक्त करते हुए राम मेश्राम कहते हैं–

"सत्ता का सुख निहारती नेतागिरी को भूल
खालिस लहूलुहान निखरना पड़ेगा यार।
हिर्सों हवस में सड़ रहे हिंसक समाज की
मिट्टी में बीज बनके बिखरना पड़ेगा यार।"[11]

आज शहरों का हाल कुछ ज्यादा ही बिगड़ा हुआ दिखाई देता है, यहां अजनबीपन, चकाचौंध, लालच, स्वार्थ आदि काफी देखने को मिलता है। गांव धीरे–धीरे खत्म होने पर लोग शहर में आकर रहने लगे। पर अब शहर से उठकर गांव में जाने की इच्छा जताते व्यक्त करते हैं। इसीको अदम गोंडवी कहते हैं कि–

"ग़ज़ल को ले चलो गांव के दिलकश नज़ारों में
मुसलसल फन का दम घुटता है इन अदबी इदारों में।"[12]

आज के बदलते सामाजिक परिवेश में व्यक्तियों के आपसी रिश्ते चरमरा गए हैं। रिश्तो का तेजी से खत्म होना समाज के लिए गहन चिंतन का विषय होता जा रहा है। आज खून के रिश्तों में वो बात नहीं रही, जो होनी चाहिए। बच्चे मां–बाप से अलग रहना पसंद करते हैं, वे मां–बाप को बुढ़ापे में बेसहारा छोड़ वृद्ध आश्रमों में भेज देते हैं। ये मां–बाप की संपत्ति पर अपना हक जमाते हैं पर उन्हें अपने पास रखना नहीं चाहते। इसी बात को खलिल धनतेजवी अपने एक शेर में कहते हैं–

"दौलत बटी तो भाइयों का दिल भी बट गया
जो पेड़ मेरे हिस्से में आया वो कट गया।"[13]

आज समाज में पिता–पुत्र,भाई–बहन और माता–पिता जैसे पवित्र रिश्तों में भी दरारें आ गई हैं। दूसरे रिश्तों की तो बात ही नहीं की जा सकती। रिश्ते स्वार्थ सिद्धि का साधन बनते जा रहे हैं अगर किसी को किसी से काम है तो रिश्ता है, काम नहीं तो रिश्ता खत्म। रिश्तों को दूर से देखने पर तो लगता है ये रिश्ते हैं पर करीब से देखने पर उनका खोखलापन सामने आ जाता है। इसी पर व्यंग्य करते हुए खलिल धनतेजवी कहते हैं कि–

"किसी भी रिश्ते को नजदीक से न देखो तुम
पहाड़ दूर से बहुत अच्छा दिखाई देता है।"[14]

आज समाज में गंगा जमुनी तहजीब बहुत आवश्यक है। हमारे समाज में सभी धर्मों के लोग रहते हैं इसलिए धार्मिक एकता समाज के विकास की मुख्य सीढ़ी है। इसी एकता की भावना व्यक्त करते हुए जीवन सिंह समकालीन हिंदी ग़ज़ल के बारे में लिखते हैं कि हिंदी ग़ज़ल अपने समय से संवाद है। जो अंतर्विरोध रहे हैं, जो परेशानियां रही हैं, जो दिक्कत रही हैं...ग़ज़ल उनसे संवाद करती है। ग़ज़ल दो संस्कृतियों का मिलन है, सामासिक संस्कृति का प्रतीक है...इस्लाम और हिंदू धर्म मिला तो ग़ज़ल की रचना हुई। इसलिए यह बहुत बड़ी विधा है जो सामासिक सांस्कृतिक से निर्मित हुई है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि समकालीन हिंदी ग़ज़ल आसमानों की उड़ानों को छोड़कर जमीन पर रहती है ,आम–आदमी को अभिव्यक्त करती है, काल्पनिकता की जगह यथार्थ की बात करती है। समाज की यथार्थ अभिव्यक्ति ही इसका उद्देश्य है। इसलिए आज समाज में

परिवर्तन के साथ जो विसंगतियाँ आ गयी हैं जैसे उदासी, अजनबीपन, सांप्रदायिकता, भ्रष्ट व्यवस्था आदि सभी को समकालीन हिंदी ग़ज़ल में देखा जा सकता है।

संदर्भ-ग्रंथ :-

1. हिंदी ग़ज़ल : उद्भव और विकास, प्रोफेसर रोहिताश्व अस्थाना, 2010, सुनील साहित्य सदन नई दिल्ली, पृष्ट–7
2. हिंदी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, डॉ० सरदार मुजावर, 2001, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली ,पृष्ठ–भूमिका
3. अलाव, संपादक–रामकुमार कृषक, जनवरी–फरवरी 2018, यश पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृष्ठ–36
4. ग़ज़लकर दुष्यंत कुमार, डॉ अविनाश वसंतराओ कासांडे, 2010, समता प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ–189
5. नई उम्मीद की दुनियाँ, माधव कौशिक, 2019, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ–42
6. धीरे बोल, खलील धंतेजवी, 2013, विशाल पब्लिकेशन मुंबई, पृष्ठ–5
7. वहीं
8. वहीं।
9. अलाव, संपादक–रामकुमार कृषक, मई–अगस्त 2015, पीआरआईएसएचटीएच–456
10. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, राधा प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ–49
11. अलाव, संपादक–रामकुमार कृषक, 2015, पृष्ठ–428
12. समय से मुठभेड़, एडम गोंदवी, 2010, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ–3
13. धीरे बोल, खलील धंतेजवी, 2013, विशाल पब्लिकेशन मुंबई, पृष्ठ–8
14. वही, पृष्ठ–13

नाम –मो आसिफ अली

पता–रूम नंबर 62,सर सय्यद हाल, एएमयू,

अलीगढ़–202002

मोबाइल– 9703263812

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 119-122

वैदिक कालीन गुरूकुल शिक्षा पद्धति के उद्देश्य व वर्तमान में उपादेयता

–शास्त्री मुकेश कुमार, शोधार्थी,
–डॉ विक्रम सिंह, शोध मार्गदर्शक, एसोसिएट प्रोफेसर,
शिक्षा विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़ राजस्थान

प्राचीन भारतीय शिक्षा का उदय वेदों से माना जाता है। वेद शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की विद् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है–ज्ञान प्राप्त करना। वेद का शाब्दिक अभिप्राय है–जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाता है। वैदिक काल में शिक्षा का अभिप्राय उस ज्ञान से था जो वेदों में निहित था। आज भी भारतीय ज्ञान का खजाना धर्म ग्रंथों में विद्यमान हैं। वैदिक कालीन ज्ञान पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा जीविकोपार्जन का साधन था। वैदिक काल में ज्ञान प्राप्ति की एकमात्र संस्था ऋषिकुल या गुरुकुल ही थे। जहां रहकर ही शिक्षार्थी को वांछित ज्ञान की प्राप्ति होती थी। वैदिक काल में गुरु शिष्य को अध्यात्मिक व नैतिक ज्ञान से दीक्षित करते थे।

शिक्षा संस्था :–

वैदिक काल में शिक्षा दो प्रकार की होती थी, प्रारंभिक शिक्षा और उच्च शिक्षा। वैदिक काल में बालकों की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही संपन्न होती थी। इसका प्रमुख उद्देश्य गुरुकुल शिक्षा के लिए बालकों को तैयार करना था। इस प्रकार घर ही बालक की प्रथम परंतु अनौपचारिक शिक्षा संस्था थी। औपचारिक संस्था के रूप में वैदिक काल में छोटे–छोटे पारिवारिक विद्यालय होते थे जिनका संचालन शिक्षक स्वयं व्यक्तिगत रूप से करता था। पारिवारिक विद्यालयों को आश्रम या गुरुकुल कहा जाता था। उपनयन संस्कार के बाद की शिक्षा गुरुकुल में ही होती थी। शिक्षार्थी को गुरुकुल में रहकर गुरुकुल के नियमों का पालन करके ही शिक्षा प्राप्त करनी होती थी। गुरुकुल में शिक्षार्थी को ब्रह्मचारी अथवा अंतरूवासी कहा जाता था। गुरु ही अपने आश्रम के सभी शिष्यों का अभिभावक बनकर उनके भोजन, रहन–सहन आदि व्यवस्थाओं को करता था। गुरुकुल में शैक्षिक तथा आध्यात्मिक वातावरण पर अत्यंत बल दिया जाता था। गुरुकुल का जीवन अत्यंत सरल होता था। गुरुकुल प्रायः नगर से दूर जंगल के एकांत में स्थित होते थे।

प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था पूर्ण रूप से वैदिक ज्ञान पर ही आधारित थी। यह केवल ज्ञान प्राप्ति का साधन न होकर जीवन के वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति का साधन होती थी। गुरुकुल शिक्षा की अनेकों अनेक विशेषताएं रही हैं। यह मनुष्य के आचार व्यवहार आदि सभी पहलुओं पर बल देती थी। वैदिक काल में शिक्षा को ज्ञान का पर्याय माना जाता था। उस काल में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान का विकास था। राष्ट्र के प्रति

कर्तव्य पालन और राष्ट्रीय संस्कृति के संरक्षण एवं विकास पर भी बल दिया जाता था। मोक्ष प्राप्ति को मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य माना जाता था। इसकी प्राप्ति के लिए मानव का आध्यात्मिक विकास किया जाता था।

उद्देश्य :-

वैदिक कालीन गुरुकुल शिक्षा पद्धति का कोई एक विशेष उद्देश्य न होकर अनेकों अनेक उद्देश्य रहे हैं। यहां हम उनमें से कुछ उद्देश्यों का वर्णन कर रहे हैं जो निम्नलिखित प्रकार से हैं।

ज्ञान का विकास –

यह वैदिक कालीन गुरुकुल शिक्षा पद्धति का सर्वप्रथम उद्देश्य था। वैदिक काल में ज्ञान को मानव का तृतीय चक्षु माना जाता था।

ज्ञानं मनुजस्य तृतीयं नेत्रम्।

ऐसी अवधारणा थी कि दोनों नेत्र तो केवल दृश्य जगत का ज्ञान कराते हैं परंतु ज्ञान रूपी तृतीय नेत्र दृश्य व सूक्ष्म दोनों जगत का ज्ञान करवाता है। सत्य–असत्य तथा करणीय–अकरणीय कर्म में भेद ज्ञान रूपी तृतीय नेत्र द्वारा ही होता है।

स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्धन –

ऋषि आश्रम व गुरुकुलों में शिशुओं के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण और संवर्धन पर विशेष बल दिया जाता था। गुरुकुल में अंतरूवासी को उचित आहार–विहार और आचार–विचार की शिक्षा दी जाती थी। शारीरिक स्वास्थ्य के संरक्षण व संवर्धन के लिए शिक्षार्थी को प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठना होता था, नित्य कर्म से निवृत्त होकर, व्यायाम करके, स्नानादि करना होता था, सादा भोजन करना और व्यसनों से दूर रहना होता था। शिक्षार्थी के मानसिक स्वास्थ्य के लिए उसे उचित आचार–विचार की ओर उन्मुख किया जाता था।

जीविकोपार्जन व कला कौशल –

वैदिक कालीन गुरुकुल शिक्षा में शिष्यों की योग्यता के अनुरूप कृषि, पशुपालन एवं अन्य कला कौशलों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। उस समय की शिक्षा पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न होकर जीवन के वास्तविक उद्देश्य प्राप्ति की शिक्षा थी।

संस्कृति का संरक्षण एवं विकास –

वैदिक काल में शिक्षा का एक उद्देश्य अपनी संस्कृति का संरक्षण और हस्तांतरण था। उस युग में गुरुकुलों की संपूर्ण कार्यपद्धति धर्म प्रधान थी। उस काल में शिष्यों को वेद मंत्र मौखिक करवाए जाते थे। उस समय में शिक्षा का एक ऐसा क्रम प्रचलित था कि उसमें लोग गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते थे और जंगल में निवास करके अध्ययन, चिंतन, मनन और निदिध्यासन करते थे। वे ध्यान और समाधि द्वारा मोक्ष प्राप्त करते थे। इससे देश की संस्कृति का संरक्षण और विकास हुआ।

नैतिक एवं चारित्रिक विकास –

वैदिक काल में चरित्र निर्माण का अभिप्राय मनुष्य को धर्म सम्मत आचरण में प्रशिक्षित करने से लिया जाता था। उसके आहार–विहार और आचार–विचार को धर्म के आधार पर उचित दिशा प्रदान की जाती थी।

आध्यात्मिक उन्नत्ति –

वैदिक काल में शिक्षा का अंतिम और सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य मनुष्य के बाह्य व आंतरिक दोनों पक्षों को पवित्र

बना कर उन्हें चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति की ओर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करना था।

वैदिक कालीन गुरूकुल शिक्षा पद्धति की वर्तमान में उपादेयता –

आधुनिक शिक्षा प्रणाली यद्यपि वैदिक कालीन गुरूकुल शिक्षा प्रणाली से पूर्ण रुप से भिन्न दिखाई देती है। फिर भी वर्तमान शिक्षा को नियोजित करने व समस्याओं के समाधान हेतु प्राचीन शिक्षा के मूलभूत आधारों पर ध्यान देना आवश्यक है। वैदिक शिक्षा के आदर्शों अर्थात श्रद्धा, भक्ति, सेवा, आदर, आत्म अनुशासन, सादा जीवन उच्च विचार, ब्रह्मचर्य, नैतिकता आदि का अनुसरण करके वर्तमान समाज की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था की जा सकती है। पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के अंधानुकरण में हम अपने पुरातन आदर्शों को भूलते जा रहे हैं तथा वास्तविक शिक्षा से दूर होते जा रहे हैं। आज के समय में छात्र असंतोष, अनुशासनहीनता, बेरोजगारी, निर्धनता, वर्ग संघर्ष, सामाजिक बुराइयां, राष्ट्रीय विघटन, भाषाई समस्याएं जैसी अनेक समस्याएं दिन प्रतिदिन विकराल रूप धारण करके हमारे सामने खड़ी होती जा रही है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति के आदर्श तत्वों का वर्तमान शिक्षा में समावेश करके इन बुराइयों और समस्याओं का समाधान संभव है। जीवन के वास्तविक मूल्यों, गुणों व आदर्शो का अनुसरण करके हमारे छात्रगण भारत की समृद्धि व वैभव का पुनरोद्धार कर सकते हैं। जब हमारी शिक्षा में प्राचीन सनातन आदर्शों को सम्मिलित किया जाएगा तभी हमारी शिक्षा प्रणाली अतीत की भांति विदेशी छात्रों को अपनी तरफ आकर्षित कर सकेगी तथा भारतीय शिक्षा के गौरव को पुनः महिमामंडित कर सकेगी। इस विषय में डॉक्टर लक्ष्मणस्वामी मुदालियर ने ठीक ही कहा है कि :–

"हमारे युवा भारतीयों को उस विरासत को पहचानने दो जो उनकी अपनी है। ईश्वर करे कि युवा पीढ़ी भारत की वास्तविक आत्मा को पहचाने तथा अपने सभी कार्यों में उसका अनुसरण करें"।

वैदिक शिक्षा से तात्पर्य सिर मुंडवाने, लंगोटी बांधने, स्त्रियों से बचने, तिलक लगाने, श्लोकों का रटन्त स्मरण करने, भिक्षा मांगने आदि से नहीं है। उच्च विचारों, स्वानुशासन, स्नेह व श्रद्धा पर आधारित, अध्यापक छात्र संबंध, शहर के कोलाहल से दूर शांत व प्राकृतिक परिसर, छोटी कक्षाएं, व्यस्त दिनचर्या, अच्छी आदतों का निर्माण, शांति, मानवता व विश्व बंधुत्व के भाव से परिपूर्ण पाठ्यवस्तु, प्रश्नोत्तर, वाद–विवाद विधियों का प्रयोग, सादा संयमित व व्यसनों से रहित जीवन आदि अनेक ऐसी बातें हैं जो आज भी शैक्षिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं। यद्यपि पाश्चात्य सभ्यता के रंग से ओतप्रोत भारतीय जीवन में वैदिक शिक्षा के प्रति लगाव लगभग विलुप्त हो चुका है परंतु फिर भी वैदिक शिक्षा के निम्नलिखित तत्वों को आधुनिक शिक्षा पद्धति में समाहित करके नष्ट भ्रष्ट होती जा रही भारतीय शिक्षा को नवजीवन दिया जा सकता है :–

– आदर्शवादीता
– अनुशासन
– गुरु शिष्य संबंध
– शिक्षा के लिए शांत माहौल
– शिक्षा व्यवस्था
– शिक्षण विधि
– अध्ययन विषय
– छात्रों व अध्यापकों का सरल जीवन

निसंदेह वैदिक कालीन शिक्षा की उपरोक्त इंगित अनेक विशेषताएं वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में भी पारसंगिक हैं। वैदिक शिक्षा के उद्देश्य, छात्र अध्यापक संबंध, अनुशासन व्यवस्था, उपनयन संस्कार की अनिवार्यता, समावर्तन उपदेश, विनयशीलता, नैतिक चरित्र, कार्य अनुभव व गुरु के प्रति श्रद्धा भाव आदि को वर्तमान शिक्षा पद्धति में समाहित करके वर्तमान शिक्षा की अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. लाल (डॉ) रमन बिहारी, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं, राज प्रिंटर्स, मेरठ।
2. शर्मा, रामनाथ व शर्मा, राजेंद्र कुमार (2006) शैक्षिक समाजशास्त्र, एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
3. शीलू मैरी (डॉ) (2008) शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. शुक्ला (डॉ) सी०एस० (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
5. जे० (डॉ) एस० वालिया (2008) भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, अहमपाल पब्लिशर्स, मेरठ।

फोन 9466035888

ई–मेल manupareek21@gmail-com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 123-129

कृष्णदत्त पालीवाल की साहित्य के विशिष्ट वादों सम्बन्धी आलोचना–दृष्टि

–नवनीत
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), गोविन्द वल्लभ पंत राजकीय महाविद्यालय,
रामपुर बुशहर, जिला शिमला (हिमाचल प्रदेश)

साहित्य मानव जीवन की गाथाओं एवं अनुभवों को अनुभव करने का प्रमुख साधन है। साहित्य समाज की देन है। साहित्य ने मनुष्य के विचारों को गति दी है। समाज की परम्पराओं में परिवर्तन करवाया है। भीतरी क्रान्ति का सृजन किया है तथा राष्ट्र, धर्म, जाति और वर्णगत भावनाओं को मिटाकर, मानव को विश्वबन्धुत्व की भावना से अनुप्राणित किया है। आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल का साहित्य चिन्तन विभिन्न वादों एवं सरोकारों से भरपूर है। उन्होंने आलोचना साहित्य में समस्त वादों का चिन्तन–विश्लेषण किया है। जिनमें आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता, संरचना, उत्तर संरचना एवं नवविमर्शवाद का चिन्तन–विश्लेषण उनके साहित्य में देखने को मिलता है, जिसका पृथक्–पृथक् रूप से चिन्तन कृष्णदत्त पालीवाल ने किया है।

आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकता :-

साहित्य में आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकता दो ऐसे शब्द हैं जिनसे साहित्य की सृजन पद्धति का क्रम ही बदल जाता है। कृष्णदत्त पालीवाल नयी समीक्षा के आलोचक हैं उनके सृजन का विषय अत्यधिक विस्तृत है। आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकता पर उन्होंने विस्तृत रूप में सृजन किया है और स्वतन्त्र पुस्तकें रची हैं। आधुनिकता को उन्होंने नवीनता से जोड़ा है। जिसमें युगचेतना, परम्पराओं का संशोधन जैसे बिन्दुओं पर विस्तृत रूप से सृजन किया है। उत्तर आधुनिकता को कृष्णदत्त पालीवाल आज के युग की बदलती हुई परिस्थिति से जोड़ते हैं। आज साहित्य का जो स्वरूप निरन्तर बदल रहा है वह उत्तर आधुनिकता के प्रभाव का ही परिणाम है। कृष्णदत्त पालीवाल के आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकता पर विस्तृत रूप में विवेचन यहाँ किया जाएगा।

आधुनिकता ने सदैव उपनिवेशवाद ताकतों को बढ़ावा देने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया। कृष्णदत्त पालीवाल आधुनिकता को उपनिवेशवाद के रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं कि, "आधुनिकता को सृजन–दृष्टि का नयापन और ज्ञानोदय माना गया है। यह यूरोपीय अवधारणा औद्योगिकरण के साथ उपनिवेश खोजने की इच्छाओं का विस्तार है। जहाँ–जहाँ उपनिवेश स्थापित हुए, वहाँ आधुनिकता सक्रिय रही और गैर यूरोपीय देशों में आधुनिकता उपनिवेशवाद का अस्त्र बनकर सामने आई। हमारा देश यूरोपीय आधुनिकता की शिक्षा–प्रणाली तथा अन्य क्षेत्रों में यूरोप का चरागाह रहा। मूल विचार यह कि हमारी आधुनिकता पर यूरोपीय–आधुनिकता का पूरा वर्चस्व रहा। इस आधुनिकता ने भारत को तहस–नहस कर दिया। हर क्षेत्र में हमें अंधविश्वास सिद्ध कर मूर्ख

बनाया। इस तरह आधुनिकता साम्राज्यवादी योजना का एक अंग बनकर भारत में फली–फूली है।" अतः कहा जा सकता है कि कृष्णदत्त पालीवाल स्वीकारते हें कि भारत इस आधुनिकता के चक्कर में ऐसा फंसा कि निकल नहीं पा रहा है। आज तो साम्राज्यवादी उपनिवेषवादी का वर्चस्व सभी तरफ फैला हुआ है।

आधुनिकता के स्वरूप को समझने का संस्कृति उचित माध्यम है जिसे कृष्णदत्त पालीवाल अज्ञेय के सांस्कृतिक चिन्तन के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। उनके अनुसार, "भारतीय संस्कृति की आधुनिकता के लोगों ने विभिन्न अर्थ दिए हैं। लेकिन अज्ञेय की दृष्टि में आधुनिकता मूल्य नहीं प्रक्रिया है– एक अनगढ़ चीज़ है– वह सिद्ध स्थिति नहीं है। संस्कारवान होने की क्रिया को ही अज्ञेय आधुनिकता मानते हैं। जो संस्कारी हो चुका है और स्थिर है, वह आधुनिक नहीं है।" अतः कृष्णदत्त पालीवाल मानते हैं कि अज्ञेय आधुनिकता के रूप को पश्चिमी सभ्यता से स्वीकार करना नहीं मानते अपितु इस बदली हुई स्थिति में भारतीय साहित्य शास्त्र को पहचाने उनको नये अर्थ एवं नये सन्दर्भों से जोड़कर देखना आधुनिकता स्वीकारते हैं।

आधुनिकता के स्वरूप को समझने का उत्तम उदाहरण भारतीयता से बढ़िया नहीं हो सकता। कृष्णदत्त पालीवाल आधुनिकता के रूप को भवानी प्रसाद मिश्र के माध्यम से भारतीयता में देखते हुए कहते हैं कि, "भवानी प्रसाद मिश्र की कविता 'भारतीयता' के जीवन्त इतिहास बोध की कविता है। उनकी संवेदना की शिराएँ उस आस्था को संचारित करती हैं, जिसमें न ऊब है, न उदासीनता, न यन्त्रणा, न मृत्यु बोध। यह शिव–शक्ति की अमृतकला से सम्पन्न और समर्थ मूल्य–बोध के दीप्ति की कविता है– जिसमें हर तरह के आंतक से मुक्ति का भाव है। वे अंग्रेज़ी राज्य पर निर्भय चोट करते हैं और अभिजात्यवाद के झूठे दम्भ को सहन नहीं करते। उनकी कविता कमलों से भरा सरोवर है– जिसकी गंध हमारी चेतना की आदिमता को जगाकर अखण्ड भावबोध पैदा करती है।" अतः कहा जा सकता है कि भवानीप्रसाद मिश्र का रचना संसार भारतीय आधुनिकता का प्रतीक चिन्ह है। उनका साहित्य चिन्तन पाश्चात्य साहित्य चिन्तन के प्रभाव में न होकर भारतीय चिन्तन दृष्टि का परिणाम है।

आधुनिकतावाद में पश्चिम की नकल से बचने का सदैव प्रयास करना चाहिए जिसे कृष्णदत्त पालीवाल आधुनिकता में पश्चिम की नकल का विरोध करते हुए स्पष्ट करते हैं कि, "हमने पश्चिमी नकल के चक्कर में अपने को कैसा बना लिया। क्या वह छवि, जिसे हमने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अपनी परम्परा संस्कृति की स्मृति को जगाकर पाया था और अब स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भुला दिया। ऐसी स्थिति में हमारा जीवन संस्कृति का होगा क्या? हम क्यों फिर से पश्चिम का उपनिवेश बनने की तैयारी कर रहे हैं। अपना स्वाभिमान खोकर हम उनके पीछे दौड़ रहे हैं। भाषा, धर्म, दर्शन, परम्परा, देश–प्रेम जैसी तमाम अवधारणा को सिर्फ बौद्धिक विलास समझकर हम भारतीय आधुनिकता के उज्ज्वल पक्षों को मलिन कर रहे हैं।" अतः कहा जा सकता है कि कृष्णदत्त पालीवाल भारतीयता को बढ़ावा देते हुए स्पष्ट करते हैं कि हमें पश्चिम के मोह से निकलना चाहिए और अपनी संस्कृति का अनुसरण करना चाहिए।

हिन्दी साहित्य में उत्तर आधुनिकता को नयी समीक्षा के विचारकों ने प्रमुखतः से उठाया। कृष्णदत्त पालीवाल उत्तर आधुनिकता को एक विचारधारा या सिद्धान्त न मानते हुए उसे एक विशाल वृक्ष मानते हुए स्पष्ट करते हैं कि, "उत्तर आधुनिकता किसी एक सिद्धान्त या विचारधारा का नाम नहीं है। यह एक ऐसा विश्व बरगद है, जिसकी अनगिनत शाखाएँ हैं– अर्थात् उत्तर आधुनिकता में न जाने कितने सिद्धान्त, विचारधाराएँ, प्रवृत्तियाँ,

बौद्धिक अभिवृत्तियों का समुच्चय है। एक खास अर्थ में उत्तर आधुनिकतावाद सूचना–संसार युग, बहुराष्ट्रीय पूंजीवाद के वर्तमान युग की उस संस्कृति का नाम है– जिसका कोई केन्द्रवाद नहीं है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कला, साहित्य, अर्थ–तंत्र, मंडी अर्थ–व्यवस्था, राजनीति, समाज, दर्शन आदि के क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन आए हैं उन सभी में उत्तर आधुनिकतावाद शब्द के कई अर्थ हैं, लेकिन ये अर्थ इतने व्यापक हैं कि उत्तर आधुनिकतावाद साठ के दषक के उन मुक्ति–आन्दोलनों, स्वाधीनता–खोजी विचारधाराओं, निरंकुश यौन–प्रवृत्तियों से निकला है।" अतः कहा जा सकता है कि कृष्णदत्त पालीवाल उत्तर आधुनिकतावाद को तकनीक का युग, पूंजीवादी व्यवस्था का प्रसार एवं साहित्य के प्रत्येक क्षेत्रों में बदलाव के रूप में परिभाषित करते हैं। जिनसे सभी पुरानी नीतियों–सिद्धान्तों, विचारधाराओं का अन्त कर दिया।

पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से उपजा उत्तर आधुनिकतावाद आज भारतीय सभ्यता संस्कृति के लिए ख़तरा बन चुका है। यूरोपीय उत्तर आधुनिकतावाद के स्वरूप को कृष्णदत्त पालीवाल भारतीय संस्कृति के लिए घातक सिद्ध करते हुए कहते हैं कि, "यूरोप का उत्तर–आधुनिकतावादी आन्दोलन अपने आक्रमण में इतना तेज है कि हिन्दुस्तान सदा के लिए मरियामेट होने की तैयारी कर उठा है। राष्ट्र की आत्मा ही यदि नष्ट हो जाएगी तो गौतम, गांधी, उपनिषद्, गीता का कोई अर्थ नहीं बचेगा। योगी अरविन्द ने कहा था कि भारतीय संस्कृति कई अर्थों, सन्दर्भों, चिन्तन–पराम्पराओं में यूरोप से अलग है। यूरोप तो भारत की संस्कृति को नष्ट कर अपना एक प्रदेश बनाना चाहता है, ताकि उसका व्यापार–लूटतंत्र फल–फूल सके।" अतः कहा जा सकता है कि यदि भारत यूरोपीय संस्कृति का चिन्तन करता रहेगा तो हमारी हज़ारों साल की चिन्तन–विरासत धूल में खो जाएगी। हमें इसके संरक्षण की आवश्यकता है।

उत्तर आधुनिकतावाद को आज भारत तकनीकी से समझने की आवश्यकता है। कृष्णदत्त पालीवाल उत्तर आधुनिकतावाद को तकनीक के माध्यम से समझाते हुए कहते हैं कि, "तकनीक ने सभी उत्पादन सम्बन्ध बदल दिए हैं और इसी ने आलोचना दृष्टि की दिशा भी। तकनीक ने संचार की प्रकृति को बदला है और संचार ने कला, साहित्य, शिक्षा आदि की सोच को। फलतः साहित्य कला–संस्कृति के सभी पुराने केन्द्र ध्वस्त हो गए हैं। अब तकनीक–माध्यम अपनी अन्तर्वस्तु स्वयं है, यह तकनीक का नया काव्यशास्त्र है। इलेक्ट्रानिक क्रान्ति ने मानव व्यवस्था को इतना अधिक बदला है कि इस परिवर्तन की अदम्य गति कोई परिभाषित नहीं कर सकता।" अतः कहा जा सकता है कि उत्तर आधुनिकता तकनीक और माध्यम के नए परिवेश में समाहित हो गई। आज नई तकनीक का काव्यशास्त्र पुराने को विदाई दे चुका है। आज तकनीक ही हमारा नायक बन चुकी है।

संरचना एवं उत्तर संरचना :-

आलोचना के विशिष्ट वादों में संरचना एवं उत्तर संरचना की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कृष्णदत्त पालीवाल ने संरचना एवं उत्तर संरचना पर विस्तृत रूप में सृजन कार्य किया है। कृष्णदत्त पालीवाल संरचनावाद को भाषा–साहित्य एवं संस्कृति की निष्पत्ति पर टिका हुआ मानते हैं। उन्होंने आलोचक को रचना की संरचनात्मक व्याख्या करके उसका नया अर्थ उद्घाटित करने वाला माना है। दूसरी ओर उत्तर संरचनावाद एक विस्तृत समाजशास्त्र–अर्थशास्त्र और विचारधारा है। कृष्णदत्त पालीवाल उत्तर संरचनावाद को नए विश्व का नया बौद्धिक स्वरूप मानते हैं। वह उत्तर संरचनावाद को आधुनिक संस्कृति की उपज मानते हैं। अतः स्पष्ट है कि कृष्णदत्त पालीवाल संरचना एवं उत्तर संरचनावाद दोनों का विस्तृत विवेचन–विश्लेषण करते हैं। जिसका विस्तृत रूप यहाँ

प्रस्तुत किया जाएगा। हिन्दी साहित्य में आलोचकों ने साहित्य के प्रत्येक वाद को अपने साहित्य में विवेचन करने का प्रयास किया है। आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल उसी सरीखे के आलोचक हैं, उनका आलोचना साहित्य इन्हीं वादों से समृद्ध हुआ है। कृष्णदत्त पालीवाल संरचनावाद के स्वरूप को पश्चिमी चिन्तन से उपजा मानते हैं। उनके अनुसार, "सस्यूर के संरचनावाद का अन्दरूनी रोग पश्चिमी द्वैतवादी–चिन्तन के भीतर से उपजा है। द्वैतवादी दृष्टि से बँधकर ही सस्यूर वाक् और लिखित का द्वैत स्थापित करते हैं। इस द्वैत से लेखन वाक् से छोटा हो जाता है और वाचक को केन्द्रीय स्थिति मिल जाती है। जबकि वाचक ही तो पुराना लेखक है। लिंग्विस्टिक्स एंड ग्रामोटोलाजी में देरिदा से सस्यूर के सिद्धान्त को उखाड़ फेंका है। सस्यूर के अन्तर्विरोधों को पाकर ही वे पाठ–विज्ञान और लेखन–विज्ञान की ओर बढ़ते हैं ताकि दबाए गए अर्थ को स्वतन्त्र किया जा सके। लेखन भाषा की पूर्व शर्त है– वह वाक् से पहले मौजूद है। इसलिए लेखन दोपय दर्ज़े की चीज़ नहीं है वह तो स्वतन्त्र लीला है। लेखन में अनिश्चय रहता है। इसलिए लेखन अर्थ का डिस्पेसमेंट (अनंत व्यंजनात्मक तबादला) है जो भाषा का अनुशासन भी है और स्वतन्त्र भी।" अतः कहा जा सकता है कि कृष्णदत्त पालीवाल संरचनावादी साहित्य के निर्माण में वाचक को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। द्वैतवादी चिन्तन दृष्टि को महत्त्वपूर्ण मानते हुए सिद्ध करते हैं कि यही दृष्टि सस्युर के संरचनावाद को स्पष्ट करने में सहायक है। लेखन की अनंत व्यंजनात्मक दृष्टि को स्पष्ट करने का प्रयास कृष्णदत्त पालीवाल ने किया है।

हिन्दी आलोचना साहित्य में संरचनावाद एवं उत्तर संरचनावाद पर विशेष रूप से चिन्तन–विश्लेषण चलता रहा है जिसे कृष्णदत्त पालीवाल सस्यूर (संरचनावाद के प्रवर्तक) को माध्यम बनाते हुए कहते हैं कि, "हिन्दी–आलोचना इधर के वर्षों में संरचनावाद, उत्तर–संरचनावाद के जटिल दुर्बोध वाद–विवाद में माथा खपाती रही है। इसमें सास्यूर, देरीदा, मिशेल फूको, पाल डी मान की बुद्धियाँ सक्रिय रही हैं। सास्यूर ने भाषा की अध्ययन–विधि में 'सिंक्रोनी' व्यंजक व्यंग्य प्रक्रिया को आधार बनाया। इस तरह वे ऐतिहासिक (डाइक्रोनिक) अध्ययन से हटकर (सिंक्रोनिक) अध्ययन की ओर समर्पित होते गए। सस्यूर ने 'अर्थ' अध्ययन की प्रक्रिया में नई निष्पत्तियों की उद्‌भावना की। प्राग–सम्प्रदाय वाले चिँ विज्ञान की ओर प्रवृत्त हुए और रचना को चिन्ह वैज्ञानिक तथ्य तक घोषित तौर पर माना। इस तरह उनकी दृष्टिगत सलाह में रचना का पाठ एक चिव्यवस्था है। भाषा का गहन विश्लेषण है। पाठ की पूरी संरचनात्मक–व्यवस्था की परख होनी चाहिए तभी कृति का सौन्दर्य खुल पाता है।" अतः कहा जा सकता है कि संरचनावाद को सस्यूर ने अपने साहित्य के माध्यम से मज़बूती प्रदान की। उन्होंने भाषा के गहन अध्ययन को बढ़ावा दिया एवं अर्थ निष्पत्ति की प्रक्रिया में विभिन्न चिन्हों की व्यवस्था पर ज़ोर दिया।

संरचनावाद का स्वरूप भाषा की संस्कृति पर टिका हुआ है। कृष्णदत्त पालीवाल संरचनावाद को भाषा की संस्कृति पर टिका हुआ मानते हैं। उनके अनुसार, "संरचनावाद तो भाषा की ही संस्कृति पर टिका है, उसी को स्पष्ट करने का विशेष तरीका अर्थात् भाषा की संरचना में उसकी संस्कृति का जीवंत भाव प्रकाश मौजूद रहता है। इसलिए संस्कृति की कोई भी अवधारणा इतिहास और भाषा से अलग नहीं हो सकती। इसलिए विशुद्ध रूपवाद जैसी कोई चीज़ साहित्य में होती ही नहीं है जो विशुद्ध रूपवाद का जाल फैलाते हैं वे सिरफिरे लोग हैं।" अतः कृष्णदत्त पालीवाल स्वीकारते हैं कि साहित्य की निष्पत्ति संस्कृति से होती है और संस्कृति से साहित्य की। सम्पूर्ण संरचनावाद भाषा–साहित्य एवं संस्कृति की निष्पत्ति पर टिका हुआ है। क्योंकि भाषा तो संस्कृति ही

है और साहित्य भाषा में लिखा जाता है।

हिन्दी साहित्य में उत्तरसंरचनावाद पर आलोचकों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से विवेचन–विश्लेषण किया है। उत्तर संरचनावाद आज एक नवीन विश्व की पद्धति बन गया है। आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल का आलोचना साहित्य विभिन्न वादों एवं विवेचनाओं से भरपूर है। उत्तर संरचनावाद को अपने साहित्य में विस्तृत रूप से कृष्णदत्त पालीवाल ने विश्लेषित किया है। वह उत्तर संरचनावाद को नए विश्व की पद्धति के रूप में मानते हैं। उनके अनुसार, "उत्तर संरचनावाद और उत्तर आधुनिकतावाद नए विष्व का नया बौद्धिक–सांस्कृतिक–आर्थिक पर्यावरण है, दार्शनिकता है– नई पद्धति है– नया भूमंडलीकरण यथार्थ। जिसका पाठ या कहें कि 'टेक्स्ट' एक बिलकुल नई अवधारणा की तरह समझा जाना चाहिए। यूरोप तक के विद्वान कहते हैं कि उत्तर औद्योगिक, उत्तर साम्राज्यवादी युग की नई रण–नीति उत्तर संरचनावाद में विद्यमान है। नैतिकता और राजनीति के आधारों के सुलगते प्रश्न इसके भीतर से उठ खड़े हुए– जिन्हें ठीक से समझ पाने के लिए नीत्से और हाइडेगर की शरण ली गई।" अतः कहा जा सकता है कि कृष्णदत्त पालीवाल स्वीकारते हैं कि उत्तर संरचनावाद नए विष्व का नया बौद्धिक स्वरूप है जिसमें समस्त प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं।

औद्योगिकरण उत्तर संरचनावाद की उत्पत्ति का प्रमुख युग रहा है। कृष्णदत्त पालीवाल उत्तर संरचनावाद को उत्तर औद्योगिक युग की उपज मानते हैं। उनके अनुसार, "उत्तर संरचनावाद उत्तर औद्योगिक युग की उपज है और उसका नाभिनाल सम्बन्ध भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, मास मीडिया क्रान्ति, विज्ञानवाद के साथ उपभोक्तावादी संस्कृति से है। आज उत्तर आधुनिकतावाद, उत्तर संरचनावाद की हवा बहुत ज़ोर से चल रही है। यह आज के बौद्धिक सांस्कृतिक वातावरण का ऐसा महत्त्वपूर्ण स्वर है जिसका दबदबा मार्क्सवादी आलोचना महसूस कर रही है। साहित्य और विचारधारा–चिपटी का नाम लेकर नामी–गिरामी मार्क्सवादी आलोचक इधर भागते दिखाई दे रहे हैं। दरअसल छायावाद के बाद हिन्दी आलोचना जिस राह पर चली थी, वह संकरी दलबंदी की राह थी; उसने तमाम कृतियों का कचूमर निकाल दिया। भवानीप्रसाद मिश्र, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, मनोहर श्याम जोषी तथा रघुवीर सहाय जैसे रचनाकारों को प्रतिबद्धता की चक्की में पीस डाला। इसलिए समीक्षा क्षेत्र में विद्रोह होना ही था, वही हुआ है। पुराने प्रतिमानों को छोड़कर हिन्दी का आलोचना विमर्ष उत्तर आधुनिकतावाद और उत्तर संरचनावाद की ओर चल पड़ा।" अतः कहा जा सकता है कि उत्तर संरचनावाद उत्तर आधुनिक संस्कृति की उपज है। उत्तर संरचनावादी व्याख्याओं ने हिन्दी आलोचकों को नए सिरे से सोचने पर विवश किया है। जिसे पुराने प्रतिमानों को छोड़कर आलोचना का नवीन शास्त्र सामने आया।

उत्तर संरचनावाद ने सम्पूर्ण मानव जाति को प्रभावित किया है। कृष्णदत्त पालीवाल उत्तर संरचनावाद के प्रभाव, जिससे सम्पूर्ण मानवता प्रभावित हुई है, को समझाते हुए कहते हैं कि, "उत्तर आधुनिकतावाद और उत्तर संरचनावाद का ऐसा भूत हम पर सवार हुआ है कि अपना सब कुछ गंवाने को तैयार हैं। हमारी अपनी हीनताएँ हमें स्वराज में चिन्तन करने ही नहीं देती। अन्यथा सोचिए राजशेखर कविता के पाठ की बात करते हैं। उनकी घोषणा है कि कविता वेद की तरह है, वेद या श्रुति में जिस तरह पाठ का महत्त्व है– उसी तरह कविता में भी माना जाना चाहिए। वेद के मंत्रों में एक–एक शब्द या पद के उच्चारण, आरोह–अवरोह, लयविधान का महत्त्व है– उसी तरह कालिदास–भवभूति–निराला और अज्ञेय–धूमिल और उदयप्रकाश को पढ़ना चाहिए। यह कार्य हिन्दी आलोचना–विमर्श में हमने किया ही नहीं।" अतः कहा जा सकता है कि उत्तर संरचनावाद में कविता पर

अपठनीयता, गद्य की बंजरता, राजनीतिज्ञों की भाड़–कला और असमर्थ अर्थ–लय विधान का जो दोष लगाया जाता है–उससे भारतीय काव्यशास्त्र बचने का सन्देश देता है।

नवविमर्शवाद :-

सच्चा साहित्यकार अपनी वैयक्तिकता को पिघला कर उसे समाजीकृत रूप में प्रस्तुत करता है। साहित्य के सन्दर्भ में नवविमर्शवाद साहित्य आधुनिक काल की देन है। नवविमर्शवाद ही समकालीन साहित्य की शक्ति है। डॉ. नगेन्द्र नवविमर्शवाद साहित्य को उत्तर आधुनिक विमर्शों के माध्यम से समझाते हुए कहते हैं कि, "पश्चिमी यूरोप और अमरीका में सातवें–आठवें दशक में विभिन्न उत्तर–आधुनिक विमर्शों ने जन्म लिया। हमारे यहाँ इन्हें पहुँचने में लगभग दो–ढाई दशक लग गये। हमारे यहाँ इनकी चर्चा बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में प्रारम्भ हुई और अभी चल रही है। अभी तक इन्होंने हिन्दी साहित्य को उतना प्रभावित नहीं किया है जितना आधुनिकता ने किया था। फिर भी इनका कुछ न कुछ प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया है। अतः उत्तर आधुनिक विमर्शों से परिचित होना हमारे लिए अनिवार्य हो गया है।" अतः कहा जा सकता है कि नवविमर्शवाद साहित्य में नवीन–नवीन वादों को लेकर आया जिससे साहित्य नवीन विचार विमर्शों से प्रभावित होता रहा है।

आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल ने नवविमर्शवादी अवधारणा के अन्तर्गत उत्तर संरचनावाद, उत्तर आधुनिकतावाद, दलित विमर्श, भाषा विमर्श, स्त्री विमर्श, बाज़ारवाद, फ्रॉयडवाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, यथार्थवाद आदि समस्त नवविमर्शवाद का चिन्तन–विश्लेषण साहित्य में किया है। कृष्णदत्त पालीवाल विमर्श को कृति पर विभिन्न दृष्टियों से विचार करना मानते हैं। उनके अनुसार, "यहाँ विमर्श का अर्थ है कृति पर कई कोणों, दृष्टियों, अर्थध्वनियों, सांकेतिकताओं से समग्रता में विचार करना। उधर पश्चिम की उत्तर–आधुनिकतावादी आलोचना में डिस्कोर्स या विमर्श एक भारी फैशन से गाजे–बाजे के साथ उपस्थिति दर्ज़ करा रहा है। हमारी चिन्तन परम्परा में विचार–विमर्श का अर्थ बहुत गहरा, बहुआयामी शब्द में परम्परा में न जाने कब से अनुस्थूल चला आ रहा था। पहले धार्मिक प्रवचन से भी विचार विमर्श जुड़ा था और दार्शनिक साहित्यिक चिन्तन से भी। जिसमें विषय के अच्छे–बुरे अनेक पहलुओं पर विचार–विमर्ष होता था– चाहे नाना पुराण, वेद, उपनिषद्, रामायण–गीता, प्रवृत्ति–निवृत्ति, निगुर्ण–सगुण, लोक और शास्त्र वैष्णव–शैव–शाक्त परम्पराओं पर विमर्श है।" अतः कृष्णदत्त पालीवाल स्वीकारते हैं कि हिन्दी साहित्य में विमर्श की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। जिससे कृति में विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया जाता रहा है।

नवविमर्शवाद साहित्य का स्वरूप पाश्चातय साहित्य से उत्पन्न हुआ माना जाता है। कृष्णदत्त पालीवाल नवविमर्शवाद साहित्य के स्वरूप को पाश्चात्य साहित्य से उद्‌भव हुआ मानते हैं। उनके अनुसार, "नयी कविता के वैयक्तिकतावाद, क्षणवाद, दादावाद, प्रभाववाद, रूपवाद, अतियथार्थवाद, मानववाद और अस्तित्ववाद आदि पर सारा प्रभाव पाश्चात्य चिन्तकों से आया है। इस प्रकार नये साहित्य की पृष्ठभूमि में पाष्चात्य प्रभाव की छाया काफी गहरी व्यापक एवं स्पष्ट है। यह चिन्तन मात्र सैद्धान्तिकता के स्तर तक न रहकर व्यावहारिकता के रूप में विकसित दृष्टिगोचर होता है। यह नया चिन्तन विष्व की समसामयिक समस्याओं, प्रष्नकुलताओं, परिस्थितियों, वादों, सिद्धान्तों एवं विचारधारात्मक संधानों से जुड़ कर नये विश्व–बोध के रूप में हमारे साहित्य एवं समीक्षा का अपना अंग बनता जा रहा है। हिन्दी का नया समीक्षाशास्त्र प्रभाव–अप्रभाव के चक्कर से मुक्त होकर व्यापक स्तर पर विश्व–काव्यशास्त्र का एक नया चेहरा निर्मित कर रहा है। इस चेहरे में अस्तित्ववादी आलोचना, नयी

आलोचना, मिथक आलोचना, नव्य अरस्तूवादी आलोचना, समाजशास्त्रीय आलोचना आदि से एक मिला–जुला ठोस रूप फूट–फट रहा है।" अतः कहा जा सकता है कि कृष्णदत्त पालीवाल स्वीकारते हैं कि हिन्दी में नवविमर्शवाद की उत्पत्ति पाश्चात्य साहित्य चिन्तन की देन है जिसका प्रभाव सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों स्तरों पर रहा है।

उत्तर आधुनिकतावाद नवविमर्शवाद साहित्य को स्पष्ट करने का सर्वोत्तम माध्यम है। नवविमर्शवाद के स्वरूप को कृष्णदत्त पालीवाल उत्तर आधुनिकता के माध्यम से समझाते हुए कहते हैं कि, "उत्तर–आधुनिकतावाद एक ऐसा ग्लोबल खेल है जिसमें हम सब शरीक हैं। वह पूंजी की गुलामी से मुक्ति का कोई रास्ता नहीं है। समस्त बौद्धिकतावाद अपनी नियति में बिकाऊ माल बनकर रह गया है। मार्क्स के मूल्यावादी सिद्धान्त की अर्थवत्ता खत्म की गई है। जब पूंजीवाद की नयी अवस्था ने उपभोक्ता समाज में वस्तुओं के केवल चिंीं में बदलकर दम लिया है। अब तो उपभोग ही सामाजिक संरचना का सत्य है।" अतः कहा जा सकता है कि पालीवाल स्वीकारते हैं कि साहित्य में नवविमर्शवादों के आने से जहाँ एक ओर साहित्य का स्वरूप विकसित हुआ वहीं दूसरी तरफ उसके दुष्प्रभावों ने साहित्य, समाज एवं संस्कृति को अत्यधिक प्रभावित किया है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कृष्णदत्त पालीवाल की साहित्य के विशिष्ट वादों सम्बन्धी आलोचना दृष्टि अत्यधिक गहरी है। उन्होंने आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकतावाद में उपनिवेशवाद, संस्कृति, भारतीयता, पश्चिम की नकल, पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से उपज एवं तकनीकी माध्यम को महत्त्वपूर्ण माना है। संरचनावाद एवं उत्तर संरचनावाद को कृष्णदत्त पालीवाल पश्चिमी चिन्तन, संरचनावाद के प्रवर्तन, भाषा, नवीन विश्व की पद्धति, औद्योगिकीकरण एवं सम्पूर्ण मानव जाति को प्रभावित करने वाली पद्धति के माध्यम से समझाने का प्रयास करते हैं। नवविमर्शवाद को कृष्णदत्त पालीवाल नवीन–नवीन विमर्शों, पाश्चात्य साहित्य से उत्पन्न एवं उत्तर आधुनिकतावादी विमर्शों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास कृष्णदत्त पालीवाल करते हैं। अतः कृष्णदत्त पालीवाल का विभिन्न वादों सम्बन्धी चिन्तन नवीन–नवीन दृष्टि को समन्वित करने वाला चिन्तन है।

सन्दर्भ संकेत :–

1. कृष्णदत्त पालीवाल : हिन्दी आलोचना समकालीन परिदृश्य, पृ. 39
2. कृष्णदत्त पालीवाल : आलोचक अज्ञेय की उपस्थिति, पृ. 145
3. कृष्णदत्त पालीवाल : सीय राममय सब जग जानी, पृ. 153
4. सम्पा. कृष्णदत्त पालीवाल : आधुनिकता संवेदना और सम्प्रेषण, पृ. 15
5. कृष्णदत्त पालीवाल : उत्तर आधुनिकता की ओर, पृ. 49
6. कृष्णदत्त पालीवाल : दलित साहित्य बुनियादी सरोकार, पृ. 85
7. कृष्णदत्त पालीवाल : हिन्दी आलोचना का उत्तरआधुनिक विमर्श, पृ. 164
8. कृष्णदत्त पालीवाल : उत्तर आधुनिकता की ओर, पृ. 126
9. कृष्णदत्त पालीवाल : हिन्दी आलोचना का उत्तर–आधुनिक विमर्श, पृ. 126
10. कृष्णदत्त पालीवाल : उत्तर आधुनिकवाद और दलित साहित्य, पृ. 45
11. कृष्णदत्त पालीवाल : उत्तर आधुनिकता की ओर, पृ. 18
12. कृष्णदत्त पालीवाल : हिन्दी आलोचना समकालीन परिदृश्य, पृ. 130, 131
13. कृष्णदत्त पालीवाल : हिन्दी आलोचना उत्तर आधुनिक विमर्श, पृ. 23
14. सम्पा. डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 417
15. कृष्णदत्त पालीवाल : हिन्दी आलोचना का उत्तर आधुनिक विमर्श, पृ. 30
16. कृष्णदत्त पालीवाल : हिन्दी आलोचना के नये वैचारिक सरोकार, पृ. 425
17. कृष्णदत्त पालीवाल : हिन्दी आलोचना समकालीन परिदृश्य, पृ. 155

मोबाईल : +91–94184 86095, ई.मेल : bhautanirvanaspail@gmail.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 130-133

हिन्दी और उर्दू ग़ज़ल में समाजिक और राजनैतिक परिदृश्य

(फैज़ अहमद फैज़ और दुष्यंतकुमार की गज़ल के विशेष संदर्भ में)

–मेराज अहमद खाँ
शोधछात्र, हिन्दी विभाग टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

Abstract :-

फैज़ अहमद फैज़ और दुष्यंतकुमार हिन्दी और उर्दू के न सिर्फ मशहूर बल्कि हिन्दी और उर्दू गज़ल को एक नयी दिशा और दशा देने वाले अदभुत ग़ज़ल विधा में लेखन कर के इन्होने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनायी है। दोनो कवि न केवल भारत–पाक के प्रसिद्ध कवि है बल्कि दुनिया भर के साहित्य प्रेमियों में इनका नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। ग़ज़ल विद्या के मध्यम से इन दोनो ने सामाजिक राजनैतिक परिदृश्य की सशक्त आभिव्यक्ति कि है दोनो ने आम जनता के लिये लिखा है। सामाजिक, राजनैतिक, प्रेम, कुण्डा, भ्रष्टाचार, देश प्रेम आपातकालीन परिस्थिति आदि कई विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है।

भूमिका :–

फैज़ अहमद फैज़ सेसी प्रतिभा के शायर थे जो जीवन की वास्ताविकता को वास्तविक नजरिये से देखते थे उन्होने अपने समय में सामाजिक बुराइयो का खुले आम विरोध किया। फैज़ ने अपनी ग़ज़लो और नज्मों के माध्ययम से राजनैतिक भ्रष्टाचार की बुनियादे हिला दी। फैज़ ने आधुनिक उर्दू ग़ज़ल को एक नई ऊचाई दी। 1951–1955 की जेल में कैद के दौरान लिखी हुयी उनकी कविताए व ग़ज़ले बाद में बहुत लोकप्रिय हुयी। इन रचनाओ को ''दस्तेसबा'' (हवा का हाथ) तथा ''जिन्दाननामा'' (कारावास का व्योरा) नाम से प्रकाशित किया गया इनमे उस समय के शासक के विरोध में काफी रचनाए सम्मिलित है। पिछले दिनों फ़ैज की ''लाजिम है हम भी देखेगे'' नज्म का देश भर में काफी चर्चा रहा। ऐसा पहली बार हुआ है कि जब किसी कवि की किसी रचना के लिए IIT कानपुर जैसी एक कमेटी बनाई हो। एक इंकलाबी शायर की हैसियत से फैज़ कहते है।

''बोल की लब आज़ाद है तेरे,
बेल ज़बा अब तक है तेरे।
तेरा सुतवा जिस्म है तेरा,
बोल कि जा अब तक है तेरी।।

वैसे तो किसी रचनाकार को उसकी रचानाओ के लिए याद किया जाता है। परन्तु फैज़ शायरी और अपने व्यक्तित्व दोनो के लिए याद किये जाते है। आज आजादी को भले ही सात दशक से अधिक समय हो गया है परन्तु फैज़ का ये शेर उतना ही नया लगता है जितना देश से अंग्रेजों के जाने के कुछ सालों बाद लगता था।

जिस सवेरे की प्रतीक्षा देशवासियों को आजादी के बाद बरासों से है वो नही आती दिखती तो फैज़ याद आते है।

ये दाग़ दाग़ उजाला ये शब गज़ीदा सहर।
वे इन्तिजार था जिसका ये वो सुबह तो नहीं।।

फैज़ की गज़ल व शायरी के मशहूर होने की वजह उनकी लेखनी में जीवन के उतार चढ़ाव नाइन्साफी के खिलाफ विद्रोह, एक क्राति एक आग। फैज़ के शेर हर भूख से मरते इन्सान की मौत के बाद याद आते है। हर किसान की आत्म हत्या के बाद याद आते है।

''ळर रग–ए खूं के फिर चराग़ां हो,
सामने फिर वो बेनकाब आए।
कर रह था गम ए जहाँ का हिसाब,
आज तुम याद बे हिसाब आए।।'

फैज़ की रचनाएँ में वो विद्रोह है, जो बंदिशो को तोडने इच्छा शक्ति है भ्रष्ट शासन पर जो कटाक्ष है वो सत्ताधारियों को भले बुरा लगे परन्तु आम जनता को जरुर अपनी लगती है।

निसार मै तेरी गलियों पे ए वतन के जहाँ,
चली है रस्म कि कोई ना सर उठा के चले।
जो कोई चाहने वाला तवाफ को निकले
नजर चुरा के चले, जिस्मों जाँ बचा के चले।

फैज़ अहमद फैज़ न केवल इन्कलाबी शायर को न केवल जमाजियाती (सौन्दर्य के शायर थे फैज़ एक ऐसे कलमकार थे जो जीवन के हर रंग की अक्कासी करते है।

और भी ग़म है जमाने में मोहब्बत के सिवा।
राहते और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा।।

फैज़ के यहाँ हुस्न इश्क, है तो एक क्रान्तिकारी सोच भी है उनकी कविताओं में, गरीबो, मजदूरों की दबी कुचाली आवाजे भी है।

कही कही फैज़ एक ''रुमानी शायर'' की भूमिका में नज़र आते है।
दोनो जहान तेरी मोहब्बत में हार के
वो जा रहा है कोई शबे ग़म गुजार के
वीराँ है मयकदा खुम ओ सागर उदास हैं
तुम क्या गए कि रुठ गए दिन बहार के।

फैज़ के निर्भीक कलमकार रहे हैं उनका निडर रवैया उन्हे अन्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करता है लेकिन उनके अपने मुल्क पाकिस्तान में उनके इस बेबाक व्यक्तित्व के लिए कोई जगह नही थी। परिणाम स्वरुप उन्हे जेल भी जाना पड़ा निर्वासन का दंश भी झेलना पड़ा। जेल की काल कोठरी निर्वासन की पीड़ा भी फैज़ को तोड़ नही सकी। इसके बाद वे अपनी अभिव्यक्तियों में और मुखर होते गये। फैज़ अपने प्रगतीशील और वामपंथी विचारों के साथ चलते रहे। एक अन्तराष्ट्रीय पत्रिका लोटस के साथ फैज़ बहुत लम्बे समय तक जुड़े रहे।

आजादी के बाद विभाजन के समय वे लाहौर चले गए वहाँ लियाकत अली खाँ के तख्तापलट का इन पर आरोप लगा और जेल भी गए।

उसके बाद फैज़ 1955 मे रिहा हुए 1984 मे उनका देहान्त हुआ और उनका आखरी संग्रह ''गुबार–ए–अययाम'' था जो उनकी मृत्यु के पश्चात प्रकाशित हो सका।

गाह जलती रही गाह बुझती रही,
शम–ए–ग़म झिलमिलाती रही रात भर।
कोई खुशबू बदलती रही पैरेहन,
कोई तस्वीर गाती रही रात भर।।

बहुमुखी संपन्न व्यक्तित्व के धनी दुष्यंत कुमार महत्वपूर्ण कवि ओर गलकार के रुप में हिंदी साहित्य के जगत में जाने जाते है। दुष्यंत कुमार हिंदी गजल के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा अपने व्यक्तित्व का परिचय दिखाया है। उनके साहित्य में जीवन के विविध अनुभवों की सशक्त अभिव्यक्ति दिखायी देती है। स्वयं दुष्यंत कुमार कहते हैं, मै एक साधारण आदमी हूँ। इतिहास और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में साधारण आदमी की पीड़ा उत्तेजना, दबाव, अभाव और उसके संबंधो की उलझन को जीता ओर व्यक्त करता हूँ। मेरे लिए मनुष्य की अवमानना सबसे कष्टप्रद है। उस पर मेरी प्रतिक्रिया नितांत व्यक्तिगत ढंग से होती है। इसी दुष्यंतकुमार ने अपनी सषक्त अभिव्यक्ति के लिये गजल विधा में लेखन कि है।

''इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछी है
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।''

कुछ चंद लोग ही अपना जीवन अपनी मर्जी से जी पाते हैं। मृतप्राय समाज और अपनी मर्जी से जीवन जीने वाले लोगो के बारे में वो कहते है।

यहाँ तो सिर्फ गूँगे और बहरे लोग बसते है –

खुदा जाने यहाँ पर किसतरह जलसा हुआ होगा।
एक स्थान पर वे कहते है।
कहा तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए।
कहाँ चिराग मे मयस्सर नहीं शहर के लिए।।

दुष्यंत कुमार जो भ्रष्ट है उसे तोड़ कर नष्ट करना चहते है और नई समाज की व्यवस्था की स्थापना करना चाहते है।

''सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नही
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नही ंतो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।''

गाँवो में बिजली, पानी, पक्की सड़के बनवाने के झूठे वायदे देकर वोट की राजनीति का चक्कर चलाने वाले राजनैतिक लोग दिखाई देते हैं। अब तो लोग इतने अब तो लोग इतने असुरक्षित है कि अपने घरों के बाहर नही आते खुलकर बाते भी नहीं करते।

''इस शहर मे हो कोई बारात, हो या वारदातें
अब किसी भी बात पर खुलती नहीं है खिड़कियाँ।''

निष्कर्ष :-

हिन्दी उर्दू भाषा के गजल कार दुष्यंत कुमार और फैज़ अहमद फैज़ ने अपनी गजल में सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य दर्शाया है। अपने देश प्रेम को अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार दोनो ने समस्त जनता और देश के भविष्य को लेकर चिंता व्यक्त की है, वे आज भी प्रासंगिक लगती है।

संदर्भ :-

1. कुमार दुष्यंत (1999) साये में धूप राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 93–98
2. दुष्यंत कुमार व्यक्तित्व और कृतित्व, शांति प्रकाशन, दिल्ली।
3. फैज़ अहमद फैज़ (1999) आज कल पत्रिका, दिल्ली।
4. फैज़ अहमद फैज़ अनदाजे गजल (1955) लखनऊ।

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 134-136

भारत में गुरूकुल की शिक्षा पद्धति के लाभ

-Pardeep
M.D.University Rohtak

भूमिका :- भारत में प्राचीनकाल में शिक्षा व्यवस्था जंगलों में महात्माओं के पास दी जाती थी। जो मंत्रों के उच्चारण के साथ देते थे। उसके बाद शिक्षा गुरूकुलों में प्रदान की गई। गुरूकुल पद्धति के विषय में गुरू के घर जाकर शिक्षा प्राप्त करना था। गुरूकुल क्या होता है, वहां की दिनचर्या, अध्यापन पद्धति कैसी होती है? ये सब हम इस शोध के बारे में जानेगें। प्रसिद्ध आचार्यों के गुरूकुल में पढ़े हुए छात्रों का सब जगह बहुत सम्मान होता था। राम ने ऋषि विशिष्ट के यहां रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। प्राचीन भारत के गुरूकुलों के अन्तर्गत तीन प्रकार की शिक्षा संस्थांए थी :-

1. गुरूकुल- जहॉ विद्यार्थी आश्रम में गुरू के साथ रहकर विद्याध्ययन करते थे।
2. परिषद- जहां विशेषज्ञों द्वारा शिक्षा दी जाती थी।
3. तपस्थली- जहां बड़े-बड़े सम्मेलन होते थे और सभाओं तथा प्रवचनों से ज्ञान अर्जन होता था। नैमिषारण्य ऐसा ही एक स्थान था।

गुरूकुल का शाब्दिक अर्थ है 'गुरू का परिवार' अथवा 'गुरू का वंश' अर्थात गुरू के पास रहकर शिक्षा ग्रहण करना। गुरूकुल प्रायः ब्रहाम्ण ग्रहस्थों द्वारा गांवों अथवा नगरों के भीतर तथा बाहर दोनों ही स्थानों में चलाए जाते थे। धनी और गरीब सभी योग्य विद्यार्थियों के लिए गुरूकुलों के द्वार खुले रहते थे। उनके भीतर का जीवन सादा, श्रद्धापूर्ण, भक्तिपरम और त्यागमय होता था। शिष्य गुरू के पास रहकर सीखता था। वैदिक शिक्षा के विरण के लिए गुरूकुल चलाते। यह परंपरा प्रायः अधिकाशं शासकों ने आगे जारी रखी और दक्षिण भारत के ब्रहाम्णों को दान में दिए गए ग्रामों में चलने वाले गुरूकुल और उनमें पढ़ाई जाने वाली विधाओं के अनेक अभिलेखें में वर्णन मिलते हैं। गुरूकुलों के ही विकसित रूप तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वलवी के विश्वविद्यालय थे। भारत में गुरूकुल शिक्षा पद्धति के बहुत लाभ रहे हैं जो इस प्रकार हैः-

महिला शिक्षा में सुधार :- भारत में सारे गुरूकुल गांव में खोले गए थे। जो महिलाओं के लिए बहुत आसानी से शिक्षा ग्रहण करने में सहायक थे। क्योंकि उस समय गांव के लोगों की सोच रूढ़िवादी थी। जिसके कारण महिलाओं को पढ़ाना नहीं चाहते थे। लेकिन गांव में गुरूकुल होने के कारण अपनी बेटियों को गुरूकुलों में भेजने लगे और उनको शिक्षा दिलाने का काम करने लगे। इससे न केवल महिलाओं को शिक्षा प्राप्ति हुई, बल्कि उनको अपने अधिकारों के बारे में जागृति हुई।

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का विस्तार :- पहले शिक्षा अमीर लोगों के द्वारा ही ग्रहण की जाती थी। लेकिन

गांव में गुरूकुल खुल जाने के बाद अब गरीबों के बच्चे भी शिक्षा ग्रहण कर लेते थे। गांव के बच्चों को अब शहर में जाने की आवश्यकता नही रही। वे अपने घर के काम के साथ–2 अपनी पढ़ाई भी कर सकते थे। इससे उन बच्चों का सर्वागीण विकास हो गया। वे खेलों तथा अन्य कार्यक्रमों में भी भाग ले सकते थे।

गुरूकुलों द्वारा चरित्र निर्माण :– गुरूकुलों के द्वारा बच्चों को संस्कार प्रदान किए जाते थे। जिनमें मॉ–बाप व बड़ों गुरूजनों का सम्मान करना सिखाया जा था। इसलिए उनका चरित्र निमार्ण होता है। इन गुरूकुलों में बच्चों को बचपन से ही सारी बातों को सिखाया था। फिर वो समाज में अच्छे काम करते थे। लेकिन अब की शिक्षा में इन सारी बातों का अभाव है। क्योंकि आज के बच्चों को संस्कारों के बारे में नहीं बताया जाता है। बल्कि उनको ज्ञान के नाम पर रटाया जाता है। गुरूकुलों में बच्चों को व्यवहारिक ज्ञान दिया जाता था।

नैतिक मूल्यों का ज्ञान :– गुरूकुलों के द्वारा बच्चों में नैतिक मूल्यों का ज्ञान दिया जाता था। इसके कारण समाज में चोरी व गुनाह और गलत रास्तों पर जाने से रोकते थे। क्योंकि बच्चों के अन्दर शुरू से ही नैतिक मूल्यों से परे जाने से वे गलत रास्ते पर नहीं जाते थे। गुरूकुलों में गुरू तथा समाज में बड़े लोगों का आदर करना चाहिए ये बातें सिखाई जाती थी।

शारीरिक तथा स्वस्थ्य शिक्षा पर ध्यान :– गुरूकुलों में बच्चों को सुबह जल्दी उठाया जाता है। फिर उनको यज्ञ व योग, आसन व प्रणायाम करवाए जाते हैं। जिसके कारण उनका स्वास्थ्य सही रहता है और शरीर मजबूत रहता है और विद्यार्थी खेलों में भाग लेते हैं और बहुत सारे ईनाम जीतते हैं। एक स्वच्छ शरीर में स्वस्थ दिमाग रहता है। बच्चों को कठिन परिश्रम करवाया जाता है। जिसके कारण उनके जीवन में आने वाली परेशानी से लड़ सकेगें।

समता एवं भाईचारा व राष्ट्रवाद की भावना :– बच्चों में बचपन से ही सभी को एक साथ बैठाया जाता है और एक साथ खेलते हैं। जिसके कारण किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता है। सबको समान व्यवहार से काम करवाया जाता है। भारत में गुरूकुल शिक्षा पद्धति के बहुत लाभ रहे है जो इस प्रकार हैः–

गुरूकुलों के द्वारा छुआछात को समाप्त करना :– इनमें सभी बच्चों को एक साथ रखा जाता था। जिसके कारण सभी एक साथ खाना–पीना होता हे और किसी के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था। गुरूकुलों में अमीर–गरीब सबको एक साथ शिक्षा प्रदान की जाती थी। उनके कारण समाज में भी भाईचारा को बढ़ावा दिया।

महिलाओं को अधिकार दिलाए :– महिलाओं को शिक्षा से वचित किया जाता था। जिसके कारण उनके साथ बहुत भेदभाव होता था। गुरूकुलों में शिक्षा प्रदान की गई। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं को अपने अधि ाकारों का पता चला और अब महिलाएं कम उम्र में शादी नहीं करती थी और विधवा विवाह की शुरूआत भी की गई और महिलाओं को समाज में एक उच्च अधिकार व सम्मान मिला। इन गुरूकुलों की वजह से।

गुरूकुलों के द्वारा शिक्षा संस्कृति और धर्म से प्रभावित भी जो प्राचीन भारतीय समाज के अहम तत्व थे। प्रोफैशनल, सोशल, धार्मिक और अध्यात्मिक शिक्षा पर फोकस करते हुए इसमें सम्रग शिक्षा पर जोर दिया जाता था। गुरूकुलों में चुने जाने का आधार बच्चों का रवैया और नैतिक मजबूरी थे। गुरूकुलों में कला साहित्य, शास्त्र और दर्शन की जानकारी के साथ छात्रों को व्यावहारिक हुनर भी सिखाया जाते थे और अलग–अलग कामों के लिए तैयार किया जाता था। गुरूकुल शिक्षा प्रणाली से छात्र का पूरी तरह से विकास होता था और जोर शिक्षण

के साइकलोजिकल या मनोवैज्ञानिक तरीके पर होता था।

गुरूकुल शिक्षा से लाभ यह हुआ कि इसके बच्चों का सम्पूर्ण विकास व व्यक्तिगत विकास होता है। बच्चों में प्रकृति और समाज के प्रति जागरूकता का ज्ञान होता है। यहां पर धर्मशास्त्र की पढ़ाई से लेकर अस्त्र की शिक्षा भी सिखाई जाती है। योग साधना और यज्ञ के लिए गुरूकुल को एक अभिन्न अंग माना जाता है। यहां पर हर विद्यार्थी हर प्रकार के कार्य को सीखता है और शिक्षा पूर्ण होने के बाद ही अपना काम रूचि और गुण के आधार पर चुनता था। गुरू के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए कहा गया है कि गुरू ब्रम्हाः, गुरू विष्णु, गुरू देवो महेश्वर।

गुरूकुलों के प्राकृतिक वातावरण में अह्म जानकारी जिसमें सहायक जानकारी दी जाती थी। लर्निंग स्किल जैसे क्राफ्ट, डांसिग या सिंग्गिन पर जोर और हर छात्र को उनके मनपसंद को पहचानने के लिए उत्साहित करना। साथ में उनके स्किल को और विकसित करना था। छात्रों को अपने रोजमर्रा के काम खुद ही करने होते थे। जिसकी वजह से वह आत्मनिर्भर बनते थे। इस तरह से उन्हें जीवन निर्वाह के लिए जरूरी स्किल सीखने में मदद मिलती थी। व्यक्तिगत विकास, बौद्धिकता और आत्म विश्वास पर काम किया जाता था। छात्र अपने विकास के लिए सोचने की योग्यता भी विकसित कर लेते थे।

निष्कर्ष :-

आज की आधुनिक शिक्षा में बच्चे को ज्ञान तो दिया जाता है। लेकिन उसका जीवन में महत्व कम होता है। क्योंकि इस शिक्षा पद्धति में बच्चे को रटाया जाता है ना कि व्यवहारिक ज्ञान दिया जाता है। लेकिन गुरूकुल शिक्षा पद्धति में बच्चे को एक संस्कारी मनुष्य बनाया जाता था जो समाज में जाकर हर वर्ग का भला करता था। लेकिन ये भी सच है कि आधुनिक शिक्षा रोजगार के लिए जरूरी है। इसलिए इसको ग्रहण करना पड़ता हे। अगर हम आधुनिक शिक्षा की बहुत सारी अच्छे बातें और गुरूकुल शिक्षा के संस्कार लेकर एक नए शिक्षा व्यवस्था बनाते है तो वह मानव जाति के लिए अच्छी होगी। इस शौध में हमने देखा कि किस प्रकार गुरूकुल शिक्षा पद्धति ने माना जाति का विकास किया। इसने महिला शिक्षा, ग्रामीण शिक्षा, बाल शिक्षा के साथ–साथ प्रतिएक वर्ग का विकास किया है। गुरूकुल शिक्षा ने न केवल लोगों को ज्ञान दिया बल्कि एक समाज में सभ्य नागरिक को भी पैदा किया है। अन्त में हम कह सकते हैं कि गुरूकुल शिक्षा के द्वारा लाखों बच्चों की जिन्दगी में रोशनी भर दी है और महिलाओं की शिक्षा के रूप में एक वरदान दिया है।

सदंर्भ सूचि :-

1. प्रसाद, कालिका, 'बृहत हिन्दी कोष' वाराणसी, ज्ञानमंडल पृ0–147
2. एस.पी. 'गुरूकुल एक नजर में' नई दिल्ली
3. 'Joshi Ankur' Elementary Education in Bharat Study of a Gurukul New Delhi 2010.
4. Gurukul Patrika, April-July-1940-41, Ank, 10
5. Gunjun H. Shakshi, 1971 "Social and Humanistic life in India".
6. Dainik Jagran 5 June, 2010
7. B.Behl 'The Modern Gurukul' New Delhi 2019
8. R.K. Mookerji "Ancient Indian Education" New Delhi 2010
9. Report, Haryana Development Committee, Find Report Chandigarh, Govt. of Haryana 1966.

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 137-140

नई शिक्षा नीति 2020 पर एक नजर

-Parvender Singh
History Deptt. Kurukshetra University

भूमिका :-

शिक्षा का मानव जीवन में बहुत महत्त्व। भारत में शिक्षा की शुरूआत हड़प्पा काल से लेकर आज तक चल रही है। नालंदा व तक्षशिला विश्वविद्यालयों ने विश्वभर के लोगों को शिक्षित किया। प्राचीन काल की शिक्षा हमारी बहुत समृद्ध थी। लेकिन मध्यकाल में हमारी शिक्षा व्यवस्था का पतन हो गया। फिर आधुनिक भारत की शिक्षा अग्रेंजो की देन है। समय–समय पर कई प्रकार की शिक्षा नीतियां बनी हैं। लेकिन 2020 की नई शिक्षा नीति भारतीय शिक्षा का ढ़ाचां ही बदल देगी। इसमें बहुत सारे अच्छे बदलाव हैं। इस शोध में हम नई शिक्षा नीति 2020 के बारे में अध्ययन करेंगे।

शिक्षा पूर्ण मानव क्षमा को प्राप्त करने एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौतिक पहुंच प्रदान करना वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक सरंक्षण के संदर्भ में भारत की सत्त प्रगति और आर्थिक विकास की कुंजी हे। सार्वभौमिक उच्चतर स्तरीय शिक्षा वह उचित माध्यम है, जिससे देश की समृद्ध प्रतिभा और संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्द्धन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की भलाई के लिए किया जा सकता है। अगले दशक में भारत दुनिया का सबसे युवा जनसंख्या वाला देश होगा और इन युवाओं को उच्चतर गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। भारत द्वारा 2015 में अपनाए गए सत्त विकास एजेंडा 2030 के लक्ष्य(एस.डी.जी. 4) में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास एजेंडा के अनुसार विश्व में 2030 तक सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवन–पर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने का लक्ष्य है। इस तरह के उदात्र लक्ष्य के लिए संपूर्ण शिक्षा प्रणाली को समर्थन और अधिगम को बढ़ावा देने के लिए पुर्नगठित करने की आवश्यता होगी। ताकि सत्त विकास के लिए 2030 एजेंडा के सभी महत्त्वपूर्ण टार्गेट और लक्ष्य प्राप्त किए जा सकें।

भारत में नई शिक्षा नीति 2020 का मुख्य लक्ष्य यह है कि हमारे स्कूलों से जो बच्चे निकल रहे हैं उनके अन्दर व्यवहारिक ज्ञान के साथ–साथ कौशल भी होना चाहिए। ताकि वा जीवन की हर चुनौतियों से लड़ सकें। भारत में 1986 में शिक्षा नीति बनाई थी। फिर 1992 में कुछ संशोधन किया था। लेकिन सबसे ज्यादा परिवर्तन 2020 की शिक्षा नीति में किया गया है। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है। जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह नीति भारत की

परम्परा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों, जिनसे एस.डी.जी. 4 शामिल हें के संयोजन में शिक्षा व्यवस्था उसके नियमन और गवर्नेंस सहित सभी पक्षों के सुधार और पुर्नगठन का प्रस्ताव रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रत्येक व्यक्ति में निहित रचनात्मक क्षमताओं के विकास पर विशेष जोर देती है। यह नीति इस सिद्धांत पर आधारित है कि शिक्षा से न केवल साक्षरता और संख्याज्ञान जैसी ''बुनियादी क्षमताओं'' के साथ–साथ 'उच्चतर स्तर' की तार्किक और समस्या–समाधान संबंधी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास होना चाहिए। बल्कि नैतिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर भी व्यकित का विकास होना आवश्यक है।

प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परम्परा के आलोक में यह नीति तैयार की गई हे। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परंपरा और दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान अर्जन नहीं बल्कि पूर्ण आत्मज्ञान और मुक्ति के रूप में माना गया था। लक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभि जैसे प्राचीन भारत के विश्व–स्तरीय संस्थानों ने अध्ययन के विविध क्षेत्रों में शिक्षण और शोध के ऊंचे प्रतिमान स्थापित किए थे और विभिन्न पृष्ठभूमि और देशों से आने वाले विद्यार्थियों और विद्वानों को लाभान्वित किया था। इसी शिक्षा व्यवस्था ने चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, चक्रपाणि दत्ता, माधव, पाणिनी, पंतजलि, नागार्जुन, गौतम, पिंगला, शंकरदेवी, मैत्रेयी, गार्गी और थिरूवल्लुर जैसे अलेकर महान विद्वानों को जन्म दिया।

मूलभूत सिद्धांत जो बड़े स्तर पर शिक्षा प्रणाली और साथ ही व्यक्तिगत संस्थानों दोनों का मार्गदर्शन करेंगे, ये हैं :–

1. हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति, पहचान और उनके विकास हेतू प्रयास करना– शिक्षकों और अभिभावकों को इन क्षमताओं के प्रति संवेदनशील बनाना। जिससे वे बच्चे की अकाद्मिक और अन्य क्षमताओं में उसके सर्वागींण विकास पर भी पूरा ध्यान दें।
2. बुनियादी साक्षरता और संख्याज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना– जिससे सभी बच्चे शिक्षा 3 तक साक्षरता और संख्याज्ञान जैसे सीखने के मूलभूत कौशलों को हासिल कर सके।
3. लचीलापन– ताकि शिक्षार्थियों में उनके सीखने के तौर–तरीके और कार्यक्रमों को चुनने की क्षमता हो और इस तरह वह अपनी प्रतिभा और रूचियों के अनुसार अपना रास्ता चुन सकें।
4. कला और विज्ञान के बीच, पाठ्यक्रम और पाठ्योत्तर गतिविधियों के बीच, व्यावसायिक और शैक्षिण धाराओं आदि के बीच कोई स्पष्ट अलगांव न हो। जिससे ज्ञान क्षेत्रों के बीच हानिकारक ऊंच–नीच और परस्पर दूरी एवं असबद्धता को दूर किया जा सके।
5. सभी ज्ञान की एकता ओर अखंडता को सुनिश्चित करने के लिए एक बहु–विषयक दुयिा के लिए विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कला, मानविकी और खेल के बीच एक बहु विषयक और समग्र शिक्षा का विकास।
6. अवधारणात्मक समझ पर जोर, न कि रंटत पद्धति केवल परीक्षा के लिए पढ़ाई।
7. रचनात्मक और तार्किक सोच, तार्किक निर्णय लेने और नवाचार को प्रोत्साहित करने के लिए।
8. नैतिकता, मानवीय और संवैधानिक मूल्य– जैसे सहानुभूति, दूसरों के लिए सम्मान, स्वच्छता, शिष्टाचार,

लोकतांत्रिक भावना, सेवा की भावना, सार्वजनिक संपत्ति के लिए सम्मान, वैज्ञानिक चिंतन, स्वतंत्रता, जिम्मेदारी, बहुलतावाद, समानता और न्याय।

9. बहु भाषिकता और अध्ययन अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन।
10. जीवन कौशल– जैसे आपसी संवाद, सहयोग, सामूहिक कार्य और लचीलापन।
11. सीखने के लिए सत्त मूल्यांकन पर जोर– इसके बजाए की साल के अंत में होने वाली परीक्षा को केन्द्र में रखकर शिक्षण हो, जिससे कि आज की ''कोचिंग संस्कृति'' को ही बढ़ावा मिलता है।
12. तकनीकी के यथासंभव उपयोग पर जोर– अध्ययन–अध्यापन कार्य में, भाषा संबंधी बाधाओं को दूर करने में, दिव्यांग बच्चों के लिए शिक्षा को सुलभ बनाने में और शैक्षणिक नियोजन और प्रबंधन में।
13. सभी पाठ्यक्रम, शिक्षण शास्त्र और नीति में स्थानीय संदर्भ की विविधता और स्थानीय परिवेश के लिए सम्मान, हमेशा ध्यान में रखते हुए कि शिक्षा एक समवर्ती विषय है।
14. सभी शैक्षिक निर्णयों के आधारशिला के रूप में पूर्ण समता और समावेशन–साथ ही शिक्षा को लोगों की पहुंच और सामर्थ्य के दायरे में रखना– यह सुनिश्चित करने के लिए कि शिक्षा के क्षेत्र में सभी छात्र सफलता प्राप्त कर सकें।
15. स्कूली शिक्षा के उच्चतर शिक्षा तक सभी स्तरों के शिक्षा पाठ्यक्रम का तालमेल, प्रारम्भिक बाल्यवस्था देख–भाल तथा शिक्षा से।
16. शिक्षकों और संकाय को सीखने की प्रक्रिया का केन्द्र मानना– उनकी भर्ती और तैयारी की उत्कृष्ट व्यवस्था, निरंतर व्यावसिक विकास और सकारात्मक कार्य वातावरण और सेवा की स्थिति।
17. शैक्षिक प्रणाली की अखंडता, पारदर्शिता और संसाधन कुशलता ऑडिट और सार्वजनिक प्रकटीकरण के माध्यम से सुनिश्चित करने के लिए एक हल्का लेकिन प्रभाव नियामक ढांचा– साथ ही साथ स्वायत्रता, सुशासन और सशक्तिकरण के माध्यम से नवाचार और आउट–ऑफ–द बॉक्स विचारों को प्रोत्साहित करना।
18. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और विकास के लिए उत्कृष्ट स्तर का शोध।
19. शैक्षिक विशेषज्ञों द्वारा निरंतर अनुसंधान और नियमित मूल्याकंन के आधार पर प्रगति की सत्त समीक्षा।
20. भारतीय जड़ों और गौरव से बंधे रहना और जहां प्रासंगिक गले वहां भारत की समृद्ध और विविध प्राचीन और आधुनिक संस्कृति और ज्ञान प्रणालियों और परंपराओं को शामिल करना ओर उससे प्रेरणा पाना।
21. शिक्षा एक सार्वजनिक सेवा है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच को प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार माना जाए।
22. एक मजबूत, जीवंत सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में पर्याप्त निवेश– साथ ही सच्चे परोपकारी निजी और सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहन और सुविधा।

निष्कर्ष :-

भारतीय लोगों में शिक्षा के सुधार के लिए 2020 की नई शिक्षा नीति में ना केवल भारतीय संस्कृति व मातृ भाषा को बढ़ावा दिया है। बल्कि बच्चों में कौशल पैदा करके रोजगार के अवसर पर भी ध्यान दिया गया है। नई शिक्षा नीति 2020 विश्व की सबसे अच्छी शिक्षा नीति है। क्योंकि इसमें विद्यार्थियों को पढ़ाई के साथ रोजगार

प्रदान किया जाएगा। इसमें विद्यार्थी को अपने मनपंसद विषय भी पढ़ कर मौका भी मिलेगा। अगर यह शिक्षा नीति धरातल पर सही तरीके से लागू होती है तो भारत की शिक्षा विश्व में प्रथम स्थान पर होगी। इसके लिए हम सब को एक साथ मिलकर लागू करना होगा और भारत को फिर से विश्व गुरू बनाना होगा।

संदर्भ सूचि :-

1. रिपोर्ट 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार।
2. दा टाईम ऑफ इंडिया 5/9/2020
3. नई शिक्षा नीति 2020 फक्टस जुलाई 30, 2020
4. टी.एस.आर. सुब्रमण्यम समिति की रिपोर्ट 2015
5. https//en Wikipedia.org
6. यशपाल समिति रिपोर्ट 1992

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 141-144

Role of Nature In Hardy's Novels

-Premlata Sharma, Research Scholar
-Dr. Kavita Agnihotri, Research Guide
P.K. University (MP)

Keywords – Nature, Fate, Victorian Age, Fiction.

Abstract –

Love for Nature and the use of natural objects for different literary purposes have been common features of the English literary geniuses. The English people have generally enjoyed the natural background and the same has flowed in their writings. William Wordsworth achieved high watermark as the poet of Nature. Several other poets and writers have also dwelt on the scenes of nature and have picked up their images from the variegated aspects of Nature. Thomas Hardy is such a great novelist that he fuses real poetry in his narrative art. He was the child of the Wessex region and the natural surroundings of this region captivated the poetic eyes of Thomas Hardy time to time. More over Thomas Hardy has projected a view of life, gloomy and serious. He has discovered a definite scheme of life in the suffering of mankind. In order to project his view of life he takes help of natural surroundings of the Wessex region. Sometimes nature is presented with smiling face, another time it is shown with a gloomy face, but everytime it contributes the tragedy of mankind.

The influence of Nature in the early novels is social, as it is related to the behaviour pattern and mannerisms of the characters. People living in a particular society are affected through a particular way of Nature that governs the society. Here Nature is scattered forming a social background in which the characters live. If one tries to violate the social background formed by Nature, one will be punished by Nature. Desperate Remedies is the first published novel of Thomas Hardy, giving ample evidences of nature paintings. Here, Hardy describes the characters using the imagery of nature which continues up to the last novel written by him.

INTRODUCTION :

Thomas Hardy was born on the Egdon Heath, which he made famous in his books, in Dorset, near Dorchester, on June 2, 1840, and died on January 11, 1928. He was delicate as a child and was

taught at home by his mother before he attended grammar school. At sixteen Hardy was apprenticed to an architect, and for many years architecture was his profession although he wrote poetry, his first and last literary love, in his spare time. His first novel was written in 1867, and his first published book, printed at his own expense was a financial failure, yet by 1874 he was convinced that he could earn his living as an author and he retired from architecture, married and devoted himself to writing. Hardy was an extremely productive novelist. In 1896, disturbed by the public outcry over the unconventional subjects of two of his greatest novels, Tess of the D'Urbervilles and Jude the Obscure, he announced that he would never write fiction again, and after that he wrote only poetry.

Thomas Hardy, the well known fiction writer of the late Victorian Age, has scattered his deep and gloomy thoughts about life, he was influenced by Charles Darwin's theory of Origin of Species and the nihilistic ideas of Shopenhour. His mind was obsessed with what he saw in nature, a cruel phenomenon at every next step and untold sufferings without much cause.

In this background he began to read new things of his own concerned designs in Nature and Fate. He saw human life full of miserable episodes. Even a little happiness occasionally visiting the human life was found to be crossed by some unhappiness and misery suddenly engulfing the whole environment within its jaws. In his novels he shows, that sufferings and miseries have their permanent dwellings around the innocent and nature abiding Wessex dwellers. The malevolent working of the mysterious force is manifested through different agents. Sometimes Fate and Chance surprise his characters and at another time Nature and Love also play havoc with the things around his characters, In every case, his protagonist, suffer heavily and get relief only in death.

Queen Victoria was monarch of England from 1837 to 1901, and it has been found convenient to group the writings produced during that long stretch of years as "Victorian". But the classification is too facile because in an age that abounded in great literature and music. The age which bears her name has since been subject to diverse and divided judgment.

The most noticeable feature of Victorian Literature is the concern with specific social problems. The impulse is generally recognized to have started before Victoria came to the throne, with the First Reform Bill (1832). The act of Parliament recognized the economic dominance of the middle class by finally placing direct political power in its hands. The vote was thus extended to all members of this class. At this time the old concepts of 'Whigs', and 'Tory' made way for 'Liberals' and 'Conservatives'.

"In 1829 the Catholic Emancipation Act has been passed; in 1833 slavery was abolished, in 1846 free trade became a national policy with the repeal of corn lays; in 1845 Jews were made eligible for public office; and in 1972 the institution of voting by ballot was inaugurated". The

conservatives were as responsible as the liberals for the passage of these acts; for a long time there was little difference between the two parties. Both were committed to the teaching of utilitarianism, as promulgated by Bentham, that it was necessary to achieve the greatest good for the greatest number. John Stuarts Mill, the son of James Mill, taught that the only reason that can be adduced for limiting the rights of any individual in the community is "to prevent harm to others". "This philosophy of unrestricted individualism vastly increased the holdings of the middle class as well as its material comforts. The British Colonial Empire expanded in Asia and Africa by conquest and Colonization". The Victorian Age, from a working class point of view, is the record of a long struggle of wage-earners to win recognition from the government. A people's Charter was drawn up in 1938, and began the so called Chartist Movement, which demanded universal manhood suffrage, the secret ballot, the abolition of property qualification for Member of Parliament. "Universal Manhood suffrage was perhaps inevitably the foundation of any further progress". Actually it was not until 1917 that the point was won in the Manhood suffrage Bill. Before that act was passed, the decades were punctuated by a series of strikes and riots in urban centres. Though the Chartist movement was for a long time unsuccessful, it served the function of making the general public aware of the problems involved.

OBJECTIVES :-

1. To study the Hardian Scheme of Universe
2. To find out the elemental forces of Nature in his novels
3. To find meaning to his portrayal of Nature
4. To explore the role of Nature in his novels
5. To study & interpret the role of fate in his novels.

HYPOTHESIS :-

1. Fiction reflects the personality and mind of the novelists.
2. Novels are the products of the mind of the novelists.
3. Thomas Hardy's novels reveal his personality and his pessimistic philosophy of life.
4. His novels reveal the role of nature.
5. His novels generalize man to be a dancing puppet in the hands of fate.

RESEARCH METHODOLOGY :-

Sometimes nature is presented with smiling face, another time it is shown with a gloomy face but every time it contribute the tragedy of mankind.

Nature concerns for the both positivity and negativity in the characters of the Novels of Hardy. The study is qualitative in nature. It is designed on the secondary data found available in Hardy's novels and in the research articles available on the various internet sites.

FINDINGS :-

1. Nature concerns for both positivity and negativity in the character of the Novels of Thomas Hardy.
2. In all the novels of Hardy, both Nature and Fate are portrayed as the deciding factors in the life of man.
3. With the setting of the action of his novels in Wessex, he becomes a regional novelist.
4. Fate is produced as the most powerful thing that leads man to uncertainty and unexpected situations.
5. Fate is jealous of man's happiness. All Hardy's characters, whether major or minor ones, fall victims of fate's malice.

REFERENCES :-

1. Hardy, Thomas: Under the Greenwood Tree, Mac & Co. Ltd., St. Martin's Press, New York, 1964.
2. Hardy, Thomas: Far From the Madding Crowd, Mac & Co. Ltd., St. Martin's Press, New York, 1965.
3. Hardy, Thomas: A Pair of Blue Eyes, Surjeet Publications, Delhi, 1988.
4. Hardy, Thomas: Desperate Remedies, Mac & Co. Ltd., St. Martin's Press, New York, 1960.
5. Hardy, Thomas: The Trumpet Major, Penguin Books, 1987.
6. Hardy, Thomas: The Hand Of Etheberta, Mac & Co. Ltd., St. Martin's Press, New York, 1960.
7. Hardy, Thomas: The Return Of the Native, Mac & Co. Ltd., St. Martin's Press, New York, 1968.
8. Hardy, Thomas: The Mayor of Casterbridge, Pau Books Ltd., London, 1968.
9. Hardy, Thomas: A Laodicean, Mac & Co. Ltd., St. Martin's Press, New York, 1951.
10. Hardy, Thomas: Two on a Tower, Mac & Co. Ltd., St. Martin's Press, New York, 1951.

Premalata Sharma

Add: 51/212D/55, K. B. Nagar,

Arjun Nagar, Agra (UP)

Email: baby88sharma@gmail.com

Mob: 8171125169, 9897338655

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 145-149

Indian Culture and Guru Nanak Dev

-Dr Rajesh Kumar Mangla
Associate Professor, NGF College of Engineering &Technology, Palwal

Abstract :-

India is the country which is known for its cultural heritage and the varied diversity of religions and culture. The country has many different religions being followed in the country basically divided into four groups. These groups consist of Hinduism, Sikhism, Muslim and Christianity. Out of these religions, Sikhism is considered as the youngest religion and was founded by the first guru of Sikhism, Guru Nanak. His teachings and the spirituality laid the foundation of the basis on which this religion was formed. India has witnessed many gurus and saints which laid the foundation of so vast and diversified cultural heritage of this country. This article discusses about the cultural heritage of this country and how the teachings and spirituality of the Sikh Guru, Guru Nanak Dev affected the cultural upliftment of this culturally diversified country called India. This article also discusses about the life of Guru Nanak Dev, his teachings, about Sikhism, about his contribution to humanity and ultimately about his death.

Key words :- cultural heritage, Sikhism, spirituality, upliftment,

Introduction :-

According to the history, it was believed that Guru Nanak was the firm believer of the existence of one god and wherever he went, he preached the same. He travelled across many places in South Asia and Middle East. This article generally discusses about his teachings that God is one and also taught to his followers that everyone can reach to god through the true heart and the strong will and meditation. This article will discuss all the details about the life of Guru Nanak Dev and all his teachings. It says that Guru Nanak Dev believed in leading a simple life and always taught his followers to lead a simple and honest life and concentrate on the life based on the inspiration of God. This article also discusses a strong relevance and the impact of the life and the teachings of Guru Nanak Dev on the cultural background and basis of this country. It discusses about the concept of one god and respect for all the religions and human beings that has been advocated by the teachings of Guru Nanak Dev and forms the basis of the cultural heritage of India. (Raina,2002).

Early Life :-

Many researchers have done a lot of work realted to the teachings of Guru Nanak Dev Ji. My this section of the article will discuss about the various stages of the life of Guru Nanak Dev and the impact of those stages in the culture of the country like India which is known for its cultural diversity and the varieties of the religions. Guru Nanak was born in the middle-class family to Mehta Kalu and Mata Tripta in Punjab now called as Pakistan. He was very fond of his sister and spend most of his time with his sister only. From the early childhood only, Nanak was very intelligent and was inclined towards the religious beliefs and the divine subjects and had the great interest in the religious beliefs. Since his childhood only, he had a kind of pure heart and mercy towards everyone and wanted to lead the simple life with very pure heart and soul. Once a priest told him to wear a religious thread but Nanak refused to wear it and said that he can only wear it if this thread is being made of mercy and contentment and wanted the truth to hold the three threads together and then he will wear it.

Nanak had something unique in himself which separated him from rest of the world. (Chilana and Singh, 2002). In 1475, his sister got married to Jai Ram and moved to Sultanpur. As stated, Nanak was very fond of his sister and wanted to stay with his sister for few days and went to Sultanpur to stay with his sister and started working for the employer of his brother in law. He used to go the nearby river for meditation and bath. One day he went to the river and did not return for three days. He actually went to the forest near that river and stayed inside the forest for three days. When he returned back, he looked like a completely different person and started saying that the God is one and there is no Hindu or Muslim. This was the time which is regarded as the time when Nanak gave his first teachings. This laid the foundation of the new religion called "Sikhism".

Sikhism :-

Sikhism as a religion had a very important role in the cultural formation of the country. Sikhism is the religion which believed in helping others. They believed in being humble and to do favors to other people. Sikhism is the religion which believed in simplicity and respect for other religion. It believes in doing for others and not thinking about yourself without doing any discrimination with the other people. Sikhism believed that the god is one and there is no shape, color, face of the god. In fact, the God is invisible and it is there in our own heart and soul and it is wherever we see and believe it to be. Since Guru Nanak was the founder of this religion, so all the basic moral values and the teachings that are associated with the religion of Sikhism is originally given by Guru Nanak in his early teachings.(Duggal and Singh, 1980).

Sikhism is a very important religion as far as the culture of India is concerned, it believed in equality and justice for everybody and respect for all the other religions and also believed in serving

the mankind. All the above stated features are the basis of the culture of any country and plays the important role in the basis of any culture. So, Guru Nanak had the direct relation with the upliftment and the impact on the culture of India as all his teachings who were also the basis of the Sikhism in India had the direct impact on the culture of the country.

Teachings of Guru Nanak :-

Guru Nanak had many teachings that laid the foundation of the cultural heritage of this country. His teachings were basically based on the mercy and kindness towards the humanity and helping other people. The teachings of Guru Nanak also spread the cultural happiness and the prosperity in the world and these teachings were the basis of the spread of the cultural awareness. He said that God is everywhere and the humans should lead the path of spirituality and religion. He also said that every human being is capable of attaining the spiritual perfection by chanting the name of god which can ultimately lead them to god. According to Guru Nanak, there is no need for any priest or the ritual to attain the direct access to the god, in his views by helping others and chanting the name of God, and having mercy on others can help the human being to attain the god and will take him to the actual path that god has shown them. (Singh, 2013)

Guru Nanak's Contributions to Humanity :-

Guru Nanak Dev was considered as one of the most influential and the true preacher of the existence of one god and his teachings. Guru Nanak's teachings and preaching came at the time when the humans were fighting against each other in the war. Guru Nanak was against the violence and while seeing the human beings fighting with each other for very small reasons, he started his journey towards the various parts of the world. He travelled to various places in different times to teach the people about the existence of one god and mercy towards the mankind, and towards helping others. He wanted to teach the love and kindness while giving the message of non-violence and mercy to the human being and wanted teach them that nothing will be attained If the people will keep on fighting with each other.(Nesbitt, 1998). Guru Nanak had many contributions to the culture and humanity for the people.

Out of his many contributions, one was the contribution towards the society by doing the women empowerment and strongly advocating for the rights and the empowerment of the women in the country. He firmly advocated that the women should be given the respect and should be treated as equal to men in the society. He was a very strong believer of the culture and the society of the India. He believed that the men are bound to women and without women there would be no creation on the earth and wanted the society to give the equal importance of women as they give to men. He also believed that women are not less than men in any regards and if given the opportunity, they can even leave the men behind in any field of this world. While all the other religions advocated about the

monasticism to attain the salvation, Guru Nanak brought the new religion into existence that advocated the religion of the middle-class people and which is only based on the equality and the existence of one god. (Raina, 2002)

With his teachings and the increasing popularity, Guru Nanak became the guru and was being followed and liked by the people of almost all the religions and became popular throughout. His teachings were considered as the most useful ones and he attracted a lot of followers towards himself. Not only the Hindus but the Muslim also became his followers and became inspired and affected by his teachings. As the time passed by, the time started approaching when Guru Nanak started approaching towards the end of his life, so for the last rites, both the Hindus and the Muslims wanted to perform the rights according to their tradition and the debate started between both the communities that who will do the last rites of the Nanak. In this race the new community of the Sikh disciples also joined the debate as to how to do the final rites of the Guru.

For finding out the solution, they all went to Guru for the solution and Guru gave them two bunch of flowers each and asked to keep the flowers near him and said that whoever's flowers will remain fresh till next morning, will be allowed to do the final rites. Next morning both the group of people came back to see whose flowers are fresh and were shocked to see that the Guru was not there and he disappeared. The only thing that was left there was the two bunch of flowers. Both the communities did the last rites with the flowers according to their traditions and since then, Guru Nanak is being remembered for all the teachings that he gave and for the welfare of the society and for all the good work that he did for the favor of the humanity.

Conclusion :-

Out of the above stated article about the life of Guru Nanak Dev and his contribution to the cultural heritage of the India, there were many things which could be drawn as the conclusion from these details. But the most important and the best conclusion that could be drawn from the above article is that Guru Nanak Dev was the person who always preached about the existence of the humanity and the existence of one god. His teachings about the chanting of the god's name to attain the spirituality was the biggest learning from the article, as it is true that this way it will create the possibilities of meeting with the god. (Singh, 2013). The contributions of the Guru Nanak towards the culture and the society was another learning and the conclusion that could be drawn from the article is that the teachings that were given by Guru Nanak about the respect and the equality of the women with the men in the society.

The biggest learning and the conclusion from the teachings of Guru Nanak was that the God is one and every human should be treated equally whether it is the men or women. Everyone should be

given the equal importance and respect as the other individuals irrespective of the cast, color or gender of the person.

References :-

1. Mandair, Arvind-Pal S., Christopher Shackle, and Gurharpal Singh. Sikh religion, culture and ethnicity. Routledge, 2013.
2. Chilana, Rajwant Singh. "Sikhism: Building a basic collection on Sikh religion and culture." Reference & User Services Quarterly 45.2 (2005): 108-116.
3. Raina, M. K. "Guru-shishya relationship in Indian culture: The possibility of a creative resilient framework." Psychology and developing societies 14.1 (2002): 167-198.
4. Singh, Khushwant. "The Sikhs." The Religious Traditions of Asia. Routledge, 2013. 119-126.
5. Duggal, Kartar Singh. Sikh Gurus: their lives and teachings. New York: Vikas, 1980.
6. Singh, Dalip. Life of Guru Nanak Dev Ji and His Teachings. Sikh Research & Educational Centre, 2004.
7. Nesbitt, Eleanor M., and Gopinder Kaur. Guru Nanak. Vol. 2. Bayeux Arts Incorporated, 1998.

E mail: rajeshmangla2014@gmail.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 150-153

भीष्म साहनी का नाट्य साहित्य : दृष्टि और शिल्प

–रविदेव
शोधकर्ता, हिन्दी विभाग, जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ (मान्य विश्वविद्यालय), उदयपुर, राजस्थान

नाटक जीवन की अनुकृति है। यह साहित्य और रंगमंच एक साथ है। स्वातंत्र्योत्तर युग के नाटकों में मुख्य रूप से नई चेतना का दिग्दर्शन होता है। 20वीं सदी के अंतिम दो दशकों के नाटक साहित्यिक होने के साथ–साथ रंगमंचीय भी हैं। इन नाटकों में नाटककारों ने समाज में व्याप्त प्रत्येक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विसंगति को बेपर्दा किया है। यहां नाटककारों के स्त्री–पुरुष संबंधी विभिन्न दृष्टिकोणों और उनकी विडम्बनीय स्थिति, प्रेम और हिंसा, आधुनिक पुरुष और नारी, भूख, गरीबी बेकारी, सांप्रदायिकता आदि सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रश्नों को और उनकी समस्याओं की अभिव्यक्ति में नवीन और प्रायोगिक दृष्टि यह रही है कि इन्होंने अपने अनुभवों, विचारों के रंगमंच को ध्यान में रखकर कहीं मिथ, कहीं लोक शैली, कहीं सीधे यथार्थवादिता से अभिव्यक्ति की है।

आज हम अपने नाटक साहित्य के 21वीं सदी के में प्रवेश कर चुके हैं। 21वीं सदी में नाटक की दशा और दिशा पर चर्चा करने से पूर्व 20वीं सदी के अंतिम दौर के नाम पर शोध करना अत्यंत आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। इसी समय भीष्म साहनी एक बड़े नाटककार, सजग चिंतक के रूप में दिखाई देते हैं। इनके नाटकों में समय की विडंबना, विसंगति, तनाव, सांप्रदायिकता को चित्रित किया गया है जिसमें उनका शिल्प भी उसी मजबूती से उभरकर आया है। उनके नाटकों की दृष्टि और शिल्प को इसीलिए शोध का विषय चुना गया है।

वस्तुतः आधुनिक काल में मानव जीवन अनेकविध जटिलताओं से भरा हुआ है। अनेक प्रकार की विषमताएं, असंगतियां मानव की पीड़ा का कारण बनी है। इस मानवीय पीड़ा को प्रेमचंद ने अपने साहित्य का विषय बनाया और उनके बाद की पीड़ा आज भी ऐसे सामाजिक यथार्थवाद वाले साहित्य का सृजन कर रही है। उनमें भीष्म साहनी जी ऐसे हस्ताक्षर थे जिन्होंने प्रेमचंद परंपरा को आगे बढ़ाया। मानवीय संवेदना और मानवीय दृष्टि को अपनी रचनाओं में यथार्थता के साथ उभारने वाले रचनाकार के रूप में भीष्म साहनी को अपने 'तमस' के बाद विशेष प्रसिद्धि मिली और आज वे हिन्दी के प्रगतिशील कथा साहित्यकारों में प्रथम स्थान पा चुके हैं। भीष्म साहनी जी के नाटक, उपन्यास व कहानी आदि भारतीय जनता के संघर्षों के मध्य विकसित होते हैं। यह उनकी ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक दृष्टि है, जो उनकी सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक सभी गतिविधियों को आत्मसात करती हुई उनके नाटकों, उपन्यासों व कहानियों में नजर आती है। भीष्म जी समाज के यथार्थ से संघर्ष करते हैंद्य आम आदमी की संवेदनशीलता उनकी रचना को जीवंत बना देती है। अतः वे मानवीय संवेदना के सफल कथाकार है।

ऐसे भीष्म साहनी को मुझे अपने स्नातक के द्वितीय वर्ष में पढ़ने का मौका मिला। तब मैंने इनकी कहानी 'अमृतसर आ गया' पढ़ी थी। कहानी में समाज का ऐसा चित्रण किया गया है जिसे पढ़कर मन में अनेक प्रश्न उठे तत्पश्चात स्नात्तकोत्तर में इनका उपन्यास 'तमस' पढ़ा। कॉलेज में उनका नाटक 'कबीरा खड़ा बाज़ार में' मंचित किया गया तब मैं सोचता था कि इनके अन्य नाटकों को भी पढ़ना चाहिए और भीष्म साहनी की दृष्टि और शिल्प को समझना चाहिए। मैंने सोचा कि भीष्म साहनी के साहित्य में मानवीय सुख–दुःख नजर आते हैं, उनका साहित्य मानव जीवन से निकट का साहित्य है। समाज का यथार्थ इसमें चित्रित किया गया है। मैं मन ही मन भीष्म साहनी के साहित्य के बारे में सोचता रहता हूँ। अभी तक मैं भीष्म साहनी का आधे से ज्यादा कथा–साहित्य पढ़ चुका हूँ। जिसमें उनके नाटकों से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। जिसमें भीषम साहनी के समाज का चित्रण किया गया है। साहित्य और समाज का अंतःसंबंध होता है। प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में कहीं ना कहीं साहित्य में समाज का रूप देखने के लिए मिल ही जाता है। अतः 'भीष्म साहनी के नाटकों में दृष्टि और शिल्प' विषय पर यह भागीरथ कार्य करना चाहता हूँ। जिसका मुझे विशेष आनंद प्राप्त हो सकता है।

हिन्दी साहित्य जगत में भीष्म साहनी का स्थान अनेक विधाओं के कारण महत्त्वपूर्ण है। भीष्म साहनी सामाजिक न्यायबोध कराते हुए उनके नाटकों में नव निर्माण की प्रेरणा बनकर ही पूंजीवादी व्यवस्था और सामाजिक असंगतियों के विरूद्ध क्रांति का आह्वान करते हैं। भीष्म जी समाज से रू–ब–रू होकर उन चुनौतियों से टकराते हैं। जो व्यक्ति, समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति और इतिहास के मूलभूत सम्बन्धों, अंतर्विरोधों और विसंगतियों का निर्धारण करती है। इसी प्रकार अपने नाटकों में भी भीष्म साहनी वर्ग–संघर्ष की भूमिका में पुरानी शक्तियों को नष्ट कर एक नवीन शोषण रहित समाज की स्थापना करने का लेखक का प्रयास किया है। इस प्रकार भीष्म जी ने मानव जीवन व समाज के अनेकविध पहलुओं को खोला है। भीष्म साहनी के नाटक सार्थक और मानव जीवन की सच्चाई से साक्षात्कार कराने वाले है। इन सारी बातों से प्रभावित होकर मैं उनके नाटक साहित्य पर शोध करने के लिए प्रेरित हुआ हूँ।

इस शोध कार्य में मेरा प्रयास भीष्म साहनी के नाटकों के अंतर्गत निहित दृष्टि और शिल्प के पक्ष का विश्लेषण करना रहेगा। विशेषकर भीष्म साहनी के कथा साहित्य में मानवीय जीवन की विविध संवेदनाओं, उसकी जटिलताओं, विषिमताओं आदि का सूक्ष्म अध्ययन करने का रहा है। साथ में उन संवेदनाओं की अभिव्यक्ति–शक्ति एवं कुशलता को भी परखना रहेगा। जोकि भीष्म साहनी की पहचान है। अतः अध्ययन की सुविधा हेतु मैंने अपने इस पुस्तक कार्य को विविध चार अध्यायों में विभक्त करने का विचार किया है।

उपर्युक्त विषय में हिन्दी नाटक के जन्म से लेकर सन 1980 तक के काल को क्रमिक विकास से रखा है। जिसमें भारतेंदु, प्रसाद, प्रसादोत्तर, स्वातंत्र्योतर युग का संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा। इसी के साथ वर्तमान और भूत के हिन्दी रंगमंच पर टिप्पणी की जाएगी। वर्तमान में कार्यरत नुक्कड़ नाट्य मंडलियों का भी संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा और जिन लोक शैलियों से प्रभावित होकर नाटककारों ने नाट्य रचना की है, उन शैलियों का संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा।

भीष्म साहनी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संक्षेप में परिचय दिया जाएगा। इसमें एक ओर उनके जीवन के विविध पहलुओं को उनके व्यक्तित्व के साथ जोड़कर व्यक्त किया जाएगा, तो दूसरी ओर उनके विविधमुखी कृतित्व का विशद् परिचय दिया जाएगा। उनका जीवन बिलकुल एक आर्य समाजी संस्कारों वाले परिवार में बीता

है। उनके जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालकर उनकी साहित्यिक कृतियों का विहंगावलोकन प्रस्तुत किया जाएगा।

भीष्म साहनी के नाटकों में उनकी दृष्टि कहाँ–कहाँ गयी है उसका अवलोकन किया जाएगा। उनके समाजिक दृष्टिकोण को उकेरने और उसका विभिन्न दृष्टियों से विश्लेषण करने का प्रयास किया जायेगा। जिसमें परिवार के रूप, मानवीय संबंध, साम्प्रदायिक वैमनस्य, धार्मिक संकीर्णता, स्त्री संबंधी विचार, मध्यवर्गीय परिवारों की जीवन विडंबना, पीढ़ियों का अंतर्द्वंद्व, राजनीतिक भ्रष्टाचार, मूल्यहीन संस्कृति, राष्ट्रीय स्वर की अनुगूंज, विसंगति और विडंबना, औपनिवेशिक शासन और जातीय जीवन में द्वंद्व को समझने का प्रयास रहेगा। भीष्म जी मानते है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों में से कोई भी न तो करुणा ,क्रूरता, कट्टरता और विषम परिस्थिति को जन्म देता है उनके सामाजिक कार्यक्षेत्र उनमें भेद और एक बड़ा अंतर पैदा कर देते हैं।

भीष्म साहनी के नाट्य शिल्प के अंतर्गत उनकी भाषा और शैली के साथ–साथ कथ्य और रंग शिल्प का भी विश्लेषण किया जायेगा। जिसमें भाषा की दृष्टि से शब्द योजना, बिंबात्मकता, सांकेतिकता, नाटकीयता, लोकोक्ति और मुहावरे आदि का प्रयोग देखने का प्रयास रहेगा। शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, आत्मकथात्मक आदि विभिन्न शैलियों को समझने का प्रयास रहेगा। भीष्म साहनी उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी भाषा के विद्वान हैं। अतः उनकी रंगभाषा की सांकेतिकता, पात्रानुकूलता, बिम्बात्मकता, चित्रात्मकता, सम्वादात्मकता, व्यंग्यात्मकता आदि विशेषताओं का उल्लेख किया जाएगाद्य जिसके कारण वास्तव में लेखक की भाषा प्रभावशाली बनी है।

महान कलात्मक लेखन शैली के लिए लोक में प्रसिद्धी प्राप्त भीष्म साहनी रचनाकार के संग एक विशेष और प्रेरणादायक रंगकर्मी भी माने जाते है वे अपने रचना व् कर्म के द्वारा मानवीय संवेदनाओं और उनकी त्रासदी की समस्याओं को अपने सृजन में जीवन्त वर्णन करते है। वे अपनी मजबूत लेखनी से हमें आत्मचिंतन करने के लिए विवश करते हैं। भीष्म जी राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महा संघ संस्था के कई वर्षों तक महासचिव के पद पर भी शोभायमान होते रहे है। भीष्म साहनी जी जैसे महान रचनात्मक लेखक जब अपनी कलम को उठाते हैं तो निश्चित रूप से हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि और अभूतपूर्व योगदान देखने को मिलता है। भीष्म साहनी जी का रचनात्मक और कलात्मक चित्रण नाट्य साहित्य में विस्तृत रूप से देखने को मिलता हैं। भीष्म जी की कृत्यों को लगातार पढ़ते हुए इनकी गहरी दृष्टि और चिंतन के सवरूप का अनुभव होता है। मानवीय मनोभावों का जितना जीवंत प्रदर्शन भीष्म जी के सृजन साहित्य में देखने को मिलता है उतना उनके समकालीन लेखकों में नहीं मिलता।

भीष्म साहनी जी मुंशी प्रेमचंद की उस आलोचनात्मक व यथार्थवादी साहित्य सृजन परंपरा के विकास के क्रम में विशेष व अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करने वाले साहित्यकार और लेखक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले प्रथम पंक्ति के महान साहित्यकार थे । भीष्म साहनी जी का साहित्य आज भी वर्तमान समय और परिप्रेक्ष्य में उतना ही प्रासंगिक है जितना व पहले था आज भी तमाम राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक विरासतों में उनकी रचनाओं की अद्भुत ,छाया देखने को मिलती है। यही उनकी विशेष उपलब्धि भी हैं। उनका साहित्य आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य के इर्द–गिर्द घूमता रहता है क्योंकि वे जीवन के यथार्थ को करीब से पहचानते थे और उसी को अपने नाट्य सृजन में प्रमुखता के संग शामिल करते थे।

आधारभूत नाटक सूची :-

1. मुआवज़े – राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली–2, प्रथम संस्करण 2008
2. आलमगीर – किताबघर प्रकाशन, 24 अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली–2, संस्करण 2003
3. आरंग दे बसन्ती चोला – किताबघर प्रकाशन, 24 अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली–2, संस्करण 2006
4. माधवी – राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–6, तीसरा संस्करण 1988
5. हानुश – राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–6, तीसरा संस्करण 1988
6. कबीरा खड़ा बाज़ार में – राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–6, तीसरा संस्करण 1988।

सहायक ग्रन्थ सूची :-

1. झरोखे – राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–6, तीसरा संस्करण 1988, तीसरा
2. कड़ियाँ – राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–6, प्रथम संस्करण – 1949
3. तमस – राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–6, संस्करण – 1973
4. मय्यादास की माड़ी – राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–6, संस्करण – 1988
5. बसंती – राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–6, संस्करण – 2000
6. कुंतो – राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–6, संस्करण – 2000
7. नीलू, नीलिमा और नीलोफर – राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–6, संस्करण 1948
8. पटरियां – राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण 1998
9. निशाचर – राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1 बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण 1998
10. शोभा – राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1 बी नेताजी सुभाषा मार्ग, नई दिल्ली––110002, द्वितीय संस्करण 1998
11. भाग्यरेखा – राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1 बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, संस्करण 1998
12. वांडचू – राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1 बी नेताजी सुभाष माग्र, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण 1998

पत्र-पत्रिकाएँ :-

1. आलोचना : डॉ. नामवर सिंह, जनवरी 1974
2. नया मानदंड : कुसुम चतुर्वेदी (सं.) अप्रैल–जून–2004

कोश :-

1. हिन्दी शब्द सागर

रवि देव, जी 01, फर्स्ट फ्लोर, जी ब्लाक, प्रीत विहार, दिल्ली 110092
Email id : ravi92dev@gmail.com, 8368774150

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 154-158

राजस्थानी लोकसाहित्य : लोक गाथाओं के विशेष संदर्भ में

–डॉ. रितु पूनिया
सहायक आचार्या, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

लोकसाहित्य लोकजीवन की अभिव्यक्ति है। लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। लोक साहित्य के अन्तर्गत वे समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती हैं जिसमें आदिम संस्कृति के अवशेष हों। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से इनका महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। लोकसाहित्य के माध्यम से किसी समाज की यथास्थिति, विशेष प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों, विश्वास, मान्यताओं का प्रतिबिम्ब झलकता है। लोकगीत, लोक–गाथा, लोक–कथा, लोक–नाट्य लोकोक्तियाँ आदि लोक साहित्य के प्रमुख अंग हैं। राजस्थान का लोक साहित्य भी समृद्ध रहा है।

राजस्थानी लोक साहित्य राजस्थानी भाषा की मारवाड़ी, ढूँढाढी, मालवी, मेवाती, बागड़ी बोलियों में रचित है जो राजस्थान के निवासियों के कण्ठ–कण्ठ में विराजमान है। राजस्थानी लोकसाहित्य के समग्र सामाजिक महत्त्व और उसके साहित्यिक सौन्दर्य को समझने के लिए इस पत्र में लोक गाथाओं को विशेष संदर्भ में लिया गया है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने कथात्मक गीतों पर विचार करते हुए इन गीतों को लोकगाथा के नाम से अभिहीत किया है।[1]

अंग्रेजी में लोकगाथा के लिए 'बैलेड' शब्द का प्रयोग मिलता है जो लैटिन के 'बैलारे' शब्द से निष्पन्न है। राजस्थानी लोक गाथाओं पर दृष्टिपात करने पर यह ज्ञात होता है कि लोक गाथा एक गेय गाथा होती है। राजस्थानी लोक–गाथाओं में कथा के अतिरिक्त गीत, संगीत एवं नृत्य का त्रिवेणी संगम पाया जाता है।[2] लोक गाथाएँ दीर्घ गीत कथाएँ है जिनका उद्देश्य साधारण का आमोद–प्रमोद करना रहा है। राजस्थानी लोकगाथाएँ अन्य लोकसाहित्यिक विधाओं की भाँति काव्यात्मकता, शैल्पिक वैविध्य एवं सांस्कृतिक तथा सामाजिक निरूपण की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जीवन का प्रत्येक पक्ष इनमें प्रतिबिम्बित हुआ है।

राजस्थानी लोक–गाथाओं पर व्यक्ति विशेष की छाप नहीं है। इन गाथाओं में वैयक्तिक मानस की अपेक्षा सामूहिक मानस ने अधिक अभिव्यक्ति पायी है।[3] राजस्थानी लोक गाथाओं का प्रारंभ मंगलाचरण से होता है। प्रत्येक मंगलाचरण में सर्वप्रथम गणेश वंदना मिलती है। सभी लोक गाथाओं में अलौकिक घटनाओं को प्रश्रय मिला है। बगड़ावतों की सारी शक्ति अलौकिक है।[4] इनमें अन्तर्कथाओं की भरमार रहती है। राजस्थानी लोक–गाथाओं में ऐतिहासिक तथ्यों, परा–प्राकृतिक तत्त्वों, जादुई शक्तियों का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है।

राजस्थानी लोक गाथाओं में राजस्थानी सांस्कृतिक जीवन का प्रतिबिम्बन समग्र रूप से हुआ है। धार्मिक

विश्वास, लोक देवता, सामाजिक परम्पपराएँ, शकुन, त्यौहार, पर्व आदि का विशद वर्णन इनमें मिल जाता है।[5] राजस्थानी लोक गाथाओं के निर्माण में पात्रों की लम्बी–लम्बी यात्राओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

बगड़ावतों की राणा की राण की यात्राएँ, पाबूजी की लंका की यात्रा, तेजाजी की पनेर की यात्रा, ढोला की पूगल की यात्रा, डूंगजी–जुवारजी की अनेक यात्राएँ, जलाल की गिरबडगढ़ की यात्रा आदि।[6] सभी लोक गाथाओं में युद्धों के विवरण देखने को मिलते हैं। अतः यह प्रश्न विचारणीय है कि प्रायः सभी लोक गाथाओं में नायक को आत्म रक्षा या शौर्य प्रदर्शन के लिए युद्ध करने पड़े।[7] बगड़ावत अपने पराक्रम को दिखाने के लिए ही युद्ध करते रहते हैं। गोगाजी युद्ध में अरजन–सरजन को इसलिए मारते हैं कि उन्होंने उसके साथ धोखा किया था, पाबूजी ऊँट लेने गए तब उन्हें युद्ध करना पड़ा था।[8]

राजस्थानी लोक–गाथाओं में पात्रों की भी विभिन्नता देखने को मिलती है। इनमें अलौकिक पात्र, मानव पात्र तथा पशु–पक्षी पात्र प्रमुख हैं। शिव, पार्वती, दुर्गा, गोरखनाथ, बालीनाथ आदि दैवीय पात्र हैं। सुल्तान, पाबूजी, गोगाजी, निहालदे, मरवरण, नागवती, बूबना, फूलसिंह, मृगतमायवी, सूमरा आदि की गणना मानव पात्रों में की जाती है। दरियाई घोड़ा, ऊँट, हाथी, तोता, कुजरी, मैना, कछुआ, सर्प आदि पशु–पक्षियों का उपयोग पात्रों के रूप में राजस्थानी लोक–गाथाओं में विशेष रूप से देखने को मिलता है। नारी पात्रों के संबंध में राजस्थानी लोक–गाथाओं में कतिपय साम्यता देखने को मिलती हैं जैसे सभी नायिकाएँ अपने प्रियतम पर आसक्त होती हैं, नायक–नायिका के मिलन में अनेक बाधाएँ आती हैं, सभी नायिकाएँ सती–साध्वी नारियाँ हैं। राजस्थानी लोक गाथाओं के कथानकों पर विचार करते समय एक तथ्य और सामने आता है कि कई पात्र एक से अधिक लोक गाथाओं में आये हैं पर उनके क्रियाकलाप एवं व्यक्तियों में पर्याप्त भिन्नता है।

पात्रों के संदर्भ में निहालदे सुल्तान लोक गाथा की एक विशेषता और है – दानव पात्रों की स्थिति।9 निहालदे–सुल्तान में दानव पात्रों के माध्यम से रचनाकारों ने मानव तथा मानव–प्रकृति का जो इतिहास व्यक्त किया है वह अपने आप में एक अद्वितीय प्रसंग है।[10]

राजस्थानी लोक गाथाओं के नामों के साथ कुछ पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं। पारिभाषिक शब्द इन गाथाओं के स्वरूप, रचना–विधान, वर्ण्य विषय, चित्रांकन आदि बातों का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। पड़ नाम से जानी जाने वाली गाथाओं में जिज्ञासु कथा के साथ–साथ पटांकित चित्रों का लाभ भी उठा सकते हैं। भारत नाम से मिलने वाली गाथाओं में युद्धों का प्राधान्य पाया जाता है। 'पाबूजी' एवं 'देवनारायण' की पड़े प्रसिद्ध है तो माताजी को भारत और काला–गोरा रो भारत भी प्रसिद्ध है। 'ब्यांवले' नामक गाथाओं में कथा नायक के जन्म से लेकर विवाह तक के कार्यों का ब्यौरा मिलता है। विवाह के कुछ समय पश्चात् या कभी–कभी विवाह सम्पन्न होते ही नायक सन्यास धारण कर लेता है। गरासिया जाति में इन 'ब्यांवलों' का अधिक प्रचलन है। इन ब्यांवलों में राम सा पीर रो ब्यावलो, मीरां बाई रो ब्यावलो, दयालु बाई रो ब्यावलों, अणची बाई रो ब्यावलों और शंकर रो ब्यावलों आदि बहुत प्रसिद्धि प्राप्त है।[11]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक–गाथाओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है – प्रेम कथात्मक, वीर कथात्मक व रोमांच कथात्मक।[12] डॉ. सत्या गुप्त ने अपने शोध प्रबंध 'खड़ी बोली का लोक साहित्य' में लोक गाथाओं की तीन श्रेणियाँ बतायी हैं।[13]

डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा ने राजस्थानी लोक गाथाओं को वीर कथात्मक, प्रेम कथात्मक, रोमांच कथात्मक,

पौराणिक लोक गाथाएँ व निर्वेद कथात्मक लोक गाथाएँ पाँच वर्गों में विभक्त किया है।[14]

राजस्थानी प्रेम प्रधान लोक गाथाओं में प्रथम दृष्टि प्रेम को सर्वोत्कृष्ट बताया गया है। महेन्द्र मूमल को पहली बार देखते ही उस पर मुग्ध हो जाता है और मूमल भी अपना हृदय दे बैठती है। प्रेमियों के मार्ग में अनेक बाधाऐं भी दिखाई गई है जिनमें लोक–लाज सबसे बड़ी बाधा है। 'जलाल–बूबना' एवं 'बीझा–सोरठ' के परस्पर मिलने में उनके संबंधियों द्वारा कठिनाइयाँ उपस्थित की गई।[15]

मालवाणी ढोला को मारू से नहीं मिलने देना चाहती। प्रेम के आदर्श को सर्वोपरि स्वीकार प्रेम करने वाली इन नायिकाओं के आवास–स्थल पर कड़े पहरे लगा दिए जाते हैं। राजस्थान प्रेम गाथाओं में 'बालपणे री प्रीत' को बहुत अधिक महत्त्व मिला है। बाल्यकाल का यह प्रेम कभी गुड्डे–गुड्डी के खेल में उत्पन्न हुआ है, कभी बछड़े चराते समय एक–दूसरे के जीवन में बहुत नजदीक आ जाने पर हुआ है। राजस्थान की इन प्रेम गाथाओं में विरह–भावना को भी स्थान मिला है। इनमें संदेश प्रेषण, मृदु–उपालम्भ, मान–प्रसंग, विरह काल में ही विरही हृदय पर पड़ने वाले प्राकृतिक व्यापारों के प्रभावों का भी लेखा–जोखा मिलता है। प्रेम गाथाओं में सुखांत भी है और दुखांत भी। ढोला–मारू सुखांत प्रेम–गाथा है। नागजी–नागवंती, रामू–चनणा आदि दुखांत प्रेम गाथाएँ हैं।

राजस्थानी लोक साहित्य में वीरत्व प्रधान लोक गाथाएँ भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। निहालदे सुल्तान नामक गाथा में कहा गया है – ''इल ऊपर रहसी अमर कीरत रा कमठांण।'' उपरोक्त पंक्ति राजस्थानी लोकगाथा में वीरों को दिए गए महत्त्व को स्पष्ट करती है जो मरकर भी अमर हो जाता है और लोगों के समक्ष आदर्श उपस्थित कर जाता है। राजस्थानी लोक गाथाओं में वीरांगनाओं के भी अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। सजना ने पुरूष वेश धारण कर राजा की चाकर पूरी की और अपने वृद्ध पिता की चिंता दूर की, तो निहालदे ने वीर पुरुष का बाना पहिनकर जलदीप की माता रूपादे से विवाह किया। वीरत्व व्यंजक राजस्थानी गाथाओं में हमें वीर पुरुष एवं वीरांगना की चारित्रिक विशेषताओं का भी पूरा–पूरा ब्यौरा मिलता है। इन विशेषताओं के आधार पर राजस्थानी वीर का सही चित्र हमारे समक्ष उभर कर आता है।[16] इन गाथाओं में 'आबं फलै नीचो लुलै' कहकर नायक की विनम्रता को प्रकट किया है। इन वीरों को परोपकार करने में, दूसरों के दुःख में हाथ बंटाने में अतीव प्रसन्नता होती है।

वीरता प्रधान ये गाथाएँ तत्कालीन समाज की अवस्थाओं, सामाजिक मान्यताओं व धारणाओं का भी उल्लेख करती है। उस युग में दूल्हे की योग्यता तोरण–वंदना से भी आंकी जाती थी। विवाह हेतु आया नारियल वापस लौटाना अप्रतिष्ठा की बात थी। इन गाथाओं में वीर के हाव–भावों एवं आंगिक चेष्टाओं का सजीव चित्रण किया गया है। वीरों के लिए कर्त्तव्यपरायणता सबसे बड़ी बात है। इन्हें अपने कर्त्तव्य एवं धर्म–अधर्म का सदैव ज्ञान रहता है। ये सत्य व धर्म के रक्षक थे। निहाल दे सुल्तान में वर्णित है – ''उण ई सगसां री चाले जुग में वारता, तो जण धरम रा करिया जिणां ई कांम''।[17] छल–कपट व स्वार्थपरता से ये दूर रहते थे और वचन–निर्वाह इनका प्रधान कर्त्तव्य था।

राजस्थानी लोक गाथाएँ वीरों की दानवीरता के उदाहरणों से भरी पड़ी हैं वीर गाथाओं में वीरों द्वारा खेली जाने वाली मृगया एवं किये जाने वाले युद्ध के भी अनेक चित्र मिल जाते हैं।

राजस्थान में हमें पौराणिक चरित्रों से संबंध रखने वाली भी कई गाथाएँ मिलती हैं। इन गाथाओं में हमें भारतीय संस्कृति के साथ–साथ राजस्थान की लोक–संस्कृति का भी सजीव चित्रण देखने को मिलता है। प्राचीन

भारत की सामाजिक व्यवस्था, उस समय के निवासियों की वैचारिक मान्यताओं आदि के अध्ययन की दृष्टि से इन गाथाओं की बड़ी महत्ता है। इन गाथाओं में काला–गोरा रो भारत, लोक भारत स्यावकरण घोड़ों, रामदला री पड़, कृष्णदला री पड़ आदि अत्यधिक प्रचलित गाथाएँ भी हैं। पौराणिक गाथाओं में उपदेशात्मक प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इनमें धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य, सुख–दुःख, कर्मफल आदि का विवेचन भी मिलता है।[18] युग चित्रण के साथ–साथ पौराणिक गाथाओं में स्थानीय रंग की छटा भी देखने योग्य है।

धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा एवं भक्ति भावना प्रत्येक भारतीय की आत्मा से जुड़े हुए हैं। राजस्थानी भक्तिपरक लोक गाथाओं में रूपादे, भर्तृहरि, गोपीचंद आदि प्रमुख हैं। इनमें भक्ति व तपस्या के प्रभाव को भी व्यक्त किया गया है। कर्म का सिद्धांत भी राजस्थानी भक्तिपरक लोक गाथाओं में यदा–कदा देखने को मिलता है। सांसारिक वस्तुओं के अस्थायित्त्व के संबंध में भी बहुत कुछ इन गाथाओं में वर्णित है। भक्तिपरक लोक गाथाओं में धर्म व भक्ति के अतिरिक्त सद्कर्म करने का संदेश भी दिया गया है।

ऐतिहासिक तथ्यों, परा–प्राकृतिक तत्वों, यथार्थ घटनाओं, मनोरंजन आदि के अतिरिक्त राजस्थानी लोक गाथाओं का साहित्यिक महत्त्व भी कम नहीं है। रसों के सभी प्रकारों पर इनमें प्रकाश डाला गया है। इनमें श्रृंगार–रस के अन्तर्गत रूप–चित्रण की परम्परा मिलेगी तो मान–प्रसंग और विरह–वर्णन के स्थलों की भी कमी नहीं है। तेजाजी, पाबूजी, बगडावत एवं भारत नाम से जानी जाने वाली लोकगाथाओं में वीर रस देखने को मिलता है तो भर्तृहरि, गोपीचंद की गाथाओं में करूण व शांत रस। राजस्थानी लोक गाथाओं में व्यवहारोपयोगी अनेक बातों का संग्रह है। इनमें वर्णित नैतिक सुक्तियाँ पग–पग पर हमारा पथ–प्रदर्शन करती है। प्रत्येक राजस्थानी लोक गाथा का अपना अलग रूप है। हर गाथा अपने लय–बंधन का महत्त्व रखती है। छंद प्रयोग की दृष्टि से इन गाथाओं में प्रमुख रूप से दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया आदि का प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार राजस्थानी लोक गाथाएँ राजस्थानी लोक साहित्य का अभिन्न अंग कही जा सकती हैं। ये लोक गाथाएँ तत्कालीन राजस्थानी सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत करने में महत्ती भूमिका का निर्वाह करती है। इनसे हमें न केवल तत्कालीन समाज व धर्म अपितु नैतिकता, मानवीय मूल्यों, लोक जीवन में रची बसी मान्यताओं, परम्पराओं आदि का भी ज्ञान प्राप्त होता है। राजस्थानी साहित्य को सम्पन्न बनाने वाली ये लोक गाथाएँ इतिहास लेखन की मौखिक परम्परा एवं लोक साहित्य के इतिहास लेखन में उपयोग की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। राजस्थानी काव्य, संगीत, वाद्य यंत्रों, नृत्य आदि कला की अन्य विधाओं का प्रयोग कर ये लोक गाथाएँ राजस्थानी संस्कृति को एक नवीन स्वरूप प्रदान करती हैं जिसकी भारतीय संस्कृति में अपनी एक अलग पहचान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. उपाध्याय, कृष्णदेव, भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1960, पृ. 492.
2. चारण, डॉ. सोहन दान, राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2016, पृ. 194.

3. सहल, डॉ. कृष्णबिहारी, राजस्थानी लोक–गाथा कोश, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2011, पृ. 18.
4. वही।
5. वही, पृ. 27.
6. वही, पृ. 20.
7. वही, पृ. 21.
8. वही।
9. वही, पृ. 25.
10. वही।
11. चारण, डॉ. सोहन दान, राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2016, पृ. 206.
12. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, भोजपुरी लोक–साहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1960, पृ. 394.
13. गुप्त, डॉ. सत्या, खड़ी बोली का लोक साहित्य, पृ. 241.
14. शर्मा, डॉ. कृष्ण कुमार, परम्परा 21–22, सन् 1966, पृ. 155.
15. चारण, डॉ. सोहन दान, राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2016, पृ. 223.
16. वही, पृ. 226.
17. वही, पृ. 229.
18. वही, पृ. 237.

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 159-165

हिन्दी है हम वतन
भारतीय संस्कृति : समाज राजनीति

–डॉ. रोहताश जमदग्नि
भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, राजनीतिक विज्ञान विभाग, जीडीसीएम (पीजी) कॉलेज, बहल, भिवानी (हरियाणा)

भूमिका :–

व्यक्तिगत ऐतिहासिकता मैं भी तो एक व्याख्याता ही हूं। मैं भी विद्यावाचस्पति हूं। मैं भी कभी एकता–अखण्डता पर सोच लेता हूं जैसे व्याख्याता डॉ. मोहम्मद इकबाल ने भारतीयता के सजदे में लिखा था : हिन्दी है हम वतन, हिन्दोस्तां हमारा। सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।। फिर क्या हुआ कि उन्हें यह भी लिखना पड़ा : चीन–ओ–अरब, हिन्दोस्तां हमारा। मुस्लिम है हम वतन, सारा जहां हमारा।। हम से मुस्लिम बनने में डॉ. इकबाल को मात्र 1904 से 1910 तक का समय ही काफी रहा। तराना–ए–हिन्द (1904), तराना–ए–मिल्ली (1910) में लिखने वाला कैसे कट्टरपंथी बना, इसका मूल्यांकन करना जरूरी इसलिए नहीं है कि हुकुमत अंग्रेजी थी। समय बंगाल (1905) विभाजन का था। मुस्लिम लीग (1906) की स्थापना की थी। निष्कर्षतः अंग्रेज 1857 में हिन्दू प्रेमी थे और फिर अगले 90 वर्षों में मुस्लिम प्रेमी बनकर भारत को मुस्लिम–चाकुओं से कटवा गए।

परिणामतः सरकारी कॉलेज में सरकारी व्याख्याता थे डॉ. इकबाल, इतना ही नहीं, एक शिक्षक द्वारा बांटना, कहां कि गंगा–जमुनी तहजीब, कैसी भारत माता की हिन्दु–मुस्लिम दो आंखे, कब–कहां भारत आजाद करवाया, बस अपना तख्ते–ताऊस न बचाकर, पाक व बांग्ला बनाने में सफल हुए। डॉ. इकबाल का सारा विचार अंग्रेजों की प्रवृत्ति व प्रकृति का नजीता था। दूसरी ओर, जिन्ना ने इस बीज को वट–वृक्ष में तब्दील किया क्योंकि जिन्ना को चर्चिल का संरक्षण प्रदान था। गांधी अपनी मसीही (बापूगीरी) में लूटता रहा, नेहरू अपनी राजसत्ता में पिटता रहा, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस चल बसे तथा सरदार पटेल के पंखों को गांधी की तानाशाही ने कतर दिया तथा अम्बेडकर चिल्लाकर–चिल्लाकर कहते रहे कि मुसलमान मुसलमान का है, उसका अन्य किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है।

कट्टरपंथ की ऐतिहासिकता :–

विभाजन मजहबी था। विभाजनः एक त्रासदी को याद करना, एक जुर्म सिद्ध हो रहा है। 'गदर' फिल्म देखना भी ईश निंदा की श्रेणी में आ सकता है क्योंकि तलाक–तलाक–तलाक फिल्म को 'निकाह' नाम ईश निंदा की श्रेणी को दर्शाता है। शुरू से पाकिस्तानियों ने बांग्लादेशियों के प्रति नफरत बो दी थी क्योंकि चरम कट्टरपंथ उसके गर्भ में था। इसका उदाहरण समझेः दिसम्बर 1970 में पाकिस्तान में चुनाव हुए। 1. पूर्वी पाकिस्तान अर्थात

बांग्लादेश की शेख मुजीबुर्रहमान की पार्टी आवामी लीग को पश्चिमी पाकिस्तान अर्थात् पाकिस्तान की 169 में से 167 मिली। शेख मुजीबुर्रहमान को 314 सदस्यीय पाकिस्तान की संसद में पूर्ण बहुमत मिला। 2. पश्चिमी पाकिस्तान अर्थात् पाकिस्तान की 144 सीटों में जुल्फिकार भुट्टो की पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी को 86 सीटें मिलीं। 3. जुल्फिकार अली भुट्टो व तानाशाह याहिया खान ने शेख मुजीबुर्रहमान को प्रधानमंत्री बनाने की बजाए 26 मार्च 1971 की मध्यरात्रि को 'ऑपरेशन सर्च लाइट' नाम से सैन्य मुहिम छेड़कर जेल में डाल दिया। 4. शेख मुजीबुर्रहमान ने कैदी बनने से पहले ही बांग्लादेश की स्वतन्त्रता का ऐलान कर दिया था क्योंकि पाकिस्तान बांग्लादेश पर इस्लामी कानून व उर्दू को राष्ट्र भाषा के रूप में लाद रहा था, जनता ने विद्रोह कर दिया 5. कट्टरपंथ का जीवित उदाहरण देखिए ना, माउंटबेटन प्लान के तहत सिलहट जनमत संग्रह के अन्तर्गत सिलहट जिला असम से बांग्लादेश में चला गया। इसे कहते हैं जनसांख्यिकी का राज। आगे की तुम भारतीय सोचो!!

16 दिसम्बर 2021 का हरिभूमि में जवाहर प्रताप लिखते हैं नियाजी का आत्मसमर्पण जैकब ने करवाया, हिन्दुस्तान में रामशरण जोशी (उस समय के पत्रकार जो ढाका में भारत की ओर पत्रकारिता कर रहे थे) लिखते हैं कि नियाजी का आत्मसमर्पण अरोड़ा ने करवाया। दैनिक जागरण में ब्रिगेडियर आरपी सिंह (26 मार्च 1971 से 16 दिसंबर 1971 तक सक्रिय युद्ध लड़ने वाले) लिखते हैं कि 30 नवंबर 1971 को अरोड़ा ने दायित्व सम्भाला। 4 दिसंबर 1971 को अरोड़ा ने दावा बोला तथा 12 दिनों अरोड़ा ने नियाजी को सीधा लेटा लिया।

आजकल अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर लोकतन्त्र जैसी अवधारणा विमर्श हेतु आई। इस सम्मेलन में तीन विषय–वस्तु रही : 1. तानाशाही की प्रवृत्ति रोकना 2. भ्रष्टाचार मिटाना 3. मानवाधिकारों की रक्षा करना। मानवाधिकार की रक्षा वंशवाद खत्म करके लोकतन्त्र लाने में हो सकती है। 2. भ्रष्टाचार विश्वव्यापी समस्या हैः अमेरिका में जनता से चंदा मांगकर चुनाव लड़े जाते हैं जो साफ झूठ है जैसे भारत में चुनाव आयोग की तय सीमा के अनुसार पैसा खर्च किया जाता है। 3. मोदी ने इस सम्मेलन में कहा कि हम स्वतन्त्र व निष्पक्ष चुनाव संग पारदर्शिता दे रहे हैं आलोचकों ने कहा कि न्यायपालिका व मीडिया भी स्वतन्त्र व निष्पक्ष होनी चाहिए सिंगापुर, चीन, ईरान, रूस भी स्वतन्त्र व निष्पक्ष चुनाव कराते हैं जहां एक दलीय व्यवस्था भी है और बहुदलीय व्यवस्था भी मगर सर्वोच्च सत्ता से चुनाव में भागीदारी की अनुमति लेनी पड़ती है। भारत में पंचायत चुनाव को छोड़ दें तो उम्मीदवारों का चयन आलाकमान करता है जो वंशवादी दल हैं जिसमें जनता की कोई भूमिका नहीं होना, लोक व तन्त्र का रिश्ता स्थापित नहीं करता। अमेरिका ब्रिटेन के अलावा यूरोप में ऐसा नहीं है वहां आलाकमान व सर्वोच्च सत्ता हस्तक्षेप नहीं करती है।

परिणामतः जब पार्टी सदस्य जो यूरोपीय देशों में अपनी भूमिका निभाते हैं वहीं पार्टी सदस्य भारत में अपनी भूमिका उम्मीदवार चयन में नहीं निभा सकते तो फिर भारत व चीनी कम्युनिस्ट पार्टी में क्या अन्तर है। तानाशाह लोकतन्त्र में तब्दील होने की मोहर लगाकर बताते हैं जैसे : चीन कहता है हमारी पीपुल्स कांग्रेस के चुनाव दुनिया को सबसे बड़ा और स्थिर लोकतन्त्र देता है रूस कहता है हमारे यहां बहुदलीय लोकतन्त्र है। तानाशाही प्रकृति व प्रवृत्ति वाले देश बर्मा व सूडान में लोकतन्त्र चाहने वालों को निर्वासन, यातना/मौत दे रहे हैं 2. ताइवान लोकतन्त्र पर चीनी विमान मंडराते रहते हैं 3. यूक्रेन की छाती पर रूसी सेनाएं बैठी हैं। परिणामतः जहां लोकतन्त्र है वहां तानाशाही बढ़ रही है और जहां तानाशाही है वहां लोकतन्त्र के प्रमाण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।पुराना लोकतन्त्र अमेरिका का है, बड़ा लोकतन्त्र भारत का है। फ्रीडम हाऊस नामक संस्था ने एक सर्वे

में पाया कि 73 देशों में लोकतन्त्र कमजोर पड़ा है। इसके पीछे बढ़ती जनसंख्या तथा नियाज–ए–मुस्तफा की शैली का सरोकार रहा है। लोकतन्त्र को प्राकृतिक अवस्था में ले जाने वाले लोग वहीं है जो व्यक्ति को साधन तथा किताबी ज्ञान को साध्य मानते हैं। उनकी कट्टरपंथी का कारनामा सारा विश्व जानता है कि कैसे फ्रांस में एक अध्यापक का गला काटा तो तो सारे विश्व का मजहबी एक सुर में, एकत्रित हो गया था।

बर्बरता की ऐतिहासिकता :–

ब्रिगेडियर आरपी सिंह बताते हैं कि 1. हम 26 मार्च 1971 को पूर्वी पाकिस्तान चले गए 2. मेरे पास ही निर्वासित बांग्लादेश सरकार के शपथ ग्रहण समारोह की सुरक्षा का प्रभार था। 3. 20 अप्रैल 1971 से मैंने शरणार्थी शिविरों में सामान्य प्रशासन का सहयोग लिया 4. जुलाई के पहले सप्ताह में मुझे मुक्ति वाहिनी के अधिकारी प्रशिक्षण प्रभाग में प्रशिक्षक बनाया गया। 5. शेख मुजीब–उर–रहमान के बेटे शेख कमाल व उनकी बेटी शेख हसीना उसमें मेरे कैडेट थे। 6. 266 दिनों में तीस लाख बांग्लादेशी मारे गए, चार–पांच लाख से अधिक महिलाओं का बलात्कार किया गया तथा इतना ही नहीं, 70,000 से अधिक 'युद्ध शिशु' पैदा हुए और एक करोड़ बांग्लादेशी भारत आए 7. मैंने कई जनों से पूछा तो उन्होंने बताया मासूमों को हवा में उछाल कर तलवारों से दो टुकड़ों में काटा जाता था 8. मैंने खुद देखा, एक मां अपने बच्चे की लाश कन्धे पर लिए, घर में घुस रही थी 9. इस्लामिक कट्टरपंथ ने यह सब किया आम पाकिस्तानी आज तक बेखबर है। 10. हिन्दी है हिन्दू वतन, इस्लामिकस्तान हमारा। दुनिया–ए–कुरानी इच्छा, निजाम–ए–मुस्तफा हमारा।।

वरिष्ठ पत्रकार रामशरण जोशी बताते हैं कि 1. मैं अगरतला गेस्ट हाऊस में महीनों रहा। 2. मुक्ति वाहिनी के लड़ाके घायलावस्था में अगरतला गेस्ट हाउस में शरण लेते थे 3. शेख कमाल व शेख हसीना के साथ एक रात संग ठहरते हुए याहया खान की बर्बरता दोनों भाई–बहन ने सुनाई 4. शेख मुजीब–उर–रहमान के करीबी साथी शम्सुल हक ने तो भारत विभाजन को भारतीय उपमहाद्वीप के मानव भूगोल के साथ बलात्कार कह डाला था। 5. विस्थापितों का उमड़ता कारवां, खून में सने लोग, भूख से रोते बच्चे बूढ़े, असहाय, मैं भूला नहीं पाया 7. जैसोर व खुलना में शवों के खलिहानों ने हम पत्रकारों को हिला दिया था 8. कंपकंपाती अर्धनग्न देह, जलते खेत, गिरते घर आज भी मुझे याद हैं। 9. भारत घर में वापसी का मंजर कैसे भुलू जो शरणार्थी बच्चों की तरह अपने घर भारत भाग–भागकर घुस रहे थे। 10. सुनो गौर से दुनिया वालों हर मुसलमान कुरानी है, मुस्लिम है हम वतन, जनसंख्या हमारी निशानी है।।। बर्बरता प्राकृतिक अवस्था की देन है।

प्राकृतिक अवस्था सामाजिक अवस्था से भी पहले की है तथा सामाजिक अवस्था के बाद राजनीतिक अवस्था आई। प्राकृतिक अवस्था सभी के विरुद्ध सभी के संघर्ष की अवस्था है। प्राकृतिक अवस्था में समाज, राज्य, सम्पत्ति व सभ्यता का अभाव होता है। प्राकृतिक अवस्था में मानव जीवन पाश्विक व बर्बर होता है बस उसके पास एक ही अधिकार होता है शक्ति का अधिकार खुली आंखों से देखो तो पाएंगे कि कट्टरपंथी विचारध ाराएं इसी यात्रा पर अनवरत चलती दिखाई देंगी। सऊदी अरब में तब्लीगी जमात को आतंकवाद का द्वार यूं ही नहीं कहा है, उदाहरणार्थ अरब (नानी–दादा) सुधर रहा है मगर ईरान–इराक (बापू–मामी) लड़–मर रहा है और भारत–पाक (दौहिती–पोता) तब्लीगी जमात पैदा कर रहा है। सऊदी अरब नानी–दादा की अवस्था में आकर अब समझा है कि तेल खत्म होने वाला है, उसके बाद तो सामान्य सरकार से सम्पर्क करके धन्धे चलाए जाएंगे वरना शरीयत हदीस व कुरान की रोशनी के व्यापार व धन्धा नहीं चलने वाला है इसलिए बर्बरता को समेटा जा रहा

है। प्राकृतिक अवस्था को सामाजिक अवस्था प्रदान करते हुए राजनीतिक अवस्था की रोशनी में आगे बढ़ने का प्रयास किया जा रहा है। ईरान–इराक, भारत–पाक बापू मामी दौहिती–पोते की अवस्थाएं समयानुसार समझेगी अभी समय लगेगा। 1. गर इनकी निशानियों पर अंकुश नहीं लगाया गया तो 2. गर इनकी प्रवृत्ति व प्रकृति को नहीं बदला गया तो 3. गर निजाम–ए–मुस्तफा का ख्वाब इनके दिलो–दिमाग से नहीं निकाला गया तो भारत में 29 राज्यों में से 9 राज्य में इनकी निशानियां अपने दस्तक दे चुकी हैं भारत में हिन्दी है हम वतन लिख्ने वाले फिर पैदा होंगे, सिलहट जनमत संग्रह की भांति पाकिस्तान व बांग्लादेश में मिलते रहेंगे या राज्य इस्लामिकस्तानी बनाते रहेंगे क्योंकि भारत पूजा–पाठी सामाजिक राजनीतिक अवस्था वाला खंडित राज्य है और मजहबी प्राकृतिक अवस्था के पुजारी पाश्विकता व बर्बरता के मसीहा हैं तो एक दिन इस रास्ते से तो मुस्लिम है हम वतन यह हिन्दुस्तान हो ही जाएगा।

स्वार्थपरक ऐतिहासिकता :–

खलनायक फिल्म में गीत है चोली के पीछे क्या है? चोली के पीछे हैं–यूके, यूएसए, यूएसएसआर। उदाहरणार्थ : बांग्लादेश भारत में आजाद करवा दिया तो 1. अमेरिका ने सातवां बेड़ा बंगाल की खाड़ी में खड़ा करना क्यों जरूरी था? 2. ब्रिटेन ने रायल नेवी आर्माडा को अरब सागर में खड़ा करना जरूरी क्यों था? क्योंकि चोली के पीछे ये दोनों ही थे पाकिस्तान तो इनकी तलवार रहा है। जब सोवियत संघ भारत के पक्ष में आया तो तभी अमेरिका व ब्रिटेन ने भारत के दोनों तस्वीफों से तोपें हटाईं। पाकिस्तान हारने के बाद भी जीता क्योंकि उसका रिमोट कंट्रोल चोली के पीछे वालों के हाथों में था जो वह बताते गए वही पाकिस्तान करता गया जैसेः 1. नियाजी सहित 150 युद्ध अपराधियों को सौंपने पर भारत (इंदिरा) से ही हां करवा ली 2. जुलाई 1972 को भुट्टो ने इंदिरा को शिमला समझौते के अन्तर्गत इस तरह बरगलाया कि इंदिरा पाकिस्तान युद्ध अपराधियों के खिलाफ पाकिस्तान में मुकदमे चलाने के लिए राजी हो गए। 3. पाकिस्तान के भुट्टो ने बांग्लादेश के अधिकारियों को प्रताड़ना केन्द्र में रखा। 4. भुट्टो के कहने पर चीन ने बांग्लादेश की यूएन सदस्यता रद्द हेतु वीटो कर दिया 5. अपराधी, रिहाई के बाद वापस सेवा में बहाल हुए वे आईएसआई–सीआईए के साझा षड़यन्त्रों का हिस्सा बने 6. परिणामतः 15 अगस्त 1975 को शेख मुजीबुर–उर–रहमान और उनके 27 रिश्तेदारों की हत्या हुई। 7. इतना ही नहीं, उन्होंने ही सिक्ख आतंकवाद को भड़काया और इंदिरा मरवाई 8. कश्मीर से कश्मीरी पंडित भगवाए 9. अफगानिस्तान में तालिबान खड़ा किया 10. जीतने के लिए भी हारना पड़ता है जो हारकर जीतता है उसी को कहते बाजीगर। इंदिरा थी तो एक पुत्री, मां व पत्नी ही, राजनीतिज्ञ राजनयिक नहीं मगर साहसिक जरूर थी।

इंदिरा त्रिपुरा गई। इंदिरा ने विस्थापितों को देखना चाहा, सुरक्षा दृष्टिकोण से सैन्य अधिकारियों को लाख मना किया मगर इंदिरा ने देखा और सम्बोधित किया। 1. इंदिरा ने स्वार्थ ही क्यों दिखाया, राष्ट्रहित क्यों नहीं सोचा जब एक करोड़ शरणेार्थी भारत में घुस रहे थे, उनको रोकना चाहिए था गर इंदिरा रोकती तो ममता बनर्जी संघवाद की यूं धज्जियां नहीं उड़ाती। इंदिरा मुक्ति वाहिनी को मजबूत तथा बांग्लादेश को आजाद करने में लग गई जिसके परिणामस्वरूप आज तक शरणार्थी आ रहे हैं चाहे वह रोहिंग्या ही क्यों न हो 2. बांग्लादेश के बांग्लादेशियों ने पश्चिमी पाकिस्तान के सैनिकों को मारना चाहा जिसका उदाहरण यह है कि भारतीय सैनिक तीन हजार, तीस हजार पाकिस्तान सैनिकों ने आत्मसमर्पण तीन हजार सैनिकों के बल के आधार पर नहीं किया बल्कि आत्मसमर्पण इसलिए किया था कि भारतीय सेना के सामने आत्मसमर्पण की आड़ में बांग्लादेशियों से जान बचाई

जा सकती है वरना बांग्लादेशी बांग्लादेश में ही स्वाहा कर देंगे। 3. यह बात नियाजी ने मुख्य न्यायधीश ने हमीदुर रहमान (जो युद्ध की हार के लिए जांच आयोग का अध्यक्ष था) के सामने स्वीकारी। 4. हरिभूमि में जवाहर प्रताप लिखते है कि पूर्वी पाकिस्तन की मुक्तिवाहिनी व पश्चिमी पाकिस्तानी सेनाएं लड़ रही हैं। भारतीय जैकब निहत्था 16 दिसंबर 1971 में नियाजी की छाती पर जा बैठा और कहने लगा कि गर आप जनता बीच समर्पण करना चाहते हो तो मैं सुरक्षा की गारंटी देता हूं वरना 30 मिनट में आक्रमण का आदेश दे दूंगा।

इस प्रकार 13 दिन में (3 दिसंबर 1971 से 16 दिसंबर 1971) पाकिस्तान औरतों की तरह समर्पण भाव में आ गया जिसमें 93000 सैनिक भारत को सौंपे, राष्ट्रीय सहारा में डॉ. ब्रहादीप अलूने लिखते है कि अरोड़ा ने नियाजी को अपना पैन दिया, नियाजी ने आत्मसमर्पण पर हस्ताक्षर किए। नियाजी ने पिस्तौल व कन्धे से पद चिन्ह उतारे और अरोड़ा को सौंपे जबकि अरोड़ा व नियाजी दोनों देहरादून सैनिक स्कूल के साथी थे, जो 24 वर्ष बाद नियाजी ने तेजगांव (बांग्लादेश) हवाई अड्डे पर अपने साथी अरोड़ा का स्वागत किया, दोनों ने एक दूसरे के परिवार कां हाल पूछा। स्वार्थपरकता के उदाहरणः 1. मुसलमान अंग्रेजों से हारे। अशराफ जाति वर्ग ने वर्चस्व बचाने के लिए धार्मिक शिक्षण संस्थान (मदरसे) तब्लीगी जमात और जमात–ए–इस्लामी इस्लामिक संगठन खड़े किए। 2. हरियाणा में मेव जाति रहती थी। इलियास ने मेव जाति को भारतीयता से तोड़कर इस्लामिक बनाया, परिणामतः तबलीगी जमात खड़ी करके मेवा जाति क्षेत्र को मेवात बना डाला जहां आज हिन्दू असुरक्षित हैं। तब्लीगी जमात के मरकज (केन्द्र) फिर दुनिया में बने। ईरान व सऊदी अरब में प्रतिबन्धित होने लगे। तब्लीगी जमात की कार्यकलाप को दावत कहते हैं। इस्लाम में दावत का अर्थ है शामिल करना। तब्लीगी जमात को अहबाब भी कहा जाता है। तब्लीगी जमात का उद्देश्य अशराफीकरण है।

उदाहरणः प्रो. मसूद आलम फलाही अपनी किताब में लिखते हैं कि इलियास का पुत्र युसूफ मरा (जो दूसरा आमीर था) तो रहमतुल्लाह मेरठी पसमांदा तेली को इसलिए तीसरा अमीर बना बनाया हटाया गया कि वह पिछड़ा है आमीर कैसे बन सकता है फिर इलियास के भतीजे जकरिया ने अपने दामाद इनामुल हसन को आमीर बनवाया, कालांतर में इलियास के पड़पोते साद और इनामुल हसन के पोते जुहैर में संघर्ष होना स्वार्थ की पराकाष्ठा है। अन्ततः जमात बंटी। एक में साद/दूसरे में जुहैर। इसी जमात की फजायले अमाल किताब जमात का मुख पत्र है और अरब देशों में हिकायतुस्सहाबा (मोहम्मद के साथियों की कथाएं) पढ़ने की परम्परा है जो नस्लवाद व जातिवाद तथा मध्ययुगीन मानसिकता को बढ़ावा देती है। यह नौजवानों को मुख्यधारा में आने से रोकती है क्योंकि वह सवाल करते हैं उनकी अन्धी वैचारिकी का पसमांदा वर्ग का जवान खंडन करता है। डॉ. फैयाज अहमद फैजी भी तब्लीगी जमात में रहा है जो बताता है कि हमें सिखाया जाता था कि हमारी कामयाबी आगे जाने में नहीं बल्कि पीछे जाने में है अर्थात् भारत को फिर मध्यकाल खण्ड में ले जाओ और हुकूमत अपनी लाओ इसलिए जनसंख्या बढ़ाओ/भारतीयों तुम हिन्दी है हम वतन जैसे लेखकों से बचकर हिन्दुस्तान बचाकर रखना।

निष्कर्ष :-

कक्षा बारह में एक पाठ था द मार्क ऑफ विष्णु, जिसमें विष्णु नाम का व्यक्तित्व माथे पर वी का निशान बनाकर सांप को दूध पिलता था तो सांप ने उसके माथे के निशान वी पर ही डंक मारा। अब भारत उम्मीद कर रहा है कि बांग्लादेश शेख हसीना की मौजूदगी में धर्मनिरपेक्ष व राष्ट्रवादी बने, तसलीमा नसरीन की हिजरत का

अन्त करें। भारत अब भी बेवकूफ है जो सोच रहा है कि अगर नाजियों को 75 साल बाद 2020 में माफी मांगने के लिए बाध्य किया जा सकता है तो बांग्लादेश के खिलाफ अत्याचार के लिए 50 साल बाद पाकिस्तान को वैसे ही माफी हेतु दबाव बनाया जाए तो मामला यूटोपियन ही होगा। भारत सुरक्षात्मक बैटिंग न करे। भारत आक्रामक बने। भारत आक्रमणकारी बने ताकि अखण्ड भारत स्थापित कर सके। खुदाई खिदमतगार के स्वप्न को (पाकिस्तान का पुश्तो क्षेत्र) पूरा करे, उसे भारत का अंग बनाए, पीओके को ले। शिया को साथ रखे। पसमांदा को सुरक्षा दे क्योंकि पसमांदा मुस्लिमों में ओबीसी है जो पहले हिन्दुओ में एससी, एसटी ही था। यह पसमांदा मुस्लिमों का दलित आंदोलन है जिसमें हिन्दू खून दौड़ रहा है। पसमांदा आंदोलन द्विराष्ट्र सिद्धांत का विरोधी रहा है। उदाहरणार्थः 1. अब्दुल कयूम अंसारी ने मोमिन कांफ्रेंस बनाकर, पसमांदा समाज का मंत्री बनकर, 1946 में जिन्ना के द्विराष्ट्रवाद का विरोध किया था। 2. कलकत्ता में मौलाना अली हुसैन (आसिम बिहारी) ने पसमांदा आंदोलन की बुनियाद रखी। 3. महाराष्ट्र में मंडल आयोग से पहले 'महाराष्ट्र मुस्लिम ओबीसी संगठन' की स्थापना हुई, पसमांदा ओबीसी बने जिसके नेता 1981 में शब्बीर अंसारी थे। 4. 1994 में बिहार के एजाज अली ने ऑल इण्डिया बैंकवर्ड मुस्लिम मोर्चा का गठन कर पसमांदा आंदोलन को स्वरूप दिया। 5. जिसे अनवर अली ने 1998 में ऑल इंडिया पसमांदा मुस्लिम सहाज बनाकर आगे बढ़ाया। पसमांदा व दलित एक है। 6. मुस्लिम आबादी में पसमांदा 80–85 प्रतिशत है। 7. 2007 में मौलाना आलम फलाही ने 'हिन्दुस्तान में जात–पात और मुसलमान' ग्रन्थ लिखा। 8. फैयाज अहमद फैजी ने कहा है कि मुस्लिम समाज में समानता झूठ है।

भारत में दो प्रकार के मुसलमान हैं एक वे हैं जो अरबी, ईरानी, तुर्कियन हैं उन्हें अशराफ या शरीफ मुस्लिम कहा जाता है दूसरे वे हैं जो हिन्दू दलित तलवार के बल पर पसमांदा बनाए। अशराफ पसमांदा को गुलाम मानते हैं। 8. जहांगीर अहमद ने न्यूयार्क टाइम्स में लिखा है कि पाकिस्तान के गुलाम कश्मीर में एक मुस्लिम लौहार को 80 गोली मारी क्योंकि उसने ऊंच जाति की लड़की से शादी कर ली थी। 9. पसमांदा कबीर को अपना मसीहा मानते हैं। 10. इस्लाम में छुआछूत के बारे में बोलने वाले को अशराफ उलमा उसे कुफ्र फतवा जारी करते हैं तथा नस्ल व जाति कायम रखने वाले को फतवा देते हैं। 11. पसमांदा का विरोध है कि 1. मौलाना अबुल कलाम आजाद ने भारत के आजादी के बाद अशराफों को गोल टोपी पहनाकर शासन व प्रशासन में घुसा दिया जिससे पसमांदा पिछड़ा बना और दलित हुआ। 2. मदरसे परिवारवाद व सामंतवाद का प्रतीक हैं। 3. भारत का कोई धर्म नहीं फिर धार्मिक अल्पसंख्यक कैसे? मुस्लिम अल्पसंख्यक नहीं हो सकते क्योंकि कई देशों की कुल आबादी से ज्यादा मुसलमान भारत में हैं। 4. अशराफ पर्सनल लॉ बोर्ड का प्रयोग सरकारों पर दबाव बनाने के लिए करते हैं। इस प्रकार शिया, पसमांदा व पुश्तो क्षेत्र को तोड़कर बढ़ता मुस्लिम क्षेत्र कमजोर किया जा सकता है। अन्ततः कहा जा सकता है हिन्दी है हम वतन का चश्मा आज भी हिन्दुओं पर चढ़ा हुआ है तो शिया–सुन्नी तो इस्लाम की सर्वोच्चता पर एक मिलेंगे। जनसंख्या इनकी निशानी दुनिया को नजराना है। 21वीं सदी इस्लामिक सदी है। मान लो हिन्दुओं!!!

सम्दर्भ ग्रन्थ :–

1. दैनिक जागरण, 16.12.2021
2. दैनिक जागरण, 17.12.2021

3. दैनिक जागरण, 18.12.2021
4. अमर उजाला, 16.12.2021
5. नवभारत टाइम्स, 16.12.2021
6. राष्ट्रीय सहारा, 16.12.2021
7. पंजाब केसरी, 16.12.2021
8. पायनियर , 16.12.2021
9. उत्तम हिन्दू, 16.12.2021
10. हरिभूमि, 16.12.2021
11. एक्शन इण्डिया, 16.12.2021
12. दर्पण प्रतियोगिता, दिसंबर 2021
13. तरुणरथ, दिसंबर 2021

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 166-168

भारतीय साहित्य का संस्कृति और समाज उत्थान में योगदान

–सरला कुमारी
शोधार्थी, डी0 डी0 आर0 कॉलेज ऑफ एजुकेशन, खंडेवला।

भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य का अपना स्वतंत्र और प्रखर वैशिष्टय है जो अपने प्रदेश के व्यक्तित्व से मुद्रांकित है। तमिल का संगम साहित्य, तेलगु के द्वि–अर्थी काव्य और अवधान साहित्य मलयालम के संदेश काव्य एवं कीर – गीत (कलिप्पाट) तथा मणिप्रवालम् शैली, मराठी के पवाडे गुजराती के आरव्यान और फागु – बंगला का मंगल काव्य, असमियों के बडगीत और बुरंजी साहित्य, पंजाबी के रम्यारण्यान तथा वीरगति, उर्दू की गजल और हिंदी का रीतिकाव्य तथा छायावाद आदि अपने–अपने भाषा साहित्य के वैशिष्टय के उज्जवल प्रमाण हैं।

तेलुगु साहित्य के प्राचीनतम ज्ञात कवि हैं नन्नय जिनका समय है ईसा की ग्यारहवीं शती। कन्नड का प्रथम उपलब्ध ग्रंथ है 'कविराजमार्ग' जिसके लेखक है , राष्ट्रकूट वंश के नरेश नृपतुंग (814–877ई0) मलयालम की सर्वप्रथम कृति है 'रामचरितम्' यह 13वीं शतीं की रचना है। इसमें भाषा स्वरूप की अनेक समस्याएँ हैं। गुजराती तथा मराठी का अविभाव काल लगभग समान है। गुजराती का आदिग्रंथ 1185 ई0 में रचित शालिमदू सूरी का 'भारतेश्वरबाहुबलिरास' है।

बंगला की चर्मागीता की रचना 10–12वीं शताब्दी के बीच हुई। असमिया साहित्य के प्राचीनतम उदाहरण 13वीं शताब्दी के अंत में है जिसकी सर्वश्रेष्ठ रचना हेमसरस्वती की 'प्रहलादचरित्र और हरिगौरीसंवाद'। उडिया भाषा में 13वीं शताब्दी में व्यंग्यात्मक काव्य और लोकगीतों के दर्शन होते है। 14वीं शती में व्यास सारलादास का अविर्भाव हुआ।

प्राचीन भारतीय साहित्य :–

ब्राहमण या वैदिक साहित्य – वेद ब्राह्मण ग्रंथ आरण्यक उपनिषद, वेदांग, पुराण, स्मृति ग्रंथ बौद्ध साहित्य त्रिपिटका जैन साहित्य (बारह अंग, बारह उपांग, दस प्रकीर्ण, छेदसूत्र, मूलसूत्र, नान्दी सूत्र, अनुयोग द्वार।)

लौकिक साहित्य – रामायण महाभारत :–

संस्कृत के प्रमुख कवि और ग्रंथ – कालिदास, माघ, मारवि, श्रीहर्ष : नाट्य साहित्य (भारत, विशारवदत्त, शूद्रक, हर्षवर्धन, भवभूति, राजशेखर) गद्य साहित्य (बाणभट, दंडी) ऐतिहासिक कवि तथा ग्रंथर (पद्मगुप्त विल्हण, कल्हण, हेमचंद्र) कथा साहित्य (गुणाद्य, बृहत्कथामंजरी, कथासरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश, शब्दकोश।)

साहित्य का योगदान संस्कृति और समाज उत्थान के नव निर्माण और पुनर्निमाण में सहायक होता है। इसमें मनोभावों की प्रधानता होने के कारण इसका वास्तविक स्वरूप वैश्विक हो जाता है। साहित्य की प्रभावात्मक

क्षमता प्रच्छन्न एवं परोक्ष रूप से प्रबल होती है। साहित्य की प्रकृति वास्तव में उस शमी वृक्ष की भाँति है जो बाहर से शीतल है परंतु अंदर आग्नेय क्रांति का बडवानल छिपाए रहती है। इसकी प्रेरणा क्षणिक या सीमित न होकर सार्वकालिक और सार्वभौम होती है। साहित्य में समाज निर्माण की शक्ति होती है। कोई भी विचार शब्द में बँधकर भी स्थाई होता है। यह पीढियों तक पहुँचता हैं और भावी पीढी विगत की श्रेष्ठताओं के प्रकाश में अपना मार्ग बनाती है। श्रेष्ठता संस्कृति का अधिष्ठान है। जिस देश का साहित्य नष्ट हो जाता है उसकी संस्कृति स्वता नष्ट हो जाती है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध संस्कृतियों में से एक है। अन्य देशों की संस्कृतियाँ तो समय की धारा के साथ नष्ट होती रही किंतु भारतीय संस्कृति आदिकाल से ही अपने परंपरागत अस्तित्व के साथ अजर अमर है। इसमें उदारता, समन्वयवादी गुण तो समाहित है साथ ही इसका अस्तित्व इसका मूल है। समाज निर्माण में समान आचार – विचार, समान भाषा साहित्य और समान सांस्कृतिक आध्यात्मिक सोच सहायक होती है। कालंतर में जब जीवन पद्धति रूढ हो जाती है तब इनका पृथक–पृथक निवास भी सामाजिक एकता को विश्रृंखलित नहीं कर पाता। भारतीय संस्कृति उदात्त, समनयवादी, जीवंत है। जिसमें आध्यात्मिक प्रवृत्ति का अद्‌भुत समन्वय भी पाया जाता हैं। संसकृति व्यक्तिगत न होकर सामाजिक होती है जिसमें धर्म, प्रथा, परंपरा, रीति–रिवाज, भाषा, साहित्य, कानून शामिल रहते हैं। कहा गया है कि जो संस्कृति लोकतंत्र और स्थातित्व के आधार पर व्यापक हो उसकी ग्रहणशील प्रवृत्ति अलग होती है। साहित्य और समाज का संबंध अन्योन्याश्रित है।

भारतीय साहित्य भी इसी प्रकार का है। जो तात्कालिक समाज को प्रभावित करता है। यह ऐसा सजृक है जो समय और शास्त्र दानो की दृष्टा और ज्ञाता है। यह हंस के नीर क्षीर विवेक की भाँति सांस्कृतिक को चुनता है। भारतीय साहित्य की विषय वस्तु भारतीय समाज के समान है। यहाँ का साहित्यकार समाज में रहते हुए समाज के सुख–दुख, रीति–रिवाजों, कल्पनाशीलता को यर्थाथ की मान्य कसौटी पर कसता है। समाज जब भी बुराई की चपेट में आता है। साहित्यकार समाज का सजृन करता है। साहित्यकारों ने सदा ही समाज को सही राह दिखाने का कार्य किया है। साहित्य और समाज दोनों अलग–अलग होकर भी एक–दूसरे से जुडे हैं वैदिक साहित्य के बाद का रचित साहित्य इस बात का प्रमाण है। वाल्मीकि ने राम के चरित्र को दर्शाते हुए महाकाव्य रामायण को छंदबद्ध किया जो आज भी समाज निर्माण की भूमिका निभाता है।

महर्षि वेदव्यास ने महाभारत और श्रीमद्‌भागवत के माध्यम से जिस योगेश्वर चरित्र की सृष्टि की वे भारतीय संस्कृति के प्रतीक ग्रंथ बन गए। महात्मा बुद्‌ध ने अपने ज्ञान से जिस बौदध साहित्य का निर्माण किया वह कालांतर में राजधर्म बनकर एशिया का धर्म बना। जातकों ने सम्यक आचरण चरित्र, ज्ञानवादी समाज का निर्माण कर इतिहास रचा। जब समाज ज्ञान पथ से भटका तो आदिगुरू शंकराचार्य ने वैदिक साहित्य से समाज को दिशा दी। भारतीय संस्कृति की अखंडता भव्यता जीवन में भावना साहित्य और दर्शन को यथोचित स्थान प्रदान करती है। भारतीय साहित्य शास्त्र में रस को ब्रह्मस्वाद सहोदर इसलिए कहा है क्योकि जैसे साधना में सत्वोदेक का स्थान महत्वपूर्ण है वैसे ही रस निष्पति सत्वोदेक के बिना नही हो सकती। स्वतंत्रता आंदोलन के युग में भारत की तामसिक, सुप्त, निष्क्रम चेतना को सत्व गुण संपन्न कर संस्कार भावना का मार्ग प्रशस्त किया। इसी संस्कार ने मानव को हैवान से इंसान बनाया।

अज्ञेय के शब्दों में – ''चिंतन साहित्य और साहित्यकार को न केवल सीधे – सीधे सामाजिक परिवर्तन

से जोडता है बल्कि उसे अपना अधिकार समझता है ..... । उसकी गंभीरता भी परंपरा का आग्रह रूप ले लेती है। जिन साहित्यों में लीला भाव नहीं रहता वे स्थितिशील हो जाते है और उनकी गंभीरता भी रीति और परंपरा के आग्रह का रूप ले लेती है और प्रयोग से कतराती है।''

भारतीय साहित्य अस्मिता की पहचान कराता है यह स्थिति बोध कराकर साहित्य की जडों की पहचान कराकर उन्हे अपनी मिट्टी से रस खींचने की प्रेरणा देता है। समाज में व्याप्त बुराइयों का पता लगाकर मानवता, नैतिकता और उच्च सिद्धांतों की बात कराता है। साथ ही भारतीय समाज को आगे बढने की प्रेरणा प्रदान करता है। भारत में प्राचीनकाल मे संस्कृत को छोड अभिव्यक्ति का माध्यम प्राकृत भाषा को बनाया गया था। जिस समाज परिवर्तन के रूप मे देंखा गया। वर्तमान भारतीय समाज में आए परिवर्तन आने वाली पीढियों को संस्कारित और नैतिक मूल्यों के उत्थान मे सहायक बन रहे है। 19–20वीं शताब्दी भारतीय साहित्य की सांस्कृति समाज निर्माण ही शताब्दी है। यह समाज सुधार संघर्ष का विषय बना। इस काल के साहित्य ने समाज जागरण के लिए पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया तो कभी तात्कालिक सिथितयों पर गहन चिंता व्यक्त की है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' ही इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है। भारतीय साहित्य ने युवा पीढी को अपनी संस्कृति से विमुख होने से बचाया है। साथ ही समाज में सकारात्मक सोच का निर्माण किया है। इन्होंने व्याप्क मानवीय और राष्ट्रीय हित शामिल किए है। भारतीय साहित्यकारों में राष्ट्रीय स्तर पर हितावय एवं भयावह में अंतर करने की ही क्षमता नहीं है बल्कि समाज की दृष्टि की स्पटता प्रदान की है।

संदर्भ :-

1. प्राचीन भारत का इतिहास और संस्कृति – के0 सी0 श्रीवास्तव।
2. साहित्य और राष्ट्रबोध – डॉ0 कैलाश त्रिपाठी।
3. भाषा के सवाल – डॉ0 इंद्रनाथ मदान।
4. साहित्य, संस्कृति और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया – अज्ञेय।
5. स्वयं के संशोधित विचार।

मोबाईल नम्बर– 8398855090

ई–मेल– sarlakheta@gmail.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 169-172

समावेशी शिक्षा

–शिवराज सिंह शक्तावत
शोधार्थी, करियर पॉईंट यूनिवर्सिटी, कोटा
(श्यामनगर, हनुमान मंदिर के पास –रावतभाटा रोड़ कोटा –10)

कोई भी व्यक्ति सो प्रतिशत नाकाम नहीं होता है उनमें प्रयास करने का जज्बा कहीं न कहीं छुपा रहता है। आवश्यकता इस बात कि होती है कि उन्हें उनके जज्बो से अवगत कराया जाय तथा सर्वांगीण विकास के प्रति एक प्रशिक्षित प्रणाली द्वारा मार्ग प्रशस्त किया जाए ताकि वह अपनी हीन भावना को धूलधूसरित कर सके।

भूमण्डल पर समस्त जीवों में मनुष्यों को ही अधिकार प्रदान किये गये हैं, यद्यपि कुछ बालकों को विशेष प्रेम, करूणा और ध्यान की आवश्कयता होती है। यदि उन्हें उपेक्षित रखा जाये तो इसका विपरीत परीणाम राष्ट्र को भुगतना पड़ सकता है। भारतीय संविधान द्वारा समस्त जीवों के प्रति दया भाव को उपहार स्परूप प्रदान किया गया है, समावेशी शिक्षा भी शिक्षा जगत में किसी उपहार से कमतर तो नहीं है।

विभिन्न तथाकथित नामों से पुकारे जाने वाले अक्षम बालक बालिकाओं को आज हम ''दिव्यांग'' नामक शब्द से निरूपित करते है ताकि उनके कोमल हृदय पर कोई ठेस न पहुॅचे, ''दिव्यांग'' शब्द वर्तमान का सर्वाधिक नवीनतम प्रचलित शब्द है।

दिव्यांग जन विविध शारीरिक व मानसिक रोगों से ग्रस्त रहते है उनका शारीरिक और मानसिक विकास अवरूद्व सा हो जाता है जिनमें अधिकांश कूपोषण के शिकार होते है साथ ही हीन भावना से भी ग्रसित रहते है। वह सामान्य बालको, व्यक्तियों को देखकर अपने आपको छुपाकर रखते है। प्रायः वह अन्तर्मुखी प्रवृति के धनी होते हैं, जिनके हृदय को सहलाने व टटोलने की आवश्यकता के निमित एक समावेशी विद्यालय तथा उसमें समान रूप से दी जाने वाली शिक्षा ही दिव्यांगो की मनोवृति, प्रवृति तथा जीवन जीने की कला का सृजन करती है।

वर्तमान शैक्षिक वातावरण में समावेशी शिक्षा का प्रादुर्भाव विशिष्ट तथा सामान्य बालकों की आवश्यकताओं के सन्दर्भ में उनकी विशेष शिक्षा व्यवस्था के निमित्त ही हुआ है। आज का शैक्षिक परिवेश शून्य ''अस्वीकृति'' का परिवेश हैं, जिसके तहत उन अपवंचित वर्गो, निःशक्त जनो एवं भिन्न–भिन्न क्षमता वाले बालक बालिकाओं को समान रूप से शिक्षा पाने वाले सक्षम वर्ग के विद्यार्थियों के मध्य बैठाकर शिक्षा प्रदान कर रहे है, यही शिक्षा वास्तव में समावेशी शिक्षा की द्योतक है।

दिव्यांगो की संख्या जिस गति से बढ़ती जा रही है निश्चित रूप से चितंनीय विषय है। यह चिंता इसलिए भी एक मुद्दा बनी है क्योंकि ग्रामीण तबकों में इनकी संख्या सर्वाधिक है।

भारत एक विकासशील राष्ट्र है। आर्थिक रूप से यह इतना सक्षम नहीं हैं कि वह प्रत्येक गॉव और शहर में दिव्यांगो हेतु उचित शिक्षा व्यवस्था कर सके। ऐसी परिस्थियों में यदि सामान्य शिक्षार्थियों के माध्य बैठकर उन्हें शिक्षा से जोड़ा जाये तो सकारात्मक परिवर्तन सहज ही देखने को मिल जायेंगे। हीन भावना से गृसित विद्यार्थी जो समायोजन की प्रक्रिया में सहायक नहीं होते उनके अन्दर अथवा व्यवहार में समावेशी शिक्षा पद्धति के कारण ही श्रेष्ठ समायोजन व्यवहार देखने को मिल सकता है।

त्ज्म् अधिनियम 209 के तहत 6 से 14 वर्ष की आयु वाले विशेष आवश्यकता युक्त बालकों सहित समस्त बालकों के लिये समीपस्त विद्यालयों में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था का प्रावधान किया गया है जो कि समावेशी शिक्षा प्रणाली का ही एक माध्यम है। भारतीय संविधान धर्म, वर्ग, जाति, अर्थ, लिंग, रंग और रूप इत्यादि के आधार र विवेधों को निषेध करता है ताकि उन्हें किसी भी प्रकार से भिन्न देखे जाने के बजाय एक स्वतंत्र अधिगमकर्त्ता के रूप में देखा जा सके।

गैस सरकारी सामाजिक संगठनों के संविधानों में समावेशी शिक्षा से सम्बन्धित महत्वपूर्ण निर्देश अनिवार्य रूप से उल्लेखित होने चाहिये ताकि दिव्यांगों की बेहतर शिक्षा व्यवस्था भी उनका एक उद्देश्य हो।

त्ज्म् की नियमावलियों के अन्तर्गत प्रत्येक विद्यार्थी को पोषण युक्त भोजन भी निःशुल्क प्रदान करने का प्रावधान है जो कि विद्यालय स्तर पर शिक्षकों की देख–रेख में किया जाता है। पोषण के अभाव में पूर्ण स्वास्थ्य की कल्पना करना अनुचित हैं अतः समावेशी शिक्षा प्रणाली में विशिष्ट बालकों के पोषण पर भी बल दिया जाता है।

समावेशी शिक्षा से पूर्व लोगों की सोच होती थी कि निःशुक्ल बालक बालिकाओं को अन्यत्र ऐसे विद्यालयों में भेजा जाए जो विशेष रूप से ऐसे ही बालकों की शिक्षा हेतु निर्मित किये जाते है, परन्तु आर्थिक परिस्थितियॉ विकास के मार्ग में बाधा को इंगित करती है। प्रत्येक विक्षिप्त, विकलांग, दृष्टिबाधित के लिये माकूल व्यवस्था करने में कहीं न कही सरकार असफल रही है। अतः यक एक चुनौती है, जिसका समूचा समुदाय मिलकर सामना करे तथा पूर्ण निष्ठा एवं क्षमता के साथ इस चुनौती को विकास मे तब्दील कर सके।

समावेशी शिक्षा समायोजन का श्रेष्ठ माध्यम है। मानवीय मूल्यों, सामाजिकता, नैतिक दायित्व, सहयोग, सहानुभूति, एकता, स्वतंत्रता तथा सहभागिता का पथ प्रदर्शित कर अधिगम को उन्नयन करता है। अभिभावक, शिक्षक, प्रधानाध्यापक, निर्देशक वर्ग के लोग समावेशी शिक्षा के मार्ग में सहायक भूमिका का निर्वहन कर सकते है।

एक विद्यार्थी का रोल मॉडल उसका शिक्षक ही होता है। यदि वह समावेशी शिक्षा को गति देना चाहे तो यह जटिलता सरलता मे परिवर्तित हो सकती है। नवीन शिक्षा नीति भी समावेशी शिक्षा पर बल देती हैं। इसके अनुसार विद्यार्थी को अपना विषय चयन अपनी विद्वता के आधार पर करने का सुअवसर मिलता है, इतना ही नहीं गॉधी जी की शिक्षा जिसे हम वर्धा शिक्षा अथवा नई तालीमके नाम से जानते है वह रोजगारोन्मुखी शिक्षा की पोषक है, पर बल देती है।

वर्धा शिक्षा सम्मेलन इस बात का सूचक था कि आज का बालक पूरी शिक्षा पाने के उपरांत भी रोजगार से विच्छेद रहता है जो कि उसकी सफलता के मार्ग में बाधक तत्व के रूप में सामने आता है। यद्यपि शिक्षार्थी शिक्षाध्ययन करते रहने के दौरान भी रोजगार का चयन कर सके, ना कि पूरी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात एक

बेरोजगार की भॉति हाथ पर हाथ रख बैठा रहे।

शिक्षा मनोबल बढ़ाती है तथा परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता रखती है। शिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण के दौरान ही समावेशन की अवधारणा से परिचित करा देना चाहिए। उन्हें समावेशी शिक्षा के लाभ के विषय में पूरी जानकारी उपलब्ध होनी चाहिए ताकि वह अभिभावकों से भी सम्पर्क स्थापित कर उन्हें विद्यालय की गतिविधियों से अवगत करा सके। इस प्रकार इम विद्यार्थियों एवं छात्राध्यापकों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ सकेंगे।

समावेशी शिक्षा को विकास एवं सफल संचालन हेतु माध्यमिक विद्यालयों में मॉडल शिक्षण द्वारा अक्षम, अपवंचित विद्यार्थियों की शिक्षा को साकार रूप प्रदान कर सकते है। इसमें प्रथम शिक्षक अध्यापन का कार्य करता हैं तथा द्वितीय शिक्षक विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार सहयोग करता है। इससे कक्षा में उपथित बुद्धिलब्धि युक्त बालको के साथ–साथ साधारण बुद्धियुक्त बालको को भी शिक्षण अधिगम सहजता से हो जाता है। इस मॉडल शिक्षण में दिव्यांगों को सहायक शिक्षक उपलब्ध करवाकर उसमें अतिरिक्त
कौशल का भी विकास करवाता है। इस शिक्षण मॉडल में हर उस बालक पर दृष्टि रखी जाती है जिसे विशेष आवश्यकता होती है।

संसाधनों के अभाव में विद्यार्थी शिक्षण कार्य से पूर्णतया जड़ नहीं पाते है ऐसी स्थिति में मॉडल शिक्षण प्रक्रिया मील का पत्थर सिद्ध होती है। इतना ही नहीं इन बालकों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये विषय चयन में लचीलापन अपनाया गया है। कठिन विषयों को बदलकर विद्यार्थी की रोचकता के अनुकूल विषय परिवर्तन करने का सुअवसर प्रदान किया जाता है।

समावेशी शिक्षा सम्पूर्ण जगत के लिये एक अनिवार्य आवश्यकता है। यह चुनौती है, जिसे हम सभी को मिलकर दूर करना होगा, क्योंकि कछ साधारण सी समस्याएं होती है जिसका समाधान समय पर न किया जाये तो निःसंन्देह वह समस्या विकार अथवा भगनाशा के रूप धारण कर सकती है।

समावेशन के अन्तर्गत दृष्टि बाधित, विकलांग विद्यार्थियों को पुस्तकालय तक पहुॅचने में सहायक सामग्री तथा बेल लिपि जैसे उपकरणों की महत्ती आवश्यकता को पूरा किया जाना चाहिए, साथ ही विद्यालय निर्माण के दौरान रैंप का निर्माण भी किया जाना चाहियें।

अभिभावक वर्गो के समक्ष कभी–कभी दिव्यांगो के विद्यालय प्रवेश कि समस्या आती है। ऐसी स्थिति में समावेशी शिक्षा की पूर्णता हेतु विद्यालय में प्रवेश की जटिल प्रणाली बाधक तत्व के रूप में सामने आति है। बालको का प्रवेश सहजता से नहीं हो पाता है। इतना ही नहीं अनेको शिक्षक, प्रधानाध्यापक, प्रबन्ध समिति तथा निजि विद्यालय के निदेशकगण दिव्यांगों को प्रवेश से वंचित कर देते हैं, क्योंकि उन्हे ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों के शिक्षण अधिगम में इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा आदि जटिल विचार उनके मन में कौंधते है। इन्हीं कारणों से दिव्यांगों का प्रवेश सहज नहीं हो पता है। उक्त कारणों एवं जटिलताओं का समाधान सहशिक्षण विधि द्वारा किया जा सकता है। राज्य व केन्द्र सरकार को इसके लिये शिक्षकों के वेतन एवं भत्तों में निरन्तर वृद्धि की जाती रहनी चाहिए, क्योंकि पृष्ठपोषण सभी के लिए आवश्यक घटक है।

समावेशी शिक्षा के प्रति सजगता एक अनिवार्य उपक्रम हैं, यद्यपि समावेशन की पूर्णता हेतु विविध प्रयाय किये जा रहे हैं, फिर भी हम कहीं न कहीं कुछ कमियों के कारण सौ प्रतिशत सकारात्मक उपलब्धि तक नहीं

पहुॅच पा रहे है। अतः इसके नवीनतम सुझावों के निमित्ति समय–समय पर शिक्षाा मनीषियों, विद्धतजनों, प्राचार्यो एवं प्रवक्ताओं से सलाह लेते रहना समावेशी शिक्षा हेतु सहयोगी प्रयास होगा।

ऐसा नहीं है कि समावेशी शिक्षा के प्रयास पूर्व में नहीं किये गये। मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987 का प्रमुख उद्देश्य उन बाल–बालिकाओ को सुरक्षा प्रदान करना था जो मानसिक रोगो से ग्रसित थे। उनकी मानसिक विकृति को दूर करने के शैक्षिक सुविधाएॅ उपलब्ध कराना एक उपयोगी पहल थी।

भारत राष्ट्र ही नहीं अपितु विश्व के समस्त राष्ट्रों में सकारात्मक प्रयास किये जा रहे हैं, क्योंकि समावेषण एक चुनौती हैं, इससे उबरने के लिए विकलांगो के अन्तराष्ट्रीय दिवस 3 दिसम्बर 1992 में मनाया गया जिसका उद्देश्य विकंलागों का कल्याण था।

स्पेन के सलमान्का नामक स्थान पर 7 जून 1994 से 10 जून 1994 तक एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें 92 सरकारों के 300 प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा 25 अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भी सम्मिलित हुए जो कि विशेष आवश्यकता वाले बालकों की शिक्षा के लिये कार्य करते है।

जिस प्रकार समावेशी शिक्षा शिक्षक की भूमिका उत्तरदायित्व एवं नीति अक्षम, अपवंचित एवं पिछड़े छात्रों के समग्र विकास के लिये होती हैं, ठीक उसी प्रकार समावेशी शिक्षा शिक्षा प्रशिक्षक की भूमिका, उत्तरदायित्व एवं व्यावसायिक नीति शिक्षको के प्रशिक्षण एवं शिक्षक तैयार करने वाले कार्यक्रमों से सम्बन्धित होती है। शिक्षक प्रशिक्षण जब श्रेष्ठ रूप में शिक्षकों को तैयार करेगा तो निश्चित रूप से वह शिक्षक अपने दायित्वों को पूर्ण करेगा।

दिव्यांगों के उन्नयन का सर्वोत्तम बिन्दु विद्यालय माना जाता है। अतः हमें दिव्यांगों के समग्र विकास के लिये सतत प्रयास करते रहना होगा। समावेशन को प्रोत्याहित किया जाये तथा बहिष्करण को हतोत्साहित किया जाये।

संन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. मुक्त पाठ्य सामग्री– 2016–17
   केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड,
   शिक्षा केन्द्र – 2, समुदाय भवन, प्रीत विहार
   दिल्ली – 110092, भारत
2. समामेशि विद्यालय का सृजन
   प्रो. बैजनाथ शर्मा
   राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा – 282002
3. भारतीय शिक्षा की समस्याए एवं नई प्रवृतियॉ
   प्रो. मधुरेश्वर पारीक
   शिक्षा प्रकाशन जयपुर, 302003
4. समावेशी शिक्षा एवं अध्यापकों की अभिवृति
   डॉ. सुनीता तीवारी
   साहित्य प्रकाशन, जयपुर, 302033 मो.न. – 8619772259, 9928179843

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 173-177

बलदेव वंशी के काव्य में नारी विमर्श

–स्नेहलता
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, रघुनाथ गर्ल्स स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ।

हिन्दी साहित्य में साठोत्तरी कविता के सशक्त हस्ताक्षर बलदेव वंशी का जन्म सन् 1938 में मुल्तान शहर (पश्चिमी पंजाब, अब पाकिस्तान में) हुआ। बलदेव वंशी पाकिस्तान से विस्थापित होकर भारत आए उन्होंने शरणार्थी शिविर में समय बिताया। कठिन संघर्ष कर स्वयं को शिक्षित बनाकर समाज व साहित्य में स्थापित किया। इन सभी के बीच उनकी संवेदनाएँ बच्चों और महिलाओं के प्रति लगातार मन–मस्तिष्क में उद्वेलित होती रही। उनके साहित्य में नारी के प्रति चिंता स्पष्ट दिखाई देती है। समाज में मूल्यों के विघटन के साथ नारी की स्थिति भी दयनीय होती जा रही है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब वंशी जी ने काव्य लिखना आरंभ किया नारी विमर्श पर चर्चा अपने शिखर पर थी। प्रत्येक संवेदनशील साहित्यकार की भाँति बलदेव वंशी भी इस विषय पर अपने विचार रखते हैं। हालांकि वंशी जी किसी वाद का सहारा लेते हैं, लेकिन वंशी जी की स्थिति कुछ अलग है। सिद्धान्त, मतवाद, सम्प्रदाय और किसी विशेष विमर्श पर वह नहीं लिखते। अपने काव्य की विविधता और व्यापकता के लिए वंशी जी पहचाने जाते हैं।

वंशी जी अपनी कविता को उसी रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं, जिस रूप में वे उसे अनुभूत करते हैं। नारी की दशा जो समाज देखी उसे ही उन्होंने काव्य में उकेरा है। (हरिजन आदिवासी, गृहस्थ, गरीब) प्रत्येक वर्ग की महिला के प्रति वंशी जी की संवेदनाएँ काव्य में स्पष्ट होती है। एक गृहणी महिला की दशा का चित्रण करती वंशी जी की काव्य पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

''गृहिणियाँ बच्चों को
घरों में बंद कर काम समेट रही हैं
रस्सियों पर सूखते कपड़े/चारपाइयाँ
गृहस्थी के बिखरे पड़े जरूरी सामान
उनकी साँसे और हाथ/तेज–तेज चल रहे हैं . . .''

घर के कार्यों में उलझी नारी की स्थिति यह बताती है कि ये काव्य पंक्तियाँ विश्लेषण की माँग नहीं करती। गृहस्थ का अधिकतर भार महिला के ऊपर है और परिवार में उनकी स्थिति हम सब जानते हैं। न वह कोई निर्णय ले सकती है और न ही अपने मन की इच्छाओं को प्रकट कर सकती है। मन में भावनाओं को दबाए दुःख और उदासी को सहते मुस्कुराना उनकी नियति बन गया है। न वह पिता के घर स्वतंत्र है और न पति का घर उन्हें स्वतंत्रता देता है। इसी को प्रकट करती 'सुलगता अलाव' शीर्षक कविता से वंशी जी की काव्य

पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

''ऐसे–
तुम जहाँ भी जाती हो यह आग, अलाव
साथ ले जाती हो/पिता के घर से
पति के घर तक/आग की/दुःख की/उदासी की
एक लकीर खींचती हुई/मुस्कुराती हो।''

नारी की दशा बिगड़ती जा रही है। महिलाओं के अधिकारों की बात बहुत होती है, सरकार कानून बनाकर महिला सशक्तिकरण का खूब प्रचार करती रही है। लेकिन महिला की स्थिति जस की तस है। वह पहले भी पीड़ित थी आज भी है। परिवार ही नहीं समाज में हर कदम पर नारी को शोषण का शिकार होना पड़ता है। नारी का मानसिक, आर्थिक और शारीरिक शोषण आम बात की गई है। पति द्वारा शोषित नारी का चित्र प्रस्तुत करती वंशी जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य है –

''बच्ची अपनी पिटी हुई माँ का मुख
ऐसे भी तो चूम सकती है कभी जैसे हवा
कि माँ अपने बिखरे जोड़ों को समेट
उसे कलेवा करवाती
खिलखिला दे उचकती कराहों के बीच
कि आँसू–भरी आँखों में
चमचमा जाएँ ममता।''

ममता की पूर्ति अपने ममत्त्व में बंधी महिला, गृहस्थी चलाने के लिए विवश है। उपर्युक्त काव्य पंक्तियाँ इसी तथ्य को स्पष्ट कर रही है। नारी गृहणी के रूप में, माता के रूप में स्पष्टतः चित्रित है। भिखारिणी, अपाहिज महिला के चित्र वंशी जी की कविता में स्पष्ट दिखाई देते हैं।

सूरजों को लकवा मार गया है :
द्रुत–विलंबित पर घिसटता/भीख माँगता
उसका आधा धड़ सड़क बुहारता है
और आधा राहगीर को पुकारता है
कलशी–सा निकला बाजू''

सुरजो भिखारिणी पर कुछ अन्य काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य है –

''यह सुरजो है/आग तापती कुँआरी
यहीं हाथ लगा है यह सीलन भरा दर्द
गीला धुआँ खाया है उसने
हड्डियों के समान्तर रेंगता/अँटा–सटा।''

वंशी जी के काव्य पंक्तियों में भिखारिणी सुरजों का चित्रण बड़ा ही मार्मिक है। गुमनाम अंधकार में समा जाने वाली सड़कों पर जीवन यापन करने वाली निर्धन महिलाओं का नेतृत्त्व करती सुरजो हमें महिला

भिखारिणियों के जीवन से भी रू–ब–रू कराती है। इससे पहले काव्य में शायद ही किसी कवि द्वारा भिखारिणी महिला का इतना सूक्ष्म चित्रण किया गया हो। वंशी जी ने प्रत्येक वर्ग की महिलाओं की समस्याओं और चुनौतियों को बड़ी सूक्ष्मता से देखा–परखा, इसमें कोई संदेह नहीं। आदिवासी लड़कियों की दशा अधिक दयनीय है। वे न तो पढ़ना–लिखना सीख पाती है और ना ही अन्य कौशल कम उम्र में ही अपने छोटे बहन–भाईयों की जिम्मेवारी उठाते–उठाते बड़ी हो जाती है–

''तख्ती पर/सरकंडे की कलम से ककहरा लिख
गीले ही अक्षर/अचानक पोंछ दिए
आदिवासी लड़की ने और
रोते भाई को गोद में उठा
महुआ बीनने चली गई . . .''

हरिजन युवती की दशा को बताती निम्नलिखित काव्य पंक्तियाँ देखिए –

''तश्तरी में सजाकर इसे भी रख लें, जनाब एक ओर
ये बलात्कार के बाद जिंदा जला दी गई
हरिजन युवती की कुँआरी अस्थियाँ हैं, हुजूर।''

वंशी जी की उपर्युक्त काव्य पंक्तियाँ महिलाओं के साथ होने वाले अत्याचार की तस्वीर स्पष्ट करती है। बलदेव वंशी जी समाज का ध्यान इस और खींचना चाहते हैं कि महिलाओं पर अत्याचार होता है और उन्हें न्याय भी नहीं मिलता। जोखिम उठाकर आवाज उठाने वाली महिलाओं को समाज चरित्रहीन जैसे लांछनों से भेदता है। गरीब महिलाओं का तो समाज में जीना ही मुश्किल है। मेहनत–मजदूरी कर वे अपना पेट–पालती हैं और समाज का शोषण भी झेलती हैं। 'हरिजन बस्ती' शीर्षक कविता में हरिया की पत्नी का चित्रण करती अग्रलिखित काव्य पंक्तियाँ हैं –

''हरिजन बस्ती में
लूप की करामात आकाशवाणी
दुनिया भर को बता रही है
हरिया की बहु पुराने चिथड़ों में
नया लूप लगवा लौट रही है।''

महिला जीवन की घुटन, पीड़ा, यातना को प्रकट करती बलदेव वंशी जी कविता बूढ़ी माँ का बड़ा ही मार्मिक चित्रण करती हैं –

''अब नहीं सह पाती/कुछ भी अधिक–
ठंड या गर्मी या शोर या बनाया भूख–प्यास
भरे–पूरे नौ परिवारियों को, आज
खल रही है उसकी खाँसी रात–विरात की
बार–बार की/दवा/दवा की गंध।''

वृद्ध महिला परिवार में उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश है। भरे–पूरे परिवार में कोई उसकी संवेदनाओं

को नहीं समझता न ही कोई उसका ख्याल रखने वाला है। महिला जिन बच्चों पर अपना ममत्त्व निछावर करती है। उनके पास उसके लिए न संवेदना बची हैं न समय बचा है। वृद्ध माँ का वर्णन करती निम्नलिखित काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

''माँ की आँखें जा रही हैं/छिन रहा है दुनिया का रूप रंग
अब उसे याद नहीं रहती संध्या की आरती/दीया–बाती।''

निम्न वर्ग की गरीब महिला की दशा का चित्रण करती वंशी जी की निम्नलिखित काव्य पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

''भीतर आई झाड़ू–पोंछे वाली बाई
बिवाईयों सजे पाँव
पोंछा हाथों में गीले निचुड़ते झाड़न
ठिठक गई अचानक–थम गई।''

हमारे समाज में निम्न वर्ग की गरीब महिलाओं की दशा ही दयनीय नहीं है। उच्च वर्ग की कुलीन महिला भी स्वतंत्र नहीं है, सुरक्षित नहीं है। 'आत्मदान' शीर्षक कविता में गौतम ऋषि की पत्नी 'अहल्या' भी शोषित है। पुरूष द्वारा शोषित और पुरूष द्वारा ही शापित 'अहल्या' एक ऐसा उदाहरण है जो हमें स्पष्ट करता है कि नारी की दशा का जिम्मेवार पुरूष बहुत हद तक है –

''तुम ही दोषी और तुम्हीं न्यायकारी हो
तुम ही रक्षक, तुम ही व्याभिचारी हो।''

वंशी जी 'अहल्या' की कथा के आत्मालाप शैली में प्रस्तुत करते हुए नारी मन की परतों को खोलकर रखते हैं। वे इसमें यह भी स्वीकार करते हैं कि महिला की दशा और उसे 'ज्ञान शास्त्र से रहित' असत्य की मूर्ति, असंयमशीला की उपमा देने वाला पुरूष ही है–

''स्त्रियाँ 'इंद्रिय शून्य' हुई घोर 'असंयमशीला'
'शास्त्र ज्ञान से रहित' 'असत्य की मूर्ति' निपट
ये सभी विशेषण अभियोग सदृश
दिए पुरूषों ने।''

वंशी जी ने स्पष्ट कहा है कि पुरूषों के षड्यंत्र के कारण ही महिला शिक्षा से दूर होती है। वह षड्यंत्रकारी पुरूष पिता, भाई या पति किसी भी रूप में हो सकता है। आधुनिक समय में कामकाजी महिलाओं पर दोहरा दबाव है। घर, परिवार का भार, कार्यालय का दबाव उसके मन मस्तिष्क के साथ–साथ शरीर को निचोड़ रहा है। समाज कामकाजी महिलाओ के साथ भी सहयोग की भावना नहीं रखता। युवा पुरूष अपनी हम उम्र महिलाओं से प्रतिस्पर्धा रखते हैं। उनके संघर्ष को नहीं देखते, नहीं समझते कि समाज में अपना स्थान पाने के लिए वे अपनी नींद अपना आनंद सब कुर्बान करके यहाँ तक पहुँची है। पुरूष मानसिकता नारी के प्रति सहयोगी की भावना से बहुत दूर है। वे नारी पर चर्चाएँ करते हैं, लिखते हैं लेकिन दोहरी भूमिका निभाती नारी का सहयोग नहीं करते। वंशी जी पुरूष होते हुए नारी के प्रति संवेदना रखते हैं। समाज में उसकी दयनीय स्थिति को लेकर चिंतित है लेकिन 'पत्नी के प्रति' शीर्षक कविता में वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि उन्होंने अपनी पत्नी

के लिए क्या विशेष किया। पश्चाताप करते वंशी जी लिखते हैं–

''ओ मेरी गृहस्थ प्रिया!/मैंने तुम्हें
स्वतंत्र देश की टुच्ची ऋतुओ के भय
और शारीरिक जर्जरता के सिवा
क्या दिया?''

वंशी जी की भाँति समाज के प्रत्येक पुरूष को यह अनुभव करने की आवश्यकता है कि वह अपनी गृहस्थ प्रिया को क्या देते हैं। उसकी आजीवन सेवा का फल जर्जरता के रूप में उसके सामने होता है। विवाह से पूर्व नारी के जीवन पर नियंत्रण पिता व भाई रखते हैं और विवाह के पश्चात्, स्त्री पर पति का नियंत्रण होता है। आजीवन वह परिवार की देखभाल बिना किसी शर्त के करती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वंशी जी के काव्य में नारी–विमर्श पर पर्याप्त लिखा गया है। नारी की मानसिकता, परिवार के लिए सहयोग करती नारी समाज में अपनी स्थिति के लिए संघर्षरत् नारी सभी का चित्रण वंशी जी ने किया है। वे अहल्या से लेकर सुरजो, हरिया की बीवी और अपनी पत्नी तक के प्रति अपनी संवेदनाएँ रखते हैं। आदिवासी महिला उनके काव्य में स्थान पाती हैं। सड़क पर भीख माँगती महिला पर भी उनकी दृष्टि जाकर लेखनी में उसे साकार करती है। गृहणी की दशा वे अपने काव्य में उकेरते हैं। किसी भी वर्ग, किसी भी आय की महिला को उन्होंने अपने काव्य में उपेक्षित नहीं किया। उनके संघर्षों का चित्रण कर समाज का ध्यान आकर्षित किया है। 'हरिजन बस्ती' शीर्षक कविता में वंशी जी स्पष्ट करते हैं कि सरकार महिला के लिए जो भी करती है उसकी घोषणा कर अपना फायदा देखती है। महिलाओं के लिए प्रयास जमीनी स्तर से होने चाहिए। घोषणाओं से कोई फायदा नहीं होने वाला। अतः कहा जाता है कि वंशी जी अपने काव्य के माध्यम से नारी जीवन की यथार्थ को प्रकट करते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. बलदेव वंशी– कविता समग्र–3, पृ० 299
2. बलदेव वंशी– कविता समग्र–1, पृ० 413
3. वही, पृ० 251
4. बलदेव वंशी– कविता समग्र–2, पृ० 108
5. वही, पृ० 108
6. बलदेव वंशी– कविता समग्र–3, पृ० 86
7. बलदेव वंशी– कविता समग्र–1, पृ० 237
8. वही, पृ० 362
9. वही, पृ० 362
10. बलदेव वंशी– कविता समग्र–3, पृ० 129
11. वही, पृ० 216
12. बलदेव वंशी– कविता समग्र–1, पृ० 296
13. वही, पृ० 296
14. वही, पृ० 394

स्नेहलता पत्नी श्री अमित त्यागी, निवासी– सी0 86, गोल्ड कॉस्ट कॉलोनी, रोहटा रोड, मेरठ (उ0प्र0) – 250002, मो0नं0: 7060001460

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 178-183

धर्मपाल साहिल के उपन्यासों में निहित जीवन मूल्य

-सोनिया
शोधार्थिनी, हिंदी विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालन्धर (पंजाब)

शोध सारांश :-

धर्मपाल साहिल पंजाब क्षेत्र के एक सफल साहित्यकार हैं। साहित्य की हर विधा में चाहे वह कविता हो या कहानी, उपन्यास हो या लघुकथा, व्यंग हो या हास्य कथाएँ, इन्होंने सब पर अपनी लेखनी चलायी है। बाल मनोविज्ञान से सम्बन्धित भी इन्होंने कथा संग्रह लिखे हैं। इनके द्वारा रचित उपन्यास हैं, समझौता एक्सप्रेस, बेटी हूँ न, बायस्कोप, खिलने सेपहले, ककून, आर्तनाद और कितनी...। वे एक सफल उपन्यासकार की भांति अपने उपन्यासों में व्यक्ति, परिवार और समाज से संबंधित प्रत्येक पक्ष (सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक) को उजागर कर जीवन मूल्यों के महत्व व उनके बदलते स्वरूप और आधुनिक समय में मूल्य हीनता को दर्शाते हुए इससे बचने की चेतावनी देते हुए एक स्वस्थ समाज की संरचना के लिए पाठकों को सही जीवन मूल्यों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

मूल्य का जीवन से घनिष्ठ संबंध है। इस पद का प्रयोग चाहे जहां भी जिस भी रुप में करें सार्थकता तो वह मानव जीवन से जुड़कर ही पाता है। मूल्य का अर्थ तथा अस्तित्व जीवन के संदर्भ में ही है। इसलिए उसे जीवन से किसी भी प्रकार अलग करके नहीं देखा जा सकता। परंपरागत रूप से देखा जाए तो किसी वस्तु या कार्य के बदले में दी जाने वाली राशि को मूल्य कहा जाता है। जीवन से जुड़े होने के कारण मूल्य शब्द के अर्थ क्षेत्र में विस्तार होता जा रहा है। अब इस शब्द को का प्रयोग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक स्तर पर संपूर्ण मानव व्यवहार के मानदंड के रूप में किया जाने लगा है।

Keywords : सामाजिक, पारिवारिक, जीवन मूल्य, सांस्कृतिक, पारम्परिक।

मूल्यों का निर्माण समाज द्वारा किया जाता है। नवीन तथा परिवर्तित समाज की परिस्थितियों के अनुरूप ही मूल्यों का सृजन होता है। समाज सुधारक, बौद्धिक–वर्ग व राजनीतिज्ञ समाज को नई दिशा प्रदान करने के लिए नए मूल्यों का सृजन करते हैं। मूल्यों का निर्माण, विकास एवं संक्रमण समाज में प्रदेश व काल अनुरूप होता है धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष ये चार पुरुषार्थ भारतीय संस्कृति के पोषक व उन्नति के उद्घोषक माने गए हैं। वर्तमान में भौतिकवादी चिंतन पूंजीवादी सोच व जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिकीकरण एवं फिल्मों के दुष्प्रभाव आदि कारणों से भारत के समृद्ध एवं गौरवशाली मूल्यों का संक्रमण तथा विघटन हो रहा है।

पति-पत्नी के सम्बन्ध :-

सृष्टि, समाज तथा पारिवारिक जीवन का आधार दांपत्य जीवन को माना जाता है। पारिवारिक जीवन में

पति–पत्नी के संबंधों को ही दांपत्य जीवन कहा गया है। पति–पत्नी का आपसी प्रेम, स्नेह और विश्वास उनके दांपत्य जीवन में खुशहाली और आनंद लाता है। पति–पत्नी आपसी स्नेह, प्रेम और विश्वास में अपना सर्वस्व एक दूसरे को समर्पित करते हैं। उनके जीवन की कटुता व विसंगति संपूर्ण जीवन में दुख ही दुख पैदा कर देती है।

डॉक्टर अर्जुन चौहान दांपत्य जीवन के विषय में लिखते हैं, "स्त्री और पुरुष के मिलन से दांपत्य जीवन की शुरुआत होती है। सुखी दांपत्य जीवन की कुंजी है। पति–पत्नी में सामंजस्य, मेल, संतुलन, सच्चा–प्रेम और एक दूसरे के प्रति समर्पण की भावना आदि के अभाव में दांपत्य जीवन अशांत और दुखी बन जाता है।"[1] स्त्री–पुरुष परिवार रूपी रथ के दो पहिए होते हैं जितना पारस्परिक संतुलन होता है उतना ही परिवार सुखी रहता है। वर्तमान काल में पति–पत्नी के संबंधों में जो दरारे आ रही हैं उसका कारण वैचारिक समता का अभाव, समाज में अनमेल विवाह, अधिकार की भावना, स्त्री में अशिक्षा, पारस्परिक दुर्व्यवहार, पतिव्रता धर्म का आकांक्षी आदर्श आदि कारणों की वजह से पति पत्नी के संबंध बिगड़ने लगते हैं और अनेक अनेक जटिल समस्याओं को जन्म देते हैं इन सभी बातों को धर्मपाल साहिल ने अपने उपन्यासों में दर्शाया है।

धर्मपाल साहिल के 'खिलने से पहले' उपन्यास में सैफी के माता–पिता प्रेम विवाह करते हैं। उसके पिता हिंदू धर्म से हैं और माता मुस्लिम धर्म से। दोनों का परिवार इस रिश्ते को स्वीकार नहीं करते। वे अपने माता–पिता से अलग रहने लगते हैं परंतु धीरे–धीरे उनके संबंधों में मनमुटाव शुरू हो जाता है। उनकी इस अनबन से घर में जो वातावरण निर्मित होता है उसका यथार्थ वर्णन सैफी अपनी मैडम सुमित्रा से करती है "मैडम जी ! हमारे घर में तो कोई एक दूसरे से सीधे मुंह बात ही नहीं करता, तो लोरियां कौन सुनाएगा? मम्मी–पापा तो जरा–जरा सी बात पर एक दूसरे को काट खाने को दौड़ते हैं शायद ही कोई दिन ऐसा हो जिस दिन हमारे घर क्लेश नहीं होता।"[2]

धर्मपाल साहिल के उपन्यास 'और कितनी....'में शिवानी के माता–पिता विवाह के संदर्भ में उसकी पसंद के बारे में पूछते हैं। "शिवानी! अगर तुम्हारी कोई पसंद है, तुम्हारी कहीं ओर दिलचस्पी हो तो बता दो। पहले हम वह देख लेंगे। अब वक्त बदल गया है। लड़के–लड़कियां अपना जीवनसाथी स्वयं चुनने लगे हैं। देखो फिर मत कहना, मम्मी–पापा ने जबरदस्ती की है।"[3]

यहां माता–पिता के द्वारा लड़की की पसंद के बारे में पूछना मूल्य–संक्रमण है क्योंकि भारत में लड़कियों से उनकी पसंद के बारे में नहीं पूछा जाता था। शिवानी ने अपने माता–पिता की पसंद के लड़के से शादी कर ली। शिवानी बहुत ही संस्कारी और स्वाभिमानी लड़की है परंतु शिवानी और कन्नू का दांपत्य जीवन सफल नहीं हो पाता। कन्नू विवाह से पूर्व ही किसी और लड़की को प्रेम करता था उससे शादी करना चाहता था परंतु घर वालों के दबाव में शिवानी से शादी कर लेता है।

धर्मपाल साहिल के उपन्यास 'मचान' में चंचला और दिलबाग के दो बच्चे होते हैं। दोनों मिलकर अपने बच्चों की अच्छी परवरिश कर रहे होते हैं। अचानक दिलबाग की मृत्यु के बाद यह जिम्मेवारी अकेले चंचला पर आ जाती है और वह अपने बच्चों को अच्छा पढ़ा लिखा कर अच्छे इन्सान बनाना चाहती है। इसके लिए वह एक कंपनी में नौकरी करती है ताकि आपकी वह अपने बच्चों की अच्छे से परवरिश कर सके यहां माता–पिता और बच्चों से संबंधित मूल्यों का पारंपरिक रूप देखने को मिलता है।

माता-पिता और सन्तान के सम्बन्ध :-

बच्चों को संस्कारी बनाने का दायित्व माता–पिता को होता है। प्राचीन भारतीय परिवारों में तो माता–पिता के प्रति संतानों का बहुत ही ज्यादा समर्पण का भाव था। माता पिता प्रयास करते थे उनकी संताने संस्कारी बने और यश प्राप्त करें। बच्चे भी अपने बड़े बुजुर्गों का व माता–पिता का बहुत आदर करते थे व उनकी आज्ञा का पालन करते थे। बड़े बुजुर्ग व माता–पिता अपनी संतानों की सुरक्षा और विकास के लिए प्रति प्रतिबद्ध होते थे। पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्व दिया जाता था। वर्तमान समय में माता पिता और संतान के संबंधित मूल्यों का जो संक्रमण व विघटन हो रहा है उसे अमृतलाल मदान व धर्मपाल साहिल ने अपने उपन्यासों में दर्शाया है।

पति–पत्नी के परस्पर संबंधों का सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव सीधा संतति पर पड़ता है। धर्मपाल साहिल के उपन्यास 'खिलने से पहले' में सैफी और सनी बच्चों पर उनके माता–पिता के आपसी व्यवहार के प्रभाव को दिखाया गया है। सैफी के माता–पिता उसकी तरफ कोई ध्यान नहीं देते। यही पीड़ा सैफी अपनी सुमित्रा मैडम को बताती है, "मैडम जी! जब मम्मी ऑफिस से आती है। मैं ट्यूशन पर चली जाती हूं, अपना होमवर्क में वही पूरा करती हूं। मेरी स्टडी कैसी चल रही है? मैं क्या करती हूं? कहां जाती हूं? मेरे साथ क्या हो रहा है? इसके बारे में जानने का टाइम ना मम्मी के पास होता है ना पापा के पास। मम्मी की तो अक्सर किटी पार्टी होती हैं।"[4]

सैफीअपने माता–पिता के अपने प्रति हो रहे व्यवहार को इस प्रकार व्यक्त करती है "मैडम जी! अगर पापा मुझे प्यार नहीं करते तो मम्मी कौन सा करती है। जब से हमारे घर में छोटा भैया आया है ना। मुझे तो मम्मी ने जैसे भुला ही दिया है। मैडम जी जब मैं अकेली होती हूं ना तब खूब रोती हूं मेरा कसूर क्या है? आप ही बता दो ना।"[5] सैफी का उसके माता–पिता बिल्कुल भी ध्यान नहीं रखते हैं जिसके कारण सैफी गलत संगत में पड़ जाती हैं और और नेट चौटिंग करने लग जाती है। वह माता पिता के प्यार से ठगी हुई अनुभव करती है। इसके बावजूद भी उसके माता पिता उसकी तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं देते। उसकी मानसिक स्थिति बिगड़ जाती है, परंतु फिर भी उसकी मां उसके प्रति कोई प्रेम, कोई सहानुभूति का भाव नहीं दिखाती। सुमित्रा मैडम ही उसे अपने घर ले जाती है और उसका इलाज करवाती है। यहां माता पिता और संतान के बीच के संबंधों से संबंधित मूल्यो अत्यधिक संक्रमण और विघटन दिखाया गया है।

सास-ससुर और बहु के सम्बन्ध :-

प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति में सास–ससुर को बहुत ही उच्च–दर्जा प्राप्त था। सास को मां, और ससुर को पिता का दर्जा प्राप्त था। बहू के मन में अपने सास–ससुर के प्रति अपार श्रद्धा होती थी। सास ससुर भी अपनी बहू को पुत्री की तरह मानती थे। सास बहू का ऐसा रिश्ता आज दुर्लभ है। आमतौर पर देखा जाता है सास अपनी पुत्रवधू के साथ दुर्व्यवहार करती है और जब अगर सास के साथ ननदे भी मिल जाती हैं तो यह यातना बहू के लिए और भी कष्टकारक हो जाती है। दूसरी तरफ यह भी देखा गया है कि बदलते मूल्य ने पारिवारिक स्तर पर परंपरागत सासवाद को चुनौती देकर परिवार के बीच सास के प्रभाव को ही कम नहीं किया अपनी सास की स्थिति को एक बाहरी प्राणी के रूप में बदलने की चेष्टा भी की है। ऐसा देखा जाता है कि यदि सास–ससुर बहू के प्रति सद्भाव रखते हैं तो बहू के मन में भी सास–ससुर के प्रति स्नेह रहेगा ही। धर्मपाल साहिल ने अपने उपन्यासों में सास–ससुर और बहू के संबंध से संबंधित मूल्यों को दर्शाने का प्रयास किया गया

है।

धर्मपाल साहिल के 'मचान' उपन्यास में चंचला और उसकी सास का रिश्ता पारंपरिक पद्धति से वर्णित है। चंचला के पति और ससुर खेतों में काम करते हैं तो सास बहू घर का काम संभालती है पहले ससुर और फिर पति की मृत्यु के बाद घर दोनों सास बहू और दो बच्चे रह जाते हैं। सास बहू दोनों मिलकर घर की जिम्मेदारियों को निभाने का प्रयास करती हैं। घर में कोई और आमदनी का साधन ना होने के कारण चंचला एक फैक्ट्री में नौकरी करने के लिए जाती है। वह अपनी सास से बच्चों का ध्यान रखने के लिए कहती है। उसकी सास उसे झटपट अपना सहयोग देने का वचन देते हुए नसीहत भरे शब्दों में कहती है, "बहु चंचलो तू बच्चों की चिंता बिल्कुल मत कर, बस तू अपना ख्याल रखना। आजकल जमाना बहुत खराब है जवान और खूबसूरत विधवा पर कहीं गिद्ध दृष्टि रखते हैं बस उनसे बचना। खामखा बदनामी का टीका मत लगवा लेना हमारे। पहाड़ी समाज का पता ही है जीना हराम कर देगा इसे किसी की मजबूरी से कोई लेना देना नहीं होता।"[6].

यह बात सुनकर चंचलो उनको अपने बारे में आश्वस्त करते हुए कहती है "मां आप विश्वास करें आपकी चंचला ऐसा कोई कर्म नहीं करेगी। मुझे तो इन बच्चों की चिंता है इसीलिए यह कदम उठाया है।"[7].

यहां सास और बहू के बीच आपसी सामंजस्य सहयोग की भावना दिखाई देती है। यहां सास अपनी बहू को नसीहत भी देती है। बहु बहुत बहुत ही आदर से उस नसीहत का आदर भी करती है। यहां सास बहू संबंधित परंपरागत मूल्य दृष्टिगत होते हैं।

वर्ण और जाति व्यवस्था :-

प्राचीन समय में भारतीय समाज में जाति व्यवस्था के कारण व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता नहीं थी और ना ही स्वेच्छा से लड़का लड़की को विवाह करने की स्वतंत्रता थी। एक जाति के अपने आदर्श मूल्य होते थे जिससे सामाजिक एकता और बंधुत्व की भावना धीरे–धीरे नष्ट होती जा रही थी। इसी के कारण समाज में अश्पृश्यता, ऊंच–नीच तथा विषमता का उदय हुआ द्य वर्तमान समय में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव, आधुनिक शिक्षा, औद्योगीकरण, महानगरी करण, पूंजीवादी–व्यवस्था के कारण वर्ण–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था से संबंधित मूल्यों में संक्रमण और विघटन हुआ। वर्तमान समय में वर्ण, जाति–संबंधी पारंपरिक मूल्य मान्यताएं टूटने लगी हैं और नए मूल्यों ने उनकी जगह ले ली है। धर्मपाल साहिल ने अपने उपन्यासों में इसे दर्शाया है।

धर्मपाल साहिल के उपन्यास 'खिलने से पहले' में सैफी के माता–पिता प्रेम विवाह करते हैं। सैफी के पिता हिंदू धर्म से तथा माता मुस्लिम धर्म से है। यहां पर विवाह संबंधित उस मूल्य को टूटते दिखाया गया है जहां एक ही धर्म में शादी माननीय मानी जाती थी।

विवाह :-

भारतीय समाज और संस्कृति में विवाह को पवित्र बंधन माना जाता है। विवाह को दांपत्य जीवन का आधार माना गया है। विवाहित पति–पत्नी द्वारा एक दूसरे के प्रति एक निष्ठा की अपेक्षा की जाती है द्य पति–पत्नी के बीच में आत्मीयता, त्याग, लगाव, समर्पण की भावना, परस्पर सम्मान, आदर, कर्तव्य परायणता संतानोत्पत्ति, पारिवारिक संबंधों का सम्मान आदि विवाह से संबंधित मूल्य माने जाते हैं। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत माता–पिता की पसंद और अनुमति से लड़का लड़की की शादी की जाती थी वर्तमान समय में विवाह के अनेक रूप दिखाई देते हैं। ऐसे आयोजित विवाह प्रेम–विवाह, अंतरजातीय विवाह, बाल विवाह और विवाह

आदि भारत में विवाह पद्धति के भी अनेक रूप हैं जैसे अग्नि परिक्रमा, वचन संकल्प, देव साक्षी, कोर्ट मैरिज, लिव इन रिलेशनशिप आदि। प्राचीन भारत में विवाह परंपरा धर्म का भाग्य से जुड़ा हुआ था परन्तु अब उस दृष्टिकोण में बदलाव आने लगे हैं।

डॉक्टर हेमेंद्र पानेरी के अनुसार "वैवाहिक जीवन की रूढिगत मान्यताएं बदल चुकी हैं। विवाह के परंपरागत बंधन शिथिल हो गए हैं। अब विवाह को आत्माओं का पुनीत मिलन या जन्म जन्मांतर का संबंध स्वीकारना किया जाकर मात्र समझौता या मैत्री संबंध माना जाने लगा है। वैवाहिक जीवन में तलाक की स्वीकृति से परंपरागत गृहस्थय जीवन संबंधी मूल्यों को आघात लगा है। प्रेम–विवाह, अंतर जाति–विवाह, विधवा–विवाह आदि को स्वीकृति मिलने लगी है। आज जब बिना विवाह किए ही वैवाहिक जीवन की स्वछन्द्ताओं का उपभोग किया जा सकता है। तो फिर विवाह की आवश्यकता ही क्या है? यह विचारणातीव्र गति से बढ़ती जा रही है।"[9] यहाँ पर वैवाहिक जीवनमूल्य आत्मीयता, त्याग, लगाव, समर्पण की भावना, परस्पर सम्मान, आदर, कर्तव्य परायणता संतानोत्पत्ति, पारिवारिक संबंधों का अवमूल्यन दर्शाया गया है जिसके अभाव में दाम्पत्य जीवन दुःखी रहता है।

अन्धविश्वास व रूढिगत परम्पराएँ :-

भारत देश की संस्कृति काफी पुरानी है इसलिए उसमें अनेक प्रकार के अंधविश्वास भी हैं। हमारे यहां उपासना, प्रार्थना से लेकर जीवन के छोटे–छोटे क्रियाकलापों में अंधविश्वास दिखाई देता है। भारतीय समाज में परंपरा और धर्म से जुड़े हुए अनेक अंधविश्वास हैं। उनमें से कुछ को अशुभ तो कुछ को शुभ माना जाता है। उदाहरण स्वरूप काली बिल्ली के द्वारा रास्ता काटना, खाली घड़ा लेकर औरतका जाना अशुभ माना जाता है तथा घर से निकलते ही पानी से भरा घड़ा लेकर औरत के द्वारा रास्ता काटना, बाएं हाथ में खुजली होना आदि शुभ माना जाता है। भूत–प्रेत, तंत्र–मंत्र, जादू–टोने, धागा–ताबीज आदि को लेकर कई अंधविश्वास समाज में हैं। वर्तमान युग वैज्ञानिक है। अंधविश्वास और रूढ़ियां कम होती जा रही हैं, फिर भी पुरानी पीड़ियाँ और पिछडे हुए लोगों में कहीं ना कहीं इसका प्रभाव आज भी दिखाई देता है। धर्मपाल साहिल ने अंधविश्वासों तथा रूढिगत परम्पराओं को अपनी कृतियों में उजागर करने का प्रयास किया है।

भावनी सिस्टर, मैरी को अपने ससुराल वालों के अंधविश्वास के बारे में बताती है, "जब मैं गर्भवती हुई तो मुझे लड़का पैदा होने की दवाइयां लाकर खिलाई गई। कई पीरों–फकीरों, साधु–संतों का आशीर्वाद और ताबीज लाकर बांधे गए। उन दिनों टेस्ट करवाने का रिवाज नहीं था। शरीर के लक्षणों से ही अंदाजा लगाया जाता कि होने वाला बच्चा लड़का होगा या लड़की। मेरे शरीर में आ रहे परिवर्तनों से सभी को सौ फ़ीसदी यकीन था कि लड़का ही होगा। मुझे जमीन पर पावना धरने देते। बहुत सेवा की जा रही थी।"[10] .परंतु भावनी दो जुड़वा बेटियों को जन्म देती है यहां अंधविश्वासों को टूटते दिखाया गया है।

निष्कर्ष :-

मूल्यों का निर्माण, विकास एवं संक्रमण समाज में प्रदेश व काल अनुरूप होता है धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष ये चार पुरुषार्थ भारतीय संस्कृति के पोषक व उन्नति के उद्योतक माने गए हैं। वर्तमान में भौतिकवादी–चिंतन, पूंजीवादी सोच व पाश्चात्य संस्कृति एवं फिल्मों के दुष्प्रभाव आदि कारणों से भारत के समृद्ध एवं गौरवशाली मूल्यों का संक्रमण तथा विघटन हो रहा है।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

1. सिन्हा, डॉ प्रभात, राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्ग, नई दिल्ली, सर्व भाषा ट्रस्ट, (2021) पृष्ठ 102
2. साहिल, धर्मपाल, खिलने से पहले, नई दिल्ली, अयन प्रकाशन, महरौली (2010) पृष्ठ 18
3. साहिल, धर्मपाल,...और कितनी, जालन्धर पंजाब, त्रिवेणी साहित्य अकादमी (2018) पृष्ठ 21
4. साहिल, धर्मपाल, खिलने से पहले, महरौली नई दिल्ली, अयन प्रकाशन (2010) पृष्ठ 17
5. साहिल, धर्मपाल, खिलने से पहले, महरौली नई दिल्ली, अयन प्रकाशन (2010) पृष्ठ 18
6. साहिल, धर्मपाल, खिलने से पहले, महरौली नई दिल्ली, अयन प्रकाशन (2010) पृष्ठ 19
7. साहिल, धर्मपाल, मचान, जयपुर, बोधि प्रकाशन (2020) पृष्ठ 103
8. स्वाधीनता कालीन हिंदी साहित्य के जीवन मूल्य पृष्ठ 56
9. साहिल, धर्मपाल, बेटी हूं ना, मानसा, उड़ान पब्लिकेशन (2007) पृष्ठ 28
10. साहिल, धर्मपाल, बेटी हूं ना, मानसा, उड़ान पब्लिकेशन (2007) पृष्ठ 24

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 184-187

नई शिक्षा नीति की चुनौतियाँ

-डॉ. सूर्यकांत शिंदे
हिंदी विभागाध्यक्ष, लोकमान्य महाविद्यालय, सोनखेड, जि.नांदेड (महाराष्ट्र)

प्राक्कथन :-

वर्तमान दौर ग्लोबलायझेशन से गुजर रहा है। वास्तव में देखा जाए तोग्लोबलायझेशन की संकल्पना मुख्य रूप से आर्थिक क्षेत्रों के संदर्भ में प्रयोग में लायी जाती है। वैश्विकरण में खुली बाजार नीति का समर्थन किया जाता है। खुली बाजार नीति का स्विकार करने के बाद उसमें स्पर्धा अनिवार्य रूप से आ ही जाती है। इसी बाजार नीति के तहत भारत में प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा की वर्तमान भूमिका क्या है और कैसी रहनी चाहिए इसपर काफी गंभीरता से विचार विमर्श हो रहा है। भारत में शिक्षा की एक समृध्दशाली परंपरा देखने को मिलती है। नालंदा, तक्षशीला आदि प्राचीन विश्वविद्यालय इसके प्रमाण है। लेकिन सही अर्थों में भारत में आधुनिक शिक्षा का आरंभ करने का श्रेय ब्रिटिशों को जाता है, ब्रिटिशों ने ऑक्सफोर्ड, केंब्रिज जैसे विश्वविद्यालयों का मॉडेल सामने रखकर भारत में इन विश्वविद्यालयों की स्थापना की थी। ब्रिटिश तो चले गये लेकिन आजादी के सत्तर साल गुजर जाने बाद भी प्राथमिक कक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक की अवस्था क्या है इस पर गंभीरता से चिंतन करने की आवश्यकता है।

भारत में सर्व प्रथम सन 1968 में प्रथम बार नई शिक्षा नीति बनाई गयी थी उसके पश्चात सन 1986 में दूसरी बार नई शिक्षा नीति बनाई गयी और बाद में सन 1992 में नई शिक्षा नीति को संशोधित किया गया। अब लगभग 34 वर्षों बाद 2020 में पुनः नई शिक्षा नीति लाकर शिक्षा क्षेत्र में अमुलाग्र परिवर्तन किया जा रहा है।

नई शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य :-

नई शिक्षा नीति का महत्वपूर्ण उद्देश्य है भारत को वैश्विक स्तर पर शैक्षिक रूप में महाशक्ति बनाना तथा भारत में शिक्षा का सार्वभौमीकरण कर शिक्षा की गुणवत्ता को उच्च करना है। साथ ही भारत में बच्चों को तकनीकी तथा रचनात्मकता के साथ साथ शिक्षा की गुणवत्ता के महत्व से अवगत कराना नई शिक्षा नीति का उद्देश्य है। जिससे शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो सके।

नई शिक्षा नीति की विशेषताए :-

1) नई शिक्षा नीति 2020 आजादी के बाद की तीसरी महत्वपूर्ण शिक्षा नीति है जिसमें बुनियादी तौर पर परिवर्तन किये गये हैं।
2) इस शिक्षा नीति में शिक्षा क्षेत्र को तकनीकी से जोडा जाएगा,सभी स्कूलों में डिजिटल संसाधन मूहैया कराने का प्रावधान है।

3) प्रस्तुत शिक्षा नीति में सभी प्रकार की शैक्षिक विषय विषय वस्तु को क्षेत्रीय भाषा में भी अनुवाद किया जाएगा जिससे क्षेत्रीय भाषाओं को बढावा मिल सकेगा।

4) नई शिक्षा नीति के अंतर्गत अब शिक्षा में कई प्रकार के विकल्प बच्चों को दिए जाएंगे। अब दसवीं कक्षा में अन्य विकल्पों को भी रखा जाएगा जिसमें छात्र कोई स्ट्रिम ना चुनकर अपनी इच्छा अनुसार विषयों को चुन सकेगा।

5) नई शिक्षा नीति के अंतर्गत छात्रों को छठवीं कक्षा से ही कोडिंग सिखाई जाएगी।

6) साथ ही साथ शैक्षिक क्षेत्रों में वर्चुअल लैब को भी बनाया जाएगा जिससे शैक्षिक क्षेत्रों की गुणवत्ता को उच्च किया जा सके।

7) नई शिक्षा नीति के तहत वर्षों से चली आ रही 10+2 के शैक्षिक पँटर्न को बदलकर 5+3+3+4के नए शैक्षिक पँटर्न को चुना गया है। जिसमें तीन साल की फ्री स्कूली शिक्षा बच्चों को भी दी जाएगी।

8) नई शिक्षा नीति के भीतर शिक्षा का सार्वभौमीकरण किया जाएगा जिसमें कुछ शैक्षिक क्षेत्रों को शामिल नहीं किया गया है जैसे मेडिकल तथा लॉ।

9) "अब 1986 की शिक्षा नीति के तहत अबतक उच्च शिक्षा में कई नियामक कार्य कर रहे थे। जिसमें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद, भारतीय वास्तुकला परिषद, भारतीय फार्मेसी परिषद, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद आदि लेकिन अब नई शिक्षा नीति में विधि और चिकित्सा शिक्षा छोडकर बाकी सारी उच्च शिक्षा को एक ही नियामक के अंदर लाने का निर्णय किया गया है।"

वैसे देखा जाए तो भाषा ज्ञान के रास्तों को खोलती है लेकिन हमारे देश में अंग्रेजी भाषा की गुलाम मानसिकता ने गॉव,कस्बों व शहरों के विद्यार्थियों को अंग्रेजी भाषा ज्ञान के अभाव के कारण विज्ञान और तकनीकी ज्ञान से वंचित कर दिया है। आज पास पडोस में किसी भी विद्यालय में विज्ञान की शिक्षा हिंदी में लेने वाला छात्र,उच्च शिक्षा में प्रवेश के समय अंग्रेजी पाठ्यक्रम व अंग्रेजी भाषा की अनिर्वायता व हिंदी भाषा में पाठ्यपुस्तकों में अभाव के कारण विज्ञान व तकनीकी पाठ्यक्रमों से क्षमता होते हुए भी दूरी बना लेता है। यह हमारी शिक्षा नीति व भाषा नीति की विफलता है कि वह एक और आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है दूसरी ओर आजादी के इतने वर्षों के बाद भी हम ज्ञान– विज्ञान के पाठ्यक्रमों को हिंदी ,मातृभाषा व क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराने में असमर्थ है। जो थोडा बहुत उपलब्ध हो रहा है वह अनुवाद मात्र है। भाषा की इस दुरूहता के कारण हमारी बहुत सी प्रतिभाओं को सामने आने का अवसर नहीं मिल पा रहा है। रवींद्रनाथ टैगोर ने भी कहा है कि–"हमने अपनी आँखे खोकर चस्मे लगा लिए है।" यह चश्में विदेशी भाषाओं के है जो आजादी मिलने के उपरांत अधिक बढने और लगने लगे।"

नई शिक्षा नीति 2020 में मुख्य रुप से शिक्षण माध्यम के रुप में भाषा के सवाल को मुख्य रूप से उठाया गया है।जिसके लिए एक उपअध्याय 'बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति' शीर्षक रखा गया है। भारत सरकार द्वारा शिक्षा माध्यम के रूप में भाषा की शक्ति को पहचानते हुए विभिन्न प्रावधान व सुझाव इस शिक्षा नीति में किये गये है। इसमें कहा गया है कि "छोटे बच्चे अपनी घर की भाषा/मातृभाषा में सार्थक अवधारणाओं को अधिक तेजी से सीखते है और समझ लेते है।"

इस संदर्भ में महात्मा गाँधी जी के विचार भी महत्वपूर्ण है। गाँधी जी ने कहा था–"मेरी मातृभाषा में कितनी खामियाँ क्यों न हो? मैं इससे इसी तरह चिपटा रहूँगा जिस तरह बच्चा अपनी माँ की छाती से। यही मुझे जीवनदायनी दूध दे सकती है।"

निश्चित रूप से नई शिक्षा नीति में मातृभाषाओं को पुनःजीवित करने का प्रयास किया गया है। डॉ.जाकीर हुसैन के शब्दों में कहे तो "हिंदी वह धागा है जो विभिन्न मातृभाषाओं रूपी फूलों को पिरोकर भारत माता के लिए सुंदर हार का सृजन करेगा। हमारे संविधान की सबसे बडी खूबी ही अनेकता में एकता है"

इसलिए आवश्यकता है राष्ट्र के विकास के लिए एक शिक्षा नीति की, जिस प्रकार चीन की ज्ञान विज्ञान के शिक्षा का माध्यम उनकी अपनी भाषा है। उनका बाजार भी उनकी अपनी भाषा में संचालित है। उसी प्रकार हमारे देश में भी होना चाहिए।

शिक्षा, ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में भाषा का महत्व सर्वविदित है। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद्र ने निज भाषा का महत्व बताते हुए लिखा है–

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटन हिय के सूल'।।

देश की उन्नति में बिना मातृभाषा के ज्ञान और अध्ययन के सब व्यवहार व्यर्थ है। मातृभाषा से बच्चों का परिचय घर और परिवेश से ही शूरू हो जाता है। इस भाषा में बातचीत करने और चीजों को समझने–समझाने में आसानी होती है। अगरउनकी इस क्षमता का इस्तेमाल पढाई के माध्यम के रुप में मातृभाषा का चुनाव करके किया जाए तो इसके सकारात्मक परिणाम देखने को मिलते है।

"नई शिक्षा नीति में जिस तरह से प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के प्रभाव को समायोजित करते हुए हिंदी भाषा के महत्व को भी सम्मिलित किया है वह हिंदी के प्रभुत्व को स्थापित करते हुए भविष्य में भी हिंदी युग की स्थापना का कारक बनेगा"।

नई शिक्षा नीति की चुनौतिया :-

नई शिक्षा नीति के अंतर्गत 34 वर्षो बाद शैक्षिक ढांचे को बेहतर बनाने का प्रयास निश्चित रूप से सराहणीय कदम है।लेकिन जिस प्रकार किसी योजना के सकारात्मक तथा नकारात्मक पहलु होते है, उसी प्रकार नई शिक्षा नीति को जमीनी स्तर पर लागू करने में सरकार के समक्ष कई चुनौतियाँ हैं। इन चुनौतियों को निम्न रूप में देखा जा सकता है।

1) इन चुनौतियों में सबसे महत्वपूर्ण चुनौती है कि, वर्तमान में हमारे देश के अंदर एक तिहाई बच्चे प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ है। नई शिक्षा नीति में इस पर गंभीरतासे चिंतन होना आवश्यक है। इसमें भी चिंता इस बात की है की बीच में ही स्कूल छोडनेवाले अधिकांश बच्चे अनसूचित जाति, जनजाती, अल्पसंख्यक, आदिवासी, दिव्यांग समुदाय के है।

2) दूसरी महत्वपूर्ण चुनौती है,स्कूल, कॉलेजों की संख्यात्मक वृद्धि तो हुई है, लेकिन उन्हे बिजली, पानी, शौचालय, चारदीवारी, पुस्तकालय, कंप्यूटर आदि संसाधन मूहैया कराने में सरकार असमर्थ रही है।

3) नई शिक्षा नीति में तिसरी और महत्वपूर्ण चुनौति है देश भर के नगरों से लेकर कस्बों तक में अध्यापकों की कमी को दूर करना। अध्यपकों की कमी का सीधा असर गुणवत्ता पर होता है।

4) साथ ही साथ चौथी चुनौती है शिक्षा की गुणवत्ता को बढाने के लिए प्राथमिकता देना।

5) पांचवीं चुनौती है पाचवीं कक्षा तक स्थानीय भाषा में पढाई करवाना उतना आसान कार्य नहीं लग रहा है। जैसे अगर कोई बच्चा गुजरात में रहकर गुजराती भाषा में शिक्षा ग्रहण करता है यदि वह छात्र किसी कारणवश पंजाब में चला जाता है तो उसे भाषा चयन को लेकर समस्याओं का सामना करना पड सकता है। वह किस भाषा में पढाई करेगा इस पर प्रश्न चिंन्ह है।

6) साथ ही देश के अंतर्गत सरकारी स्कूलों का स्तर चिंताजनक है। इस पर भी नई शिक्षा नीति में विशेष प्रावधान दिखाई नहीं देता।

7) नई शिक्षा नीति में शिक्षा पर 6 फीसदी जीडीपी खर्च करने की योजना है, लेकिन प्रथम शिक्षा नीति 1968 से लेकर सन 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी वही लक्ष्य रखा गया था। लेकिन यह संभव नहीं हो सका। 2017–18 के सर्वे के अनुसार जीडीपी का केवल 2.7 फीसदी ही शिक्षा पर खर्च किया गया है। अब नई शिक्षा नीति में सरकार के सामने चुनौती है की वर्तमान जीडीपी 2.7 से 6 फीसदी तक ले जाने में कैसे सफल हो पायेगी? इस संदर्भ में सरकार की स्पष्ट नीति नहीं है।

निष्कर्ष :-

निश्चित रूप से नई शिक्षा नीति में शिक्षा सुधारों की नई उम्मिदों के साथ साथ कुछ चुनौतियाँ भी है। लेकिन किसी भी योजना के मायने तब सबित होते हैं जब उसे जमीनी स्तर मूर्त रूप देने में हम कितने सफल हो जाते। सशक्त भारत के निर्माण के लिए शिक्षा का ढांचा सुधारना आवश्यक है। हम आशा करते है कि बदलते शिक्षा परिदृश्य में 21वीं सदी के अनुसार इसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं जो शिक्षा के वर्तमान स्तर को सुधारने में अवश्य मददगार साबित होंगे। नई शिक्षा नीति से हम सशक्त नव भारत निर्माण की आशा रखते है। आवश्यकता है उसे प्रभावी तरीके से लागू करने की। अगर सच में उसका क्रियान्वयन हुआ तो भारत की युवा पीढी ज्ञान–विज्ञान के रास्तों को खोलकर राष्ट्र के विकास में अपना योगदान देगी इसमें संदेह नहीं है।

संदर्भ सूची :-

1. Hindi.nvsha.org
2. नई शिक्षा नीति और हिंदी–नवज्योति, नई दिल्ली।
3. Tv9hindi.com
4. भावना मासीवाल का लेख–Tv9 14 सितंबर, 2021
5. हिंदी साहित्य : यग और प्रवृतियाँ–डॉ. शिवकुमार शर्मा
6. शिक्षा नीति से जुडी चुनौतियाँ– डॉ. वारिंदर भाटिया (दिव्य हिमाचल.कॉम)

मेल : suryakantshinde03@gmail.com

मो. 8208691286

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 188-191

A STUDY ON THE CULTURAL APPROCH OF THE SATRA INSTITUTION

-Susmita Bhuyan
Masters from Bodoland University

Abstract :-

The institution of Satra is a unique feature of the Neo-Vaishnavism in Assam, founded by Sankardeva, known as the father of Assamese culture. Namghar and worshipping Vishnu is one of the most importat think of this Satra cultures and system. Peoples of different cultures came in Satra and without giving importance to their cast and creed they were assimilate to worshipping Vishnu. The Satra are not just monasteries but centres of traditional performing arts. In 15th century the first Satra was established in Majuli. Since then no. of Satras are set up for the propagation of ethics and socio-cultural ideals.

Key words- Satra, Namghar, Neo- Vaishnavism, Bargeet, Ankiya-Naat, Bhaona, Satriya dance, Ek sarana nama dharma,Bhortal, Kholtal etc.

Objectives :- The objectives of this paper are to study the cultural structure of the Satra system.

Methodology :- In preparing this works both primary and secondary sources will be collected.

Introduction :-

Assam is the meeting ground of the diverse culture. The people of the Assama state is an intermixture of various racial states and each have their own unique tradition, culture, dresses and exotic way of life. Among these tradition and culture, Satra culture is one of the very unique cultures of Assam. The first Satra of Assam was set up by Sri Sankardeva at Bardowa in 1494 A.D. Sankardeva as a founder of the Neo-Vaishnavite movement handed over the Satra Institute as a gift to the Assamese society. This Institute became the main centre place for both cultural and social activities of human life. Sri Sankardeva's Neo-Vaishnavite movement is based on the basic principle of humanity involving people from all walks of life.

The Satra Institutes brought far reaching changes in Assamese society and playing a remarkable Role in the cultural life of the people. It developed a new genre of philosophy, art, and music which

reflected in the forms of Bargeet, Ankiya Naat or Bhaona, Satriya dance and the Sankari School of painting. In this regard, The Satras which over the years have proved to be the custodians of the Neo-Vaishnavite movement have become an integral part of Assamese society.

Origin of the Satra institution :-

In the 14th and 15th century there was a great awakening in the wake of the Bhakti movement throughout India. This medieval Bhakti movement was based on the liberal principle of equality and brotherhood of man. It introduced an era of revolution in the history of India as a whole and in Assam (the Bhakti movement popularly known in Assam as the Neo- Vaishnavite movement) it was initiated by the great guru Sri Sankardeva, who gave it a new distinct shape, a new impetus to the people and a new life in its various aspects. Cast division and priestly oligarchy had become a source of social irritation and a means of popular exploitation. It was at this juncture that a number of religious leaders and social reformers like Ramananda, Kabir, Nanak, Namdev, Tukaram, Caityana, Ravidas etc. come on the scene.

Sankardeva doctrine of universial equality and fraternity were irresistibly attractive and drew adherents in great numbers. After the death of Sankardeva in 1568 A.D. his worthy successors Madhavdeva carried out the mission of his guru without carrying for his personal comfort. Madhvdeva did not allow any of his followers to relax the practice of Eksaranadharma. He intensified the movement and also extended its sphere by appointing twelve Dharamacarays with powers to initiate disciple at various places of the country. The most distinguished character of this movement in Assam was its Satra system. Namghar and worshipping Vishnu is one most important think of this all India based religion. Through this movement Sankardeva gave the people a simple religion based on Monotheistic Bhakti cult in place of polytheism.

Cultural approach of Satra Institution :-

Satra institution was most important part of our society. It has been enriching the Assamese life morally, socially, educationally and also contributed the literature and art. So its roles are important to develop our society as well as people life.

With the coming of the Neo-Vaishnavite religion we see the uplifting of the backward class, because according to the principle of Eksarana-nama-dharma all people irrespective of their caste and creed accepting the newly propagated religion. The believed of one God, it was the main culture of Satra system. It was helped to grow unity among the people of different region of Assam. Without importance of their caste, all people came in Satra and participate in different occasion. The great cultural ambassador Srimanta Sankardeva and Madhavdeva contributed a great deal in creating different art forms that become integral part of Assamese culture. Borgeet, Bhaona, Ankiya Geet, Holi Geet,

Dances, Drama and Theater, all are become centre of attraction from the common masses. Borgeet become a very popular song in this region, Ankiya Geet sung on special occasion like Doul festival, anniversaries of the two gurus and other festivals of the Barpeta help to grow the popularity of the Satra culture. As a example, resulted in the drama and theatre formation of professional theatre groups in and around Different region of Assam.

In traditional crafts making work was having a more important after the establishment of the Satra. Among the cultural ritual of the Satra Bhaona performances specially flourished in Satra where it becomes a regular feature on all ceremonial occasions. The growth and popularity of Bhaona gave birth to a class of artisans who specialized in the art of making costume, decoration, and accessories of the performance.

Satriya dance which is developed throughout the basis of the Satras has been achieving popularity and glory amongst all classes of audience in the present day till today. The Khol, Bargeet, Khuti-tal, and Bhortal introduced by Sankardeva through Satriya culture become the flow of vitality for Assam and a remarkable aspect of Assamese culture. All are leading to create National sentiments.

Besides this other handicrafts like: Bell and Brass metal industry (xorai and bota), pottery, wooden- craft (guru-asana), mask, jewelers, paintings, and ivory carving all are employed the rural people. This entire item helps to maintain the traditional culture of Satra system as well as in this land. The manuscripts were written mostly on sanchipat and tulapat and they are found in many satras, which prove that the practice of literature and culture took place in the Satra from the earliest time. And, it is also prove that the Satra have contributing a great deal to preserve Assamese culture.

So, from the beginning to still moment Satra institution contributing a lot to our society in every aspect like in growth of literature, to preserve our own culture and others. This institution established equality among Hindus, Muslim, Christian and others. In short the cultural approach of Satra system helps to the formation of a greater Assamese society in its traditional way. Basically culture like Satriya culture and Bhaona are alive by the Satra culture. Satras act as moral governor and also maintained the moral and ethical code.

Conclusion :-

Satra institution becomes the centre stage of all activities of the village and the interior areas. Satra institution were the head centre of spreading the Sankari culture and Satra institution provided a new dimension to the Assamese society through the multifarious activity which is always represent to Assamese society. Satra culture create the feeling of unification, mutual understanding, equality and spirit of co-operation which takes the Assamese people in the bond of friendship, brotherhood etc. It teaches the people the real path of humanity through moral and religious teaching. In present

time it is the only institution which served as a cultural zone for people of all community. So, it is the sacred duty for the people to save the religion of Mahapurusha by avoiding discrimination. So, in lastly it can be pointed out that as a socio-cultural institution of Assam the Satra have multiracial and multinational feature which prepare the ground for the exercise of culture of different community. It creates the opportunity to take in all people from any caste or any background and made a field of cultural assimilation.

References :-

1. Raichoudhury, Anil (2004), Namani Asamar Samajik Patabhumi, published by Sadananda Gogoi, Publication Board Assam, Guwahati-781021.
2. Sarma, S.N.(1966) The Neo-Vaishnavite Movement and the Satra institution of Assam,Published by Sri K.N Dutta Baruah, Panbazar, Gwahati.
3. Goswami, Dr. Kesabananda (2000), Ankiya bhaona, Published by Makhan Hazarika. Banalata, Dibrugarh.
4. Neog, Mafeswar(1950), Sri Sri Sankardeva, Published by Chadra Prakash, Panbazar guwahati.

Mail id: bhuyans062@gmail.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 192-196

प्रवासी साहित्यकार तेजेन्द्र शर्मा जी की कहानी 'देह की कीमत' में रिश्तो का खोखलापन

–उधम सिंह
पी.एच.डी (हिंदी) शोधार्थी, जे.एस. विश्वविद्यालय शिकोहाबाद उत्तर प्रदेश

प्रवासी साहित्य हिंदी साहित्य की नवीन विधा होने के साथ प्रवासीयों के मनोविज्ञान से जुड़ी है। यह एक नई अर्न्तदृष्टि है जिसके फलस्वरूप प्रवासी साहित्य समृद्व हो रहा है। प्रवासी साहित्यकार भावात्मक रूप से अपने देश से जुड़े रहते है। उनके साहित्य में अपनी मातृभूमि के प्रति निष्ठा झलकना स्वाभाविक है प्रवासी साहित्यकार विश्व के अनेकों देशो में फैले हुये है जिन्होने हिंदी साहित्य के अन्तर्गत उपन्सास, एकांकी, नाटक कहानी, यात्रा वर्णन, आत्मकथा आदि विधाओं का साहित्य में योगदान किया है।

प्रवासी साहित्य में मनुष्य द्वारा भोगे गए मानसिक संताप और दुख को बड़े अच्छे ढ़ग से चित्रित किया है। तेजेन्द्र शर्मा जी एक प्रसिद्व प्रवासी साहित्यकार है। जिन्होने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य को एक नई पहचान दी है। तेजेन्द्र शर्मा जी अपनी बातों को पाठकों के सम्मुख बड़ी स्पष्टता व सरलता से रख देते है। वे अपनी कहानियों में पात्रानुकुल भाषा का प्रयोग करते है। आज तेजेन्द्र शर्मा जी केवल यूरोप की सीमा तक ही सीमित नही है बल्कि विश्व के प्रमुख साहित्यकारो में अपना स्थान बना चुके है। उनकी कहानियाँ यर्थात के धरातल पर लिखि गई है जो आज समाज की विसंगतियो और सामाजिक मानवीय सम्बंधों की सच्चाई को उजागर करती है।

तेजेन्द्र शर्मा जन्म 21 अक्टूबर 1952 में पंजाब के शहर जगराँव के रेलवे क्वार्टरों में हुआ। पिता वहाँ के सहायक स्टेशन मास्टर थे। उचाना, रोहतक (अब हरियाणा में) वे मोड़ मंडी में बचपन के कुछ वर्ष बिताकर 1960 में पिता का तबादला उन्हें दिल्ली ले आया। पंजाबी भाषी तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी विद्यालयी शिक्षा दिल्ली के अंधा मुगल क्षेत्र के सरकारी विद्यालय से प्राप्त की। शर्मा जी ने दिल्ली विश्वविद्यालय से अंग्रेजी विषय में स्नातकोत्तर तथा कंप्यूटर में डिप्लोमा किया है शर्मा जी अंग्रेजी, पंजाबी, उर्दू तथा गुजराती भाषाओं का भी ज्ञान रखते हैं।

शर्मा जी ने अनेक कहानियों की रचना की है जैसे– बेघर आँखें, पासपोर्ट का रंग, इस दीवार में रास्ता, बेतरतीत जिन्दगी, फ्रेम से बाहर, ऑवरफलो पार्किंग, तरकीब, होमलेस, कैलिप्सा, कल फिर आना, दीवार में रास्ता, कल का समाचार, इंतज़ाम, यह सन्नाटा कब टूटेगा आदि।

'देह की कीमत' नामक कहानी तेजेन्द्र शर्मा द्वारा रचित कहानी संग्रह 'देह की कीमत' की प्रथम कहानी है इस कहानी में उन्होनें मानवीय सम्बंधों की हकीकत को उजागर किया है। कहानी में अन्त तक रिश्तों का

खोखलापन दिखाई देता है। तेजेन्द्र शर्मा जी ने कहानी के पात्र स्वार्थ में डुबे दिखाए है। इन पात्रों में प्रेम और संवेदनाए बिल्कुल शून्य हो चुकी है। कहानी का नायक एक युवा लड़का हरदीप है। जो अपनी पसंद की लड़की प्रमजीत कौर से शादी करता है। प्रमजीत कौर हरजीत के साथ शादी के बाद चार–पाच महीने का समय बिताती है। हरदीप अपनी पत्नी की इच्छा के विरूद्व गैर कानूनी ढंग से विदेश चला जाता है। वह विदेश में मर जाता है। हरदीप के मित्र विदेश से उसके मृत शरीर के बदले तीन लाख रूपये भेजने के लिए उसके घरवालों को पूछतें है। हरदीप की मॉ बीजी और उसके छोटे भाई इतने स्वार्थी होते है की वह शोक न मनाकर तीन लाख रूपये को लेने के बारे में सोचते है। बीजी चाहती है कि घर का पैसा घर में ही रहें इसलिए शोक न मनाकर परमजीत की शादी हरदीप के छोटे भाई से करवाना चाहती है। हरदीप की मॉ बीजी की सभी संवेदनाए शून्य हो चुकी है वह परमजीत के दुख को समझना ही नही चाहती है। इसके विपरित परमजीत को भला–बुरा भी कहती है यह सब देखकर हरदीप के पिताजी दार जी बड़े दुखी व हैरान होते है।

कहानी में बीजी कहती है '' लाल सूट वाली दा नाम तो पूछ लैदा। बीजी को अपने पुत्र की व्यग्रता कही अच्छी भी लगी थी। ... उनका लाडला बेटा जापान जाने की तैयारी में है। यदि वहां से कोई चपटी नाक वाली जापानी पत्नी उठा लाया तो बीजी का क्या होगा।'' [1]

हरदीप जापान जाने से पहले अपने किसी रिश्तेदार के विवाह परमजीत कौर को लाल सूट में देख लेता है। वह अपनी मॉ बीजी को उस लाल सूट वाली लड़की के बारें में बताता है कि वह उसी लाल सूट वाली लड़की से शादी करना चाहता है। बीजी भी यह सोचकर तैयार हो जाती है कि कही उसका बेटा जापान जाकर किसी विदेशी लडकी से विवाह करके घर ना ले आयें इसलिए वह उस लाल सूट वाली लड़की की खोज में लग जाती है। और अपने बेटे का विवाह फरीदाबाद सैक्टर अठारह की रहने वाली लड़की परमजीत कौर उर्फ पम्मी से कर देती है। दोनो मॉ बेटो के रिश्ते में इतना खोखलापन है कि वह अपने रिश्तों व संसकारों पर इतना भी विश्वास नही करते है कि उनका बेटा विदेश जाने पर माता–पिता की मरजी से शादी करेगा या नही इसलिए तत्काल अपने बेटे की शादी परमजीत कौर से करवा देते है।

''खरीदने को तो दारजी नौकरी भी खरीद देते परन्तु हरदीप को तो न नौकरी करनी थी और न ही दारजी के व्यापार में हाथ बटाना था ... उसे तो बस किसी भी तरह विदेश जाना था ... बस... वहां जाना था. .. पैसा कमाना था और ऐश की जिन्दगी जिनी थी।'' [2]

हरदीप और दारजी के आपसी रिश्ते अच्छे नही थें उनके रिश्तों में भी खोखलापन था हरदीप मेहनत करके परीक्षा में पास नहीं होता था। वह अपने पिता दारजी के नाम की वजह से हर वार परीक्षा में पास हो जाता था दारजी भी प्रति वर्ष अपने बेटे को परीक्षा में पास करवा देते थे वे सोचते थे की उनका बेटा बड़ा होकर उनके बिजनेस में उनके साथ काम करेगा या नौकरी करेगा। परन्तु हरदीप को अपने पिता की इच्छा से कोई मतलब नही था। जो मॉ–बॉप अपने बच्चों को मेहनत करके बड़ा करते है बच्चे पलभर में उनसे अलग हो जाते है हरदीप के दिमाक में भी कुछ ऐसा ही चल रहा था। वह तो बस किसी भी तरह विदेश जाना चाहता था। बहुत पैसा कमाना चाहता था ताकि ऐश की जिन्दगी जी सकें। विदेशी वस्तुओं को देखते ही उनकें प्रति हरदीप का आर्कषण बड जाता था। फिर उसे अपने पिता की इच्छा से क्या मतलब। इसलिए वह न तो अपने पिता कें साथ व्यापार में साथ देता था ना ही हरदीप को नौकरी करनी थी उसके दिमाक में बस विदेश जाने का भूत सवार था। इसी

सोच के कारण दारजी अपने बेटे के लिए नौकरी नहीं ढुढते है। क्योकि पिता और बेटा दोनो के आपसी रिश्तो में नौकरी, व्यापार, काम धंधे को लेकर सोच में फर्क था दोनो बाप बेटे अलग–अलग जगह काम करना चाहते थें। कहने को तो बाप बेटे का रिश्ता था परन्तु नौकरी व बिजनेस को लेकर आपसी रिश्तो में काफी खोखलापन दिखाई देता है।

''हरदीप को कही भनक लग गई की पकड़ी धार सिखों को यहां नौकरी नहीं मिल सकती ...बस... कर आया केंशों का अन्तिम संस्कार। कर दिया दारजी की भावनाओं का खून...हो गई नौकरी की तैयारी। ''[3]

हरदीप ने बस एक बात की जिद कर रखी थी की उसे विदेश जाना है। परन्तु विदेश में नौकरी करने के अपने नियम होते है। हरदीप को कही से पता चल गया था की जापान में पगडी वालों को नौकरी पर नही रखते है। तो हरदीप ने तुरत ही अपने केशो (बालों) को कटवा दिया। सिक्ख धर्म के अनुसार केश व पगड़ी अनिवार्य होती है परन्तु आज युवा इतना स्वार्थी हो गया है कि वह अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए अपने रिति रिवाजो, परम्पराओं व संस्कारों को छोड़ देता है। दारजी ने अपने बेटे को जो संस्कार व परम्पराऐ सिखाई थी हरदीप ने उन परम्पराओं (केशो) को नौकरी के लिए पलभर में त्याग दिया। आज माता पिता के साथ औलाद के रिश्ते इतने मजबूत नहीं है कि उनके बच्चे अपने रिति–रिवाजो का पालन कर सके। जिन्हे उनके पूर्वज सिखाते रहे है आज उनके आपसी रिश्तों में खोखलापन है।

''क्यो जी आप ऐसा ''इल–लीगल'' काम क्यो करते है। ... अगर कभी पकड़े गए तो ?'' [4]

जब किसी दूसरे परिवार के साथ शादी संबंध जोड़ा जाता है तो दोनो पक्ष लड़का लड़की के बारे में एक दूसरे के बारे में बताते है। भावना व सोच यह होती है कि सब कुछ अच्छा होगा। सामने वाले ने सब कुछ अपने बारे में सब कुछ इमानदारी के साथ बताया होगा। आपसी रिश्तो के प्रति इमानदार होगे। परन्तु ''देह की कीमत''

कहानी में भी बताया तो ऐसा ही गया था लेकिन ऐसा था नही। शादी के समय तो परमजीत कौर को बताया गया था की लड़का जापान में काम करता है। दो तीन वर्ष में वहो से खूब पैसा कमा कर लाता है परन्तु शादी के कुछ महने बाद जब परमजीत को सच्चाई का पता लगा कि उसके पति अवैध तरीके से जापान जाता है तो वह अपने पति को जापान जाने से मना करती है हरदीप को समझाती है कि आप विदेश में कभी पकड़े गए तो मेरा क्या होगा। हरदीप अपने रिश्तों के प्रति न तो ईमानदार था ना ही सम्मान करता था। वे अपनी पत्नी के मना करने पर भी अवैध ढंग से जापान जाता है। पति पत्नी के रिश्तों में मजबूती, व त्याग की भावना कम तथा खोखलापन ज्यादा दिखाई देता है।

''ओये तुम जनानियों को मर्दो की बातों में दखल नही देना चाहिए। ... तुम अपना घर सॅभालो... बस। पैसे कमाना हम मर्दो का काम है। वोह हमारे उपर छोड दो।'' [5]

कहानी में जैसे ही परमजीत कौर को हरदीप की सच्चाई का पता चलाता है। कि हरदीप अवैध तरीके से जापान जाकर पैसा कमाता है तो हरदीप से वह खुलकर बात करती है। वह हरदीप को जापान जाने से मना करती है। वह अपने रिश्तों में ईमानदारी से रहना व कमाना चाहती है। अपने पति से कहती है कि मै दाल रोटी खाकर खुश हूॅ। आपको अवैध ढंग से जापान जाने की कोई जरूरत नही है। आप दारजी के बिजनेस को सभालिऐं। परन्तु आपसी रिश्तों में मजबूती, त्याग, ईमानदारी नही चाहता। उसे इम्पोर्टड चिजें चाहिएं। उसकी जो पत्नी हर कार्य में बराबर का भागीदार बनना चाहती थी उसकी शक्ति जवाब देने लगी हरदीप ने अपनी पत्नी

की बात नही मानी और उसको केवल घर सभालने के लिए कहा। हरदीप का मानना था की औरतों को पुरूषों की बातो में दखल नही देना चाहिए। व फिर से अवैध तरीके से जापान जाता है। वे एक दुसरे की बाते नही मानते है उनके रिश्ते मजबूती से नहीं बधे है। परमजीत कौर एक आर्दश पत्नी थी परन्तु हरदीप पुरूषवादी सोच का स्वार्थी इसान था। जिसे पत्नी से ज्यादा इम्पोर्टड चिजों से प्यार था।

''मै तो पहले ही कहन्दी सी, कुडी मंगली।... ऐसे ब्याह नही करना।... मेरी तो कभी कोई सुनता ही नही।... बिजी का विलाप जारी था। ''[6]

हरदीप जापान में बिमार हो जाता है अवैध तरीके से विदेश में रहने के कारण वह डाक्टर के पास भी नहीं जा सकता था उसे डर था कि कही उसका भेद खुल गया तो वह पकड़ा जाऐगा हरदीप के कुछ दोस्त उसकी दवा करवाते भी है परन्तु आर्थिक तंगी के कारण हरदीप कमजोरी में ही काम के लिए निकल पड़ता है। सड़क पार करते समय हरदीप को चक्कर आ गये। सड़क पर तेज गति से आति कार को ड्राईवर ने परन्तु इसी के बीच हरदीप जापान में एक लावारिस लाश बन गया। भारत में उसके घर वालों को सूचना दी गई परन्तु हरदीप के पिता दारजी के अलावा परिवार के सभी सदस्य हरदीप की मौत का कारण परमजीत को मानते है। यह सब परमजीत के मंगली होने के कारण हुआ है हरदीप की मॉ बीजी शोक में मनाकर परमजीत को मौत का जिम्मेवार मानने के साथ–साथ उसके भला–बुरा भी कहती है। बिजी का बहूँ के प्रति रिश्ता अच्छा नही है।

''पूरा घर तनाव से भर गया। बिजी ने पूरा घर सर पर उठा लिया, ऐस कमीनी नू पैसा मेरे पुतर तो ज्यादा प्यारा हो गया। ''[7]

दारजी ने हरदीप के मृत शरीर के बदले मिलने वाले तीन लाख रूप्ये का ड्राफट परमजीत कौर के नाम से बनवाने को और हरदीप की अस्थियों को कलश में भेजने को कह दिया। यह बाते सुनकर बिजी व हरदीप के छोटे भाईयों ने पूरे घर में तांडव मचा दिया। क्योकि वह पैसा बिजी स्वयं लेना चाहती थी। बिजी व उसके छोटे बेटो को शोक के स्थान पर पैसो की पड़ी थी इसलिए दारजी बिजी के खिलाफ हो जाते है और बिजी को डाटते है।

''अगर कुलदीप पम्मी पर चादर डाल दे तो कैसा रहे ?... घर की इज्जत भी घर में रह जाऐगी...।''[8]

दारजी ने जब तीन लाख रूपये का चैंक जो हरदीप के मृत शरीर के बदले उसके दोस्त भेज रहे थे पम्मी के नाम भेजने को कहा। दारजी ने बिजी की बात नही मानी तो बिजी स्वार्थ में इतना निचे गिर गई की वह हरदीप की मौत का शोक न मनाकर अपने छोटे बेटे से पम्मी के विवाह के बारे में कहती है। ताकि पैसे किसी भी तरह लिए जा सके।

''दारजी समझ गये की उसकी पत्नी को इस वक्त बस तीन लाख रूपये ही दिखाई दे रहे है।... पर वे इस फैसले से हटने वाले इसांन नही थे।'' [9]

तेजेन्द्र शर्मा जी एक भारतीय की नजर से समाज में यर्थात को देखते है और अपनी कहानियों में बहुत सी सूक्ष्म घटनाओं और गतिविधियों का व्यौारा देते है। तेजेन्द्र शर्मा जी की कहानियों में रिश्तों का खोखलापन सर्वत्र दिखाई देता है। कोई भी रिश्ता मजबूती से नही टिका है। हमारे समाज में सबंधो की विशेष परमपरा रही है।परन्तु आज आपसी रिश्तों में स्वार्थ की भावना प्रबल होने लगी है। तेजेन्द्र शर्मा जी की कहानियां हमें अपने ईद–गिर्द की कहानियॉ प्रतित होती है। उनकी कहानियों में दर्द है, संवेदना है, रिश्तो का खोखलापन है।

सदंर्भ सूची :-

1. देह की कीमत, तेजेन्द्र शर्मा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2001, पृष्ठ 09
2. वही ... पृष्ठ 11
3. वही ...पृष्ठ 11
4. वही ...पृष्ठ 12
5. वही ... पृष्ठ 13
6. वही ... पृष्ठ 12
7. वही ... पृष्ठ 20
8. वही ... पृष्ठ 20
9. वही ... पृष्ठ 20

उधम सिंह

गांव कलसाडा, तहसील हथीन, डाकघर हथीन

जिला पलवल, राज्य हरियाणा, पिन कोडः 121103

ईमेल.आई.डीः नकींउेमीतूंज/हउंपसण्बवउ

फोन न0 9050117447

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 197-200

नई शिक्षा नीति

–डॉ0 विभा पांडेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, (वाणिज्य), राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ओबरा, सोनभद्र, उत्तर प्रदेश – 231219

भारत में समग्र शिक्षा का एक लंबा इतिहास रहा है। प्राचीन भारत में शिक्षा का संबंध न केवल इस दुनिया में जीवन जीने के लिए ज्ञान प्राप्त करने से था, बल्कि सांसारिक बंधनों से स्वयं की पूर्ण प्राप्ति और मुक्ति के लिए भी था।

भारत में शिक्षा उन संस्कृतियों के मिश्रण से समृद्ध हुई जो आक्रमणों से लेकर अंग्रेजों के आगमन तक भारत में आईं। जीवन निर्माण और चरित्र निर्माण में एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में शिक्षा के मूल्य को महसूस करते हुए, स्वतंत्रता के बाद कई पहल की गईं और अभी भी शिक्षा के क्षेत्र में की जा रही हैं।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति सभी को बिना किसी भेदभाव के और उनकी सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि के बावजूद सुलभ, समान और सस्ती शिक्षा प्रदान करने के लिए शुरू की गई है।

एक न्यायपूर्ण और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए पूर्ण मानव क्षमता प्राप्त करने के लिए शिक्षा एक मूलभूत आवश्यकता है। पूरी दुनिया ज्ञान परिदृश्य में तेजी से बदलाव के दौर से गुजर रही है।

इस संदर्भ में भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई, 2020 को नई राष्ट्रीय नीति 2020 को मंजूरी दी गई और मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय करने की भी मंजूरी दी गई। यह नई शिक्षा नीति 2020 34 साल पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की जगह लेगी।

इस नई शिक्षा नीति 2020 की दृष्टि छात्रों को न केवल विचार में बल्कि व्यवहार, बुद्धि और कार्य के साथ–साथ ज्ञान, कौशल, मूल्यों और सोच में भी भारतीय होने पर गर्व करना चाहिए, जो मानव अधिकारों, सतत विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। और अस्तित्व और वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हों, ताकि वे वास्तव में वैश्विक नागरिक बन सकें।

इतिहास –

देश में एक नई शिक्षा नीति की आवश्यकता लंबे समय से महसूस की जा रही थी। भारत में अब तक तीन राष्ट्रीय शिक्षा नीतियां लागू की जा चुकी हैं। ये तीन नीतियां राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को वर्ष 1992 में संशोधित किया गया था। शिक्षा पर पिछली नीतियों का जोर मुख्य रूप से शिक्षा तक पहुंच के मुद्दों पर था।

नई शिक्षा नीति पिछली शिक्षा नीति की कमियों और वर्तमान और भविष्य की जरूरतों को ध्यान में रखते

हुए लाई गई है, जिससे स्कूल और उच्च शिक्षा दोनों क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर परिवर्तनकारी सुधार हो सकते हैं। जून 2017 में नई शिक्षा नीति तैयार करने के लिए इसरो के पूर्व प्रमुख डॉ. के. कस्तूरी रंगन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया था। इस समिति द्वारा मई 2019 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप प्रस्तुत किया गया था।

परिचय –

पूर्ण मानव क्षमता प्राप्त करने के लिए, शिक्षा एक न्यायसंगत और न्यायसंगत समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए एक मूलभूत आवश्यकता है। ज्ञान के परिदृश्य में पूरी दुनिया तेजी से बदलाव के दौर से गुजर रही है। इस संदर्भ में भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई, 2020 को राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 को मंजूरी दी गई और मानव संसाधन विकास मंत्रालय का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय भी कर दिया गया। यह नई शिक्षा नीति 34 साल पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की जगह लेगी।

नई शिक्षा नीति २०२० के उद्देश्य –

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य 2030 तक स्कूली शिक्षा में 100ः सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) के साथ पूर्व–विद्यालय से माध्यमिक स्तर तक शिक्षा का सार्वभौमिकरण करना है। नई शिक्षा नीति 2020 में कुछ बदलावों का प्रस्ताव है, जिसमें विदेशी विश्वविद्यालयों में भारतीय उच्च शिक्षा का उद्घाटन, कई निकास विकल्पों के साथ चार वर्षीय बहु–विषयक स्नातक कार्यक्रम की शुरुआत शामिल है। नई शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाना है।

एनईपी 2020 नीति में यह भी प्रस्ताव है कि सभी विश्वविद्यालयों और कॉलेजों का लक्ष्य 2040 तक बहु–विषयक होना है। यह नीति देश में रोजगार को बढ़ावा देगी और हमारी शिक्षा प्रणाली को मौलिक रूप से बदल देगी।

नई शिक्षा नीति के सिद्धांत –

लचीलापन : यह शिक्षार्थियों को अपनी सीखने की गति चुनने और अपनी प्रतिभा के अनुसार अपना रास्ता चुनने के लिए लचीलापन प्रदान करना चाहता है।

बहु-विषयक : विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कोडिंग, कला, मानविकी, खेल आदि सभी क्षेत्रों में समग्र शिक्षा प्रदान करना।

नैतिक और संवैधानिक मूल्य : इसका उद्देश्य सहानुभूति, दूसरों के प्रति सम्मान, स्वच्छता, शिष्टाचार, वैज्ञानिक स्वभाव, स्वतंत्रता, जिम्मेदारी, समानता और न्याय के मूल्यों को विकसित करना है।

सतत नीति : जमीनी हकीकत के नियमित मूल्यांकन के आधार पर नीतियां बनाना। भारत की समृद्ध, विविध, प्राचीन और आधुनिक संस्कृति और ज्ञान प्रणाली और परंपरा को ध्यान में रखते हुए।

समानता और समावेश : यह सभी शैक्षिक निर्णयों का उद्देश्य होगा, यह सुनिश्चित करना कि सभी छात्र शिक्षा प्रणाली में आगे बढ़ सकें।

जीवन कौशल : जीवन कौशल जैसे सहयोग, टीम वर्क, संचार, लचीलापन, आदि के निर्माण पर ध्यान केंद्रित करना।

व्यावसायिक मूल्य : सभी शिक्षकों और शिक्षकों को कड़ी तैयारी के माध्यम से भर्ती किया जाएगा। तैयारी,

निरंतर व्यावसायिक विकास, सकारात्मक कार्य वातावरण और सेवा विकास पर जोर दिया जाएगा।

मौलिक अधिकार के रूप में शिक्षा : शिक्षा एक सार्वजनिक सेवा है न कि व्यावसायिक गतिविधि। यह सभी के लिए पर्याप्त गुणवत्ता के साथ उपलब्ध होना चाहिए। एक जीवंत सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली के साथ–साथ एक नैतिक और परोपकारी निजी प्रणाली में मजबूत और स्थायी निवेश होना चाहिए।

नई शिक्षा नीति 2020 की प्रणाली –

यह नीति मौजूदा 10 + 2 स्कूल प्रणाली को 5 + 3 + 3 + 4 की एक नई प्रणाली में पुनर्गठित करने की बात करती है, जो 3 से 18 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के पाठ्यक्रम और शिक्षण का आधार है। वर्तमान में, 3 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों को 10 + 2 संरचना में शामिल नहीं किया जाता है, क्योंकि 6 वर्ष के बच्चों को कक्षा 1 में प्रवेश दिया जाता है।

वर्तमान 10 + 2 प्रणाली को क्रमशः 3–8, 8–11, 11–14 और 14–18 वर्ष की आयु के अनुसार एक नई 5 + 3 + 3 + 4 पाठ्यक्रम संरचना द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना है।

फाउंडेशन स्टेज 5 –

फाउंडेशन स्टेज 5 को दो भागों में बांटा गया है। आंगनबाडी में पहले तीन साल तक बच्चे प्री–स्कूली शिक्षा लेंगे। इसके बाद अगले दो साल तक बच्चे एक स्कूल में कक्षा 1 और 2 में पढ़ेंगे। इन 5 वर्षों के अध्ययन के लिए एक नया पाठ्यक्रम तैयार किया जाएगा। इसमें 3 से 8 साल के बच्चे शामिल होंगे।

प्रारंभिक चरण 3 –

प्रारंभिक चरण 3 में कक्षा 3 से 5 तक के बच्चों को पढ़ाया जाएगा। इस दौरान बच्चों को प्रयोग के माध्यम से विज्ञान, गणित, कला आदि की शिक्षा दी जाएगी। यह 8 से 11 साल के बच्चों को पढ़ाया जाएगा।

मध्य विद्यालय चरण 3 –

इस चरण में कक्षा 6 से 8 तक के बच्चों को शिक्षा दी जाएगी। इन कक्षाओं में विषय आधारित पाठ्यक्रम पढ़ाए जाएंगे। वोकेशनल कोर्स भी कक्षा 6 से शुरू किए जाएंगे, जिसमें बच्चों को तरह–तरह के हुनर सिखाए जाएंगे। कक्षा 6 से ही बच्चे को कोडिंग सिखाई जाएगी। साथ ही प्रोजेक्ट बेस्ड लर्निंग भी कक्षा 6 से शुरू होगी। इस चरण में 11 से 14 साल के बच्चों को शामिल किया जाएगा।

माध्यमिक चरण 4 –

इस चरण में कक्षा 9 से 12 तक के छात्र दो चरणों में पढ़ाई करेंगे। पहले चरण में कक्षा 9 और 10 के छात्र और दूसरे चरण में कक्षा 11 और 12 के छात्र होंगे।

छात्रों को विषय चुनने की भी छूट होगी। कुछ विषय ऐसे होंगे जो सभी के लिए सामान्य होंगे और कुछ वैकल्पिक विषय होंगे जैसे कला, संगीत, व्यावसायिक विषय आदि, जिनमें से छात्र अपनी रुचि के अनुसार विषय का चयन कर सकेंगे। इस चरण में 14 से 18 वर्ष के बच्चों को शामिल किया जाएगा।

नई शिक्षा नीति 2020 के लाभ –

कक्षा 10 और 12 की बोर्ड परीक्षाओं को आसान बनाने के लिए, याद किए गए तथ्यों के बजाय मुख्य दक्षताओं का परीक्षण करना होगा, सभी छात्रों को दो बार परीक्षा देने की अनुमति है।

सार्वजनिक और निजी दोनों स्कूलों को विनियमित करने के लिए एक स्वतंत्र प्राधिकरण। स्कूलों में शैक्षिक

धाराओं, अतिरिक्त पाठ्यचर्या, व्यावसायिक भाप के बीच कोई कठोर अलगाव नहीं है। व्यावसायिक शिक्षा कक्षा 6 से इंटर्नशिप के साथ शुरू होती है।

नई शिक्षा नीति 2020 की चुनौतियां –

महंगी शिक्षा : नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रवेश से शिक्षा व्यवस्था महंगी होने की उम्मीद है।

मानव संसाधन की कमी : वर्तमान प्रारंभिक शिक्षा में कुशल शिक्षकों की कमी है। ऐसे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत प्रारंभिक शिक्षा के लिए बनाई गई व्यवस्था के क्रियान्वयन में व्यावहारिक दिक्कतें देखने को मिल रही हैं।

शिक्षकों का पलायन : विदेशी विश्वविद्यालयों में प्रवेश से कुशल भारतीय शिक्षकों का पलायन होगा।

शिक्षक की शिक्षा –

शिक्षक शिक्षा के लिए एक नया और व्यापक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ढांचा (एनसीएफटीई) एनसीटीई द्वारा एनसीईआरटी के परामर्श से तैयार किया जाएगा।

2030 तक, शिक्षण के लिए न्यूनतम डिग्री योग्यता 4 वर्षीय एकीकृत बी.एड है। डिग्री।

एनईपी 2020 के बारे में निष्कर्ष –

शिक्षा किसी भी समाज और देश के सर्वांगीण विकास के लिए एक आवश्यक और अपरिहार्य तत्व है और इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए एक राष्ट्र द्वारा एक व्यापक राष्ट्रीय शिक्षा नीति तैयार की जाती है। भारत सरकार द्वारा अनुमोदित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 इस दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है।

इस नई शिक्षा नीति की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि इसे कैसे लागू किया जाता है। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि भारत सबसे कम उम्र की आबादी वाला देश है और भारत का भविष्य इन युवाओं को उच्च गुणवत्ता वाले शैक्षिक अवसर प्रदान करने पर निर्भर करेगा।

संदर्भ :–

1. https://www.education.gov.in › ---PDF
2. National Education Policy 2020

संपर्क सूत्र – 7007438658

ईमेल – vibhaobra@gmail.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 201-202

लोकगीत हमारी संस्कृति के पहरेदार

–डॉ विनोद शर्मा
नवोदय विद्यालय देवराला –भिवानी

भारतीय संस्कृति के अनेकों रूप हमें लोक कलाओं में देखने को मिलते हैं और हमारी यह संस्कृति विस्तृत एवं समृद्ध संस्कृति है। किसी भी संस्कृति के रूप को वहां के लोकगीतों के माध्यम से देखा जा सकता है क्योंकि लोक संगीत ने अपने गायन–वादन और भाषा शैली से हमारी संस्कृति को उजागर करते हुए हमारे पौराणिक मूल भावनाओं को जागृत रखने का प्रयास किया है।

जिससे हम अपने मूल संस्कारों को पहचाने और आज के इस पाश्चात्य करण के युग में जहां हमारी संस्कृति का हास हो रहा है, उसे बचाया जा सके। लोकगीत ने भारतीय संस्कृति के क्षेत्र में अपना एक अलग रंग भरा है तथा पारंपरिक लोकगीत जो पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं। जब हम उनको सुनते हैं या दृश्यात्मक रुप से रूबरू होते हैं तो अनायास ही हमें यह महसूस होता है कि सच में लोकगीत हमारी संस्कृति के पहरेदार है जो सहज ही हमारी लोक परंपराओं वह संस्कृति से परिचित कराते हैं और महसूस होता है कि यह हमारी क्षेत्रीयता सामाजिक एकता के लिय प्रतीकात्मक रुप में कार्य कर रहे हैं।

महात्मा गांधी ने भी कहा की लोकगीत समूची संस्कृति के पहरेदार हैं। इन महापुरुषों का कथन भी यही इशारा कर रहा है कि किस प्रकार हमारे दैनिक लोकजीवन में जो भी शुभ कार्य होते हैं। बिना गीत के संपन्न नहीं होते जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीत हमें लोक परिवेश में देखने को मिलते हैं। जिसमें बच्चे को जन्मदिन विवाह, छूँछक, भात उबटन श्रंगार प्रेम बिरह आदि पर बिना गीत के कोई कार्य संपन्न नहीं होता। इसलिए कहा है कि जब कोई व्यक्ति अपने स्वच्छंद भावों को गीत रूप में व्यक्त करता है। तो वह आमजन के गीत हो जाते हैं यानी लोक जनमानस के भाव ही लोकगीत है और उन्हीं में हमारी हमारी सूसंस्कारित लोक परंपराओं की भीनी भीनी खुशबू महसूस होती है। इसलिए रविंद्र नाथ टैगोर ने लोकगीतों को संस्कृति का सुखद संदेश ले जाने वाली कला कहा है। टैगोर साहब जीवन को सरलता से जीने की प्रेरणा देते थे व बंदिशों को कम महत्व देते थे फिर वह संगीत हो या आम जीवन।

लोक संगीत का छंद यद्यपि संक्षिप्त होता है, परन्तु भावके अनुकूल होने से वह मन मस्तिष्क पर पूरा प्रभाव डालता है। भावों की समानता के कारण लोक संगीत कभी पुराना नहीं पड़ता, वह सदा–बहार है। गायक व श्रोताओं का सीधा जुड़ाव होने के कारण भाव सम्प्रेषण की प्रक्रिया में लोक संगीत सबसे अधिक सक्षम है। सषक्त भाव पक्ष के कारण ही लोक संगीत अन्य सभी शैलियों में अग्रणी है। लोक संगीत से प्रभावित होकर ही रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शास्त्रीय संगीत के धरातल पर हृदय के छूने वाले स्वरों को शब्दों का चोला पहनाकर एक

नई गान पद्यति का निर्माण किया था, जो रवीन्द्र संगीत के नाम से जानी जाती है।

लोक गीतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वान, मनिषियों, संगीत शास्त्रीयों, साहित्यकारों एवं अध्येताओं ने अनुमान का सहारा लिया है। उन्होंने लोकगीतों की उत्पत्ति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इन मनीषियों ने अपने अनुभवों के निचोड में कहा कि प्रकृति ही वह आदि गुरू है, जिसने मानव जाति को जीने की कला एवं ढंग बताया हे, विविधि कलारुपों में रूचि लेना सिखाया है, लोक संगीत एवं गीतों की उत्पत्ति की प्रेरणा प्रदान की है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि प्रकृति जो एक अद्वितीय शक्ति है, सृष्टि की रचना की है। इसमें जीव निर्जीव, जड़, चेतन आदि छोटी बडी सभी वस्तुओं का सृजन हुआ है। ये वस्तुऐं अपने अति प्रारंभिक स्वरुप से शैनेः शैनेः विकसित हुई है। वर्तमान में इसका सुविकसित रुप हमारे सामने है।

लोकगीत जन–जन में पाए जाते हैं लोकगीत समूह एवं एकल दोनों तरह से गाए जाते हैं किंतु अधिकांशतः है सामूहिक गाए जाते हैं लोकगीतों में बाल वृद्ध स्त्री–पुरुष सभी की गहरी रूचि होती है। लोकगीतों की प्रकृति बंधन मुक्त होती है। शास्त्र की किसी भी प्रकार की परिधि लोकगीतों को परहेज होता है। लोकगीत उन्मुक्त एवं स्वच्छंद होते हैं। लोकगीत गायन के लिए कोई निर्धारित समय स्थान आदि की आवश्यकता नहीं होती है जब भी मन में उमंग उठती है लोक गीत के बोल मुंह से फूट पड़ते हैं। लोकगीत की रचना मानव के इर्द–गिर्द दैनिक जीवन से जुड़ी घटनाओं आवश्यकताओं आदि विषयों से संबंधित होती है जो सीधी एवं सरल होती है लोक गीतों की धुनें सीधी और सरल होती है। लोकगीतों की धुन सुगम एवं स्वर सीमित होते हैं लोकगीत साज की प्रतीक्षा नहीं करते किंतु लोक वाद्य लोकगीतों में प्राण फूंक देते हैं। प्रकृति के दर्शन लोकगीतों के भावो में सम्मिलित होते हैं लोकगीत जन जन के लाडले होते हैं। लोकगीत सुगंधित फूल और शीतल जल के समान सुख देने वाले होते हैं। लोकगीत मौखिक और वाचिक परंपरा से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तगत होते रहते हैं। लोकगीत किसी व्यक्ति विशेष की संपत्ति नहीं होते लोकगीत संस्कार एवं परंपरा के वाहक होते हैं। लोकगीत जनजीवन की उल्लास में अभिव्यक्ति है लोकगीतों में बारहमासी सुगंध होती है। लोक गीत लोक चेतना के समान होते हैं। लोकगीत प्रत्येक रस में गाए जाते हैं किंतु श्रंगार रस में गाए जाने वाले गीतों की छटा निराली होती है। इसलिए लोकगीत हमारी संस्कृति के पहरेदार के रूप में कार्य कर रहे हैं।

संदर्भ :–

1. लोक कला का बीज व प्रत्यक्ष उदाहरण, डॉ. विश्वनाथ गौड़ पृ. सं. 19
2. लोक गीतों का संगीत पक्ष, श्री महेश नारायण सक्सैना पृ. सं. 46
3. मध्य प्रदेश का लोक संगीत, डॉ. सरीफ मोहम्मद पृ. सं. 194
4. भा. संगीत का मूल आधार लोक संगीत, कुमार गंधर्व पृ. सं. 104
5. लोक संगीत और वर्ण व्यवस्था, सुनील कुमार पृ. सं. 98
6. लोक साहित्य अध्ययन के आयाम डॉक्टर राम प्रसाद दाधीच पृ. सं. 16

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 203-204

सोशल मीडिया का भविष्य

-SARANYA S.S.
Ph.D. Research Scholar, Department of Hindi, M.G. College, University of Kerala, Trivandrum.

सोशल मीडिया भविष्य का मीडिया है। सोशल मीडिया के उपयोग कर्त्तों की संख्या दिनभर दिन बढ़ रहा है, लेकिन सोशल मीडिया की लोकप्रियता पहले से संवृद्धि हुई। मगर भविष्य में सोशल मीडिया का इसी रूप में बहुत सारे बदलाव आएँगे। लोगों को इस पर ढेर सारी उम्मीदें हैं।

सोशल मीडिया का एक ठोस भविष्य है। आज के लोग टी.वी. से अधिक मोबाइल फोन से लीन हुई है। क्योंकि टी.वी. में दिखाते सारी चीज़ सोशल मीडिया पर मिलते हैं, तो अपने समय के अनुसार देख सकते हैं। किंतु लोग छोटे बच्चों को सबसे पहले फोन देते हैं, फिर वे फोन पर समय बिताना भी चाहते हैं। प्रौद्योगिकी के विकास के कारण इस पर कई नई बदलाव आएँगे, लेकिन इसका बंद नहीं होगा। आज के किसी भी सोशल मीडिया सैट बंद होता तो बाद में अधिक विशेषताएँ एवं सुविधाएँ होते सैट आएँगे। मतलब सोशल मीडिया कभी खत्म नहीं होगा, मगर उसका विकास बढेगा। देश के अधिक लोग किसी एक सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। यह संख्या पहले से ज़्यादा है।

अब हमारे दुनिया एक नाजुक स्थिति से गुज़र जा रहे हैं। इसके कारण कर्मचारियों और छात्रों घर पर बैठकर अपना काम एवं पढ़ाई किया। बाद में इसी तरह की व्यवस्था जारी रखेंगे। यह सोशल मीडिया का वृद्धि का परछाई है। आज भी लोग ऑनलॉइन माध्यम के दौरान व्यापार करना शुरु किया, तो आगे से इसका बढ़ाव होगा एवं सभी कार्य इसके अंतर्गत आएँगे। लगता है कि 20 साल के बाद पूरे विश्व के सभी लोग किसी भी सोशल मीडिया का इस्तेमाल करेंगे। प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी के विकास के साथ ही साथ सोशल मीडिया का ही विकास हो रहेगा।

आज हमारे समाज में कई सोशल मीडिया मंच हैं। हर कोई सोशल मीडिया में जगह बनाते हैं। सोशल मीडिया में विषय राजा हैं। इस पर बहुत सारे विषय सर्जक हैं। लेकिन दर्शकों का मनोरंजन करना आसान नहीं है। अच्छा विषय है तो वह जीवन भर रहेगा। सभी सोशल मीडिया का दम उसका विषय है। संदेह नहीं है कि भविष्य में सोशल मीडिया एक आशाजनक मंच होगा।

सोशल मीडिया अब लगभग हर किसी की ज़िंदगी का हिस्सा बन चुका है। इंस्टग्राम, फेसबुक, ट्विटर और टिक–टोक अपने दैनिक जीवन में जुड़े हुए मीडिया हैं। कुछ साल पहले हम रिश्तेदारों और दोस्तों से लाइक एवं कमेंट पाकर खुश थे। लेकिन आज हम अजनबियों से बात करना, रिश्ता बनाना, कौशल और सुझाव सांझा करना आदि चाहते हैं। लेकिन सोशल मीडिया अब नए कार्य कर रहे हैं। जैसे खरीदारी, समाचार पढ़ना, गेमिंट,

ऑनलाइन लेन देन आदि। ''आज भी कई कॉमर्शियल नेटवर्किंग साइट्स में रेटिंग सिस्टम नहीं है। निकटतम भविष्य में ऐसी वेबसाइट्स के लिए रेटिंग सिस्टम् का प्रयोग किया जा सकता है ताकि यूज़र्स किसी वेबसाइट की गुणवत्ता का पता लगा सकें।'' लेकिन बाद में इस पर खरीदारी आम हो जाएगी।

इस मंच सामाजिक, सामूहिक, फिल्म, संगीत, खेलकूद, वित्त आदि क्षेत्रों के सफलता की उच्च संभावना और बड़े अवसर आने वाले दिनों में बहुत लाभ लाएँगे। जैसे आज के ओटीटी प्लाट फोम का उत्थान। दुनिया के विभिन्न हिस्सों से समान विचारधारा वाले लोगों को एक साथ लाने और बातचीत सोशल मीडिया के ज़रिए करना है। भविष्य में हर कोई इस पर निर्भर करेगा, क्योंकि इसे कम खर्च हैं। आज दुनिया के लगभग 50 प्रतिशत लोग किसी एक सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। आज भी इसका उपयोग न होता कई क्षेत्र है। किंतु उम्मीद यह है कि आगे से यह सभी क्षेत्रों में अपना हस्ताक्षर लगेंगे। प्रौद्योगिकी के साथ मीडिया बनाना और साझा करना भी सुधार होगा।

सोशल मीडिया का दम यह होता है कि साख विषय। यह आज भी और हमेशा होगा। उस पर व्यक्तिगत जुड़ाव आने वाले वर्षों में भी मज़बूत प्रभाव बनाते। व्यवसाय अधिक होशियार बनना इस पर निर्भर करता है कि वे सोशल मीडिया का उपयोग कैसे करते हैं। सोशल मीडिया के माध्यम से व्यवसाय चले ब्रांड कंपनियाँ प्रतिक्रिया एवं समीक्षा और सुधार बहुत जल्दी करेंगी। क्योंकि इससे कंपनियों की साख पर असर पडेगा।

आने वाले दिन सोशल मीडिया का है। कल के अवसर और जीत उन लोगों के हाथ में है जो अच्छी ढंग से सोशल मीडिया का उपयोग कर सकते हैं। इसके बिना जीना सोच भी नहीं सकते, उनकी जड़ें समाज में इतनी गहरी हैं।

संदर्भ :-

1. ऑनलाइन मीडिया : सुरेश कुमार।
2. सोशल मीडिया : योगेश पटेल।
3. www.wikipedia.com

संगम Impact Factor : 2.636
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed & Referred Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. : 10 Issue : 2
Page : 205-208

समाज व हिंदी उपन्यासों में वृद्धों की स्थिति

-हेमलता सैनी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर।

शोध सार :-

भारतीय समाज में बुजुर्गों का हमेशा सम्मानीय स्थान रहा है। परंतु 21 वीं सदी के समाज में वृद्धों की स्थिति में बहुत अंतर आया है। पहले वे समाज व परिवार के केंद्र में स्थित थे। किंतु धीरे–धीरे वे हाशिए की तरफ धकेल दिए गए है। साहित्य में भी उनकी स्थिति में बहुत अंतर आया है। आज बहुत सी समस्याएँ उनके सामने चुनौतिया बनकर उभरी है। 20वीं सदी के साहित्य से 21 वीं सदी के साहित्य में उनकी स्थिति बिल्कुल अलग दिखाई देती है। भारतीय व्यवस्था में हमेशा से संयुक्त परिवार प्रणाली का चलन रहा है। किंतु इसका स्थान अब एकल परिवार संस्था ने ले लिया है। जिसके कारण इनकी स्थिति में बहुत परिवर्तन आया है। समाज व परिवार में उनकी अहमियत कम होने लगी है। भूमंडलीकरण व औद्योगिकरण के कारण सामाजिक व नैतिक मूल्यों में गिरावट आई और बुजुर्गों की उपेक्षा होने लगी। बुजुर्ग माता–पिता अपनी सारी जमा पूंजी अपनी संतानों के भविष्य के लिए योगदान कर देते है। किंतु बच्चेअपने कर्त्तव्य से विमुख दिखाई देते है। भारत सदैव मातृ–पितृ भक्ति की संस्कृति के लिए जाना जाता है। हमारे यहाँ प्राचीन समय से ही श्रवण कुमार, राम, नचिकेता, भीष्म आदि ऐसे अनेक उदाहरण है जो बिना कुछ सोचे–समझे अपने माता–पिता की आज्ञा का अनुसरण करते थे। किंतु आज स्थिति बिल्कुल अलग है।

बीज शब्द :- वृद्धावस्था, मुखिया, हाशिए, परिवार, समाज, परिवर्तन।

वृद्धावस्था मानव जीवन के गर्वित क्षणों में से एक है। उसमें मानव जीवन के अपार अनुभव व उपलब्धियां एकत्रित होते है। भारतीय समाज में बुजुर्गों को आदर व सम्मान मिलता रहा है। वे परिवार में एक धूरी के रूप में स्थित रहे है। अपने जीवन के अनुभवों से समाज व परिवार के विकास व संचालन में योगदान करते है। वे हमेशा से मुखिया की भूमिका में रहे है। किन्तु वर्तमान में उनकी स्थिति में बेहद महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगा है। एक तरफ उन्हें सम्मानीय कहकर पूजा जा रहा है दूसरी और अनुपयोगी व बोझ समझकर वृद्धाश्रम में भेजा जा रहा है। एक तरफ साहित्य व समाज में अपने अस्तित्व व गरिमा के लिए अनेक विमर्श शुरू हुए व हो रहे हैं। उनमें वृद्ध विमर्श भी शामिल होने लगा है। ये वृद्ध अपने जीवन के कड़वे, खट्टे–मीठे अनुभवों से समाज में योगदान कर सकते है।

वृद्धों की इस दुर्दशा पर बहुत मात्रा में हिंदी कथा–साहित्य में लिखा गया है। उपन्यास के क्षेत्र में हिंदी कथाकारों के यहाँ यह समस्या उनकी प्रमुख चिंताओं में रही है। वरिष्ठ पीढ़ी व नई पीढ़ी के साहित्यकारों ने इस

विषय पर गहन चिंतन किया व उनकी समस्याओं को उजागर किया। हिंदी उपन्यासों में यह समस्या मुख्य रूप से 20वीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में दिखाई देने लगी। पंकज बिष्ट का 'उस चिड़िया का नाम', निर्मल वर्मा का 'अंतिम अरण्य', कृष्णा सोबती का 'समय सरगम', रवीन्द्र वर्मा का 'पत्थर ऊपर पानी', ममता कालिया का 'दौड़', काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रग्घू', चित्रा मुदगल का 'गिलिगडु' रमेश चंद्र शाह का 'सफ़ेद परदे पर', गीतांजलि श्री का 'रेत समाधि', सूरज नेगी का 'वसीयत 'आदि वृद्धावस्था पर लिखे कुछ बेहतरीन उपन्यास है।

उपन्यास व साहित्यकारों के आधार पर देखे तो बुजुर्गों के सामने आने वाली समस्याएँ है पीढ़ीगत अंतराल। बच्चों व माता–पिता में दूरिया बहुत बढ़ चुकी है। बुजुर्गों व उनके बच्चों के बीच सोच का बहुत अंतर आ चुका है। उम्र के इस पड़ाव पर शारीरिक कमजोरी के साथ दृसाथ भावनात्मक व मानसिक स्तर पर भी वे स्वंय को बहुत कमजोर अनुभव करते है। इस अवस्था में उनके सामने जीवन के प्रति असुरक्षा की भावना का प्रश्न रहता है। क्योंकि उनके सामने आश्रय की भी समस्या उत्पन्न होती है। उनके बच्चे उन्हें अपने साथ नहीं रखना चाहते है या विदेश चले जाते है। जिससे उनमें एक डर की भावना बनी रहती है की कैसे अंतिम समय में अकेले उनका जीवन कटेगा। कभी–कभी जीवन साथी की मृत्यु के बाद वे बहुत अकेले तो अनुभव करते ही है साथ ही परिवार में भी अपनेपन के अभाव में एकांकी जीवन जीने को अभिशप्त होते है। यह भी एक कारण है जिसके चलते अब वे इस अवस्था में जीवन साथी की तलाश का विकल्प भी चुनने लगे है। क्योंकि वे परिवार व समाज में अपने लिए उचित व्यवस्था का अभाव पाते हैं।

समाज व परिवार में उनके प्रति लगातार अजनबीपन बढ़ता जा रहा है। उनके मन में मृत्यु को लेकर भय बना रहता है। वृद्धों का प्रयोग आज उनकी सन्तानें अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए करने लगी है। उनकी संपत्ति का अनुचित लाभ उठाकर व कही–कही तो देखने को मिलता है उनसे अतिरिक्त शारीरिक श्रम करवाकर आदि। आज मनुष्य अति महत्वाकांक्षी हो गया है। विकास की अंधी दौड़ में अंधा होकर दौड़ रहा है। गरीब बुजुर्ग जो आर्थिक रूप से बच्चों पर निर्भर है उनकी स्थिति और भी दयनीय है।

हमारा समाज हमेशा से पित्रसत्तात्मक रहा है। किंतु बदलते दौर में यह धीरे–धीरे पुत्रसत्तात्मक हो रहा है। पहले जो अधिकार पिता को प्राप्त थे, अब सन्तानें उन्हे अपना समझने लगी है। साहित्यकारों व समाज शास्त्रियों के अनुसार वृद्ध अपने बदलते परिवेश में तारतम्यता नहीं स्थापित कर पाते। कभी–कभी वे इतने हठधर्मी व चिड़चिडे हो जाते है की परिवार में एक प्रतिकूल माहौल उत्पन्न कर देते है।

जब से एन.आर.आई व पश्चिमी संस्कृति का चलन बढ़ा है तब से युवा उससे बहुत आकर्षित हो रहा है। उन्हें अपने देश में रहना नागवारा होता जा रहा है। उनके जाने के बाद माता–पिता यहाँ अकेले छूट जाते है। उनके पास कोई अंतिम संस्कार करने वाला भी नहीं रहता। वे स्वंय जीते जी अपना अंतिम संस्कार करने लगे है। कुछ बुजुर्ग ऐसी स्थिति मे सामंजस्य स्थापित करने के लिए रचनात्मक व सकारात्मक बने रहते हैं।

आधुनिकता की होड़ में उन्हें बेकार समझा जाने लगा है। उनके जीवन की गुणवत्ता मे गिरावट आने लगी है। उनके लिए कानूनी अधिकार बनाए गए है। किंतु कमजोर शरीर होने के कारण व जागरूकता की कमी व बच्चों से मोह–ममता के कारण उनका प्रयोग नहीं कर पाते।

परंतु 21वीं सदी में बुजुर्गों की स्थिति में परिवर्तन होने लगा है। 'आज हम देखते हैं कि किसी बुड्ढे, कमर झुके माता–पिता के रईस बेटे– बहू या बेटियां आलीशान गाड़ी में बैठकर उनको वृद्धाश्रम में छोड़ने आते हैं।

और अपना यह महान कर्तव्य निभाकर राहत की सांस लेकर वापस जाते हैं।'[1]

आयु एक सतत अपरिवर्तनीय सार्वभौमिक प्रक्रिया है। जो गर्भावस्था से शुरू होकर वृद्धावस्था से होती हुई व्यक्ति की मृत्यु तक होती है। 'राष्ट्रीय बुजुर्ग नीति 60+आयु वर्ग के लोगों को बुजुर्ग के रूप में परिभाषित करती है।' प्रधानमंत्री आर्थिक सलाहकार परिषद (EAC-PM) ने बुजुर्गों के लिए जीवन का गुणवत्ता सूचकांक जारी किया। देश में कुल आबादी के प्रतिशत के रूप में बुजुर्गों की हिस्सेदारी वर्ष 2001 में लगभग 7.5 प्रतिशत थी। जो बढ़कर वर्ष 2026 तक लगभग 12.5 प्रतिशत हो जाएगी तथा वर्ष 2050 तक 19.5 प्रतिशत से अधिक होने की उम्मीद है।'[2]

वृद्धावस्था का अर्थ :-

'वृद्धावस्था या बुढ़ापा जीवन की उस अवस्था को कहते हैं। जिसमें उम्र मानव जीवन की औसत काल के समीप या उससे अधिक हो जाती है। वृद्ध लोगों को रोग लगने की अधिक संभावना होती है। उनकी समस्याएं भी अलग होती है। 'वृद्धावस्था एक धीरे–धीरे आने वाली अवस्था है। जो कि स्वभाविक प्राकृतिक घटना है। वृद्ध का शाब्दिक अर्थ है बढ़ा हुआ, पका हुआ, परिपक्व वृद्धावस्था में प्रत्येक मनुष्य की ऊंचाई 2 से 5 प्रतिशत कम हो जाती है।'[3]

वृद्धों की आरंभिक स्थिति व इनसे संबन्धित साहित्य की पृष्ठभूमि पर नजर डाले तो पहले–पहल इसके बारे में अस्तिववादी दार्शनिक सिमोन दी बुआ की कृति 'ओल्ड एज' पुस्तक में देखने को मिलता है। जिसका अनुवाद उन्होंने 1970 में एक फ्रेंच रचना 'ला वियलेस्से' से किया। इसमें बताया की कैसे सबसे पहले अमेरिका में 'जेरियट्रिक्स' की शुरुआत हुई। 'नेशर' इसके पिता के रूप में जाने जाते है।

'एक बार वे वियना के वृद्धाश्रम में गए तो देखा कि वहां के बुड्ढे स्वस्थ्य जीवन जी रहे हैं। इसका कारण पूछने पर बताया गया कि हम इन वृद्धों की बच्चों की तरह देखभाल करते हैं। इसे देख उन्होंने चिकित्सा की एक अलग शाखा खोली जिसे उन्होंने 'जेरियाट्रिक्स' नाम दिया। 1912 में उन्होंने न्यूयॉर्क में सोसाइटी ऑफ जेरियाट्री की स्थापना की। जेरिन्टोलोजी का विस्तार तीन स्तरों पर होने लगा जैविक, मानसिक और सामाजिक।'[4]

किसी भी देश में बढ़ती वृद्ध आबादी उसके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक परिवेश में परिवर्तन का संकेत करती है। इतनी बड़ी संख्या में वृद्धों की आबादी बढ़ने का अर्थ है की देश में ज्यादा से ज्यादा स्वास्थ्य सेवाओं का इंतजाम करना। क्योंकि बुढ़ापा बहुत सी बीमारियों और रोगों के साथ शुरू होता है। शरीर शिथिल व कमजोर होने लगता है। इसलिए अधिक मात्रा में चिकित्सा सेवाओं व सुविधाओं की जरूरत होगी। अधिक संख्या में अस्पतालों, डॉक्टरों, नर्सों की जरूरत होगी।

स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाले खर्च से देश में आर्थिक भार अधिक होगा व सरकारी व्यय भी बढ़ेगा। देश में लगातार वृद्धाश्रमों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही है। एक अनुमान के अनुसार देश में लगभग 1000 से भी ज्यादा वृद्धाश्रम है। सरकार इनके निर्माण के लिए 50 लाख से 1 करोड़ रुपय तक दे रही है।

परंतु लगातार हो रही वृद्धाश्रमों की वृद्धि यह भी प्रश्न खड़ा करती है क्या भारतीय परिवार व्यवस्था कमजोर हो रही है? तथा ये वृद्धाश्रम कैसे लोगों के लिए होने चाहिए? उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में यह भी कार्ये व्यवसाय के रूप देखे जा रहे है। आर्थिक रूप से सम्पन्न वृद्ध इनमें आसानी प्रवेश कर पाते है किन्तु

हजारों साल पहले परिवार नामक संस्था की रचना हुई। इस संस्था के अपने कुछ नियम थे। जो आज भी वैसे ही है। परिवार में दादा–दादी, माता–पिता व उनके बच्चे होते है। दादा–दादी बच्चों को मार्गदर्शन देने का कार्य करते है। परंतु बदलते वैश्वीकरण के दौर में रिश्तों में स्वार्थपरकता हावी होने लगी हैं अब किसी के पास एक –दूसरे के लिए समय नहीं हैं। अब भावनाएं, रिश्ते–नाते सब को पैसे के द्वारा मापा–तोला जाना लगा है। आज पीढ़ियों में लगातार अंतराल बढ़ रहा है। उनके पास बुजुर्गों के पास बैठने का समय नहीं है। पहले वृद्धों से सलाह लेना, कहानियाँ सुनना दिनचर्या में शामिल थे। परंतु आज ये अनावश्क समझा जाता है।

समाज में सामंजस्य, समन्वयव समरूपता को बनाए रखने के लिए दलित, स्त्री व अन्य विभिन्न विषयों को चर्चा का विषय बनाया या केंद्र में रखा उतनी ही तीव्रता से हमने वृद्धों को इस क्षेत्र में पीछे छोड़ दिया। आज स्थिति यह हो गई है कि वे मुख्यधारा से हाशिये की तरफ धकेल दिए गए है। आधुनिकरण के कारण बुजुर्गों को अनुपयोगी समझा जाने लगा है। विभिन्न प्रकार से उनकी उपेक्षाएँ की जाने लगी है उनकी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक स्तर पर अनदेखी की जाने लगी है।

भूमंडलीकरण ने इन बुजुर्गों व इन की संतानों के बीच दूरियां और बढ़ा दी है। बढ़ते विदेशी व्यामुख के कारण इनकी संताने तो अप्रवासी भारतीय हो ही जाती हैं। भारत में रहते हुए माता–पिता भी बेगाने हो जाते हैं। इसी को देखते हुए आज वृद्ध विषय कविविध प्रश्नों की चर्चा बड़ी गंभीरत ा से हो रही हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्राचीनकाल से संयुक्त परिवार प्रणाली की व्यवस्था रही है। किंतु जब से आधुनिकता के प्रभाव व व्यक्ति स्वतंत्रता के नाम पर एकल परिवार व्यवस्था ने यह जगह ली है तब से वृद्ध जीवन की समस्या का अध्ययन नितांत आवश्यक बन गया है। समाज अब इनके प्रति बुरा व्यवहार करने लगा है। मोह एवं ममता के कारण माता–पिता तों बच्चों पर स्नेह व प्रेम प्रवाहित करते रहते हैं, किंतु संतानों ने उनके प्रति आज्ञा पालन और सेवा के कर्तव्यों से मुँह मोड़ लिया।

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 वृद्ध महिलाओं को भरण–पोषण आवास एवं स्वास्थ्य की व्यवस्था करता है। धारा 18 के तहत शारीरिक हिंसा की रोकथाम की गई है। धारा 19 के तहत उसी आवास में रहने की व्यवस्था करती है। धारा 20 आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है। माता–पिता भरण पोषण अधिनियम 2007 वृद्धजन को भरण–पोषण की स्वतंत्रता प्रदान करता है। धारा दो भरण पोषण में भोजन वस्त्र आवास और चिकित्सा प्रदान करता है।

संदर्भ सूची :–

1. वृद्धावस्था का सच ,विमला लाल, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, सं. 2019 ,पृष्ठ संख्या 18 ।
2. https://www.drishtiias-com/hindi/daily-updates/daily-news-analysis/quality-of-life-for-elder
3. hi.mi.wikipedia.org>wiki>वृद्धावस्था।
4. वृद्धावस्था विमर्श, चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, संपादक ऋषभदेव शर्मा, परिलेख प्रकाशन, सं. 2016, पृष्ठ सं. 22
5. archive.indiasendhindia

Gmail- –hemlatasaini2363@gmail.com, संपर्क सूत्र –7206275190

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

डॉ. सुलक्षणा अहलावत

जन्म तिथि	:	18 नवम्बर
पिता का नाम	:	श्री राम मेहर अहलावत
माता का नाम	:	श्रीमती फूलवती देवी
पति का नाम	:	श्री विकास
संतान	:	विलक्षणा, विलक्षण
पता	:	गाँव अजायब, तहसील महम, जिला रोहतक - 124111
कार्यक्षेत्र	:	अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, हरियाणा सरकार
शिक्षा	:	एम ए, एम फिल, पीएचडी (अंग्रेजी)
भाषाओं का ज्ञान	:	हिंदी, अंग्रेजी, हरियाणवी
साहित्यिक कार्य	:	1 हरियाणवी काव्य संग्रह, 3 सांझा काव्य संग्रह, 5 पुस्तकों का संपादन, 100 से ज्यादा अखबारों, पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित
विशेष कार्य	:	विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति के माध्यम से सामाजिक कार्य।
सम्मान	:	लगभग 100 सम्मान प्राप्त
सम्पर्क	:	9416720180
Email	:	dr.sulaxna@gmail.com

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर सम्पादकीय कार्यालय 6-एच 30, जवाहर नगर, श्रीगंगानगर, राजस्थान-335001 से वितरित की।

ISSN 2321:8037